ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ - A Social Science Research Journal

Peer Reviewed Bilingual International Research Journal
The Journal indexed in the UGC-CARE list.

वर्ष 29 अंक 113 ❊ अप्रैल-जून, 2023

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ — **A Research Journal of Social Sciences**

Peer Revied Bilingual International Research Journal
This Journal is included in the UGC-Consortium for Academic and Research Ethics

वर्ष 29, अंक 113 — **अप्रेल-जून, 2023**

❐

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

❐

प्रकाशक

पी.सी. बैरवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010

दूरभाष (0734) 2518737

E-mail : mpdsaujn@gmail.com Website : www.mpdsa.org

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

परामर्श मण्डल

डॉ. प्रकाश बरतुनिया
कुलाधिपति– बाबा साहेब अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. अनिल दत्त मिश्रा
प्रतिष्ठित गांधीवादी विद्वान व वरिष्ठ उपाध्यक्ष, सुलभ अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सेवा संगठन, नईदिल्ली

डॉ. रामगोपाल सिंह
पूर्व आचार्य, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.)

डॉ. जयप्रकाश कर्दम
वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

डॉ. रमेशचन्द्र जाटवा
अतिरिक्त संचालक, उज्जैन संभाग, उच्च शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश

डॉ. डी. डी. बेदिया
आचार्य एवं निदेशक, व्यवसाय प्रबंध संस्थान, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सम्पादक मण्डल

डॉ. ज्ञानचन्द्र खिमेसरा
पूर्व आचार्य अर्थशास्त्र व प्राचार्य, शास.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर

डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलु
पूर्व आचार्य इतिहास व प्राचार्य, शास. माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. शैलेन्द्र पाराशर
पूर्व आचार्य समाजशास्त्र व अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर पीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. एच.एम. बरूआ
पूर्व आचार्य, समाजशास्त्र, शास. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन

डॉ. अरूण कुमार
प्राध्यापक,राजनीति विज्ञान, शासकीय तिलक महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन
आचार्य, राजनीति विज्ञान व पूर्व प्राचार्य, उच्च शिक्षा विभाग, (म.प्र.)

सह सम्पादक

डॉ. प्रेमलता चुटैल
पूर्व आचार्य, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रकाशक : पी. सी. बैरवा

© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,
बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली

सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

वर्ष 29, **अंक** 113 **अप्रेल–जून, 2023**

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

वर्ष 29 अंक 113 अप्रेल–जून, 2023

❐ अनुक्रम ❐

1. भारतीय कृषि क्षेत्र में महिला सहभागिता की उभरती प्रवृत्तियाँ
–आसीन खॉ 01

2. आदिवासियत का काव्य संसारः ''जंगल पहाड़ के पाठ'
–डॉ. बन्ना राम मीना 13

3. भारतीय हिन्दी सिनेमा में नारी की भूमिका –डॉ. गायत्री 21

4. मध्यकाल में तकनीकी विकास एवं सामाजिक परिवर्तन
–ओमकार नाथ पाण्डेय 28

5. प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना अंतर्गत शिशु लोन का राज्यवार प्रदर्शन
–छन्नी साहू, डॉ. के.एल.टाण्डेकर, डॉ. एच.एस.भाटिया 39

6. आजादी से पूर्व चाय के व्यापार में भोटिया जनजाति की भूमिका
(उत्तराखण्ड के संदर्भ में) –मीनाक्षी 45

7. पाकिस्तान में जातीयता की राजनीति –डॉ. ममता डांगी, डॉ. सुरेन्द्र सिंह 54

8. रंवाई घाटी के दलित समुदाय का प्रमुख लोकोत्सव खोदाई
एक ऐतिहासिक अध्ययन –डॉ. सपना रावत 64

9. अभिमन्यु अनत की कहानियों में प्रवासी साहित्यः एक दृष्टि
–डॉ. मीनू देवी 72

10. जनजातीय महिलाओं के आर्थिक जीवन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव
(गढवाल की बुक्सा जनजाति के सन्दर्भ में) –पूजा दरमोड़ा 78

11. ग्रामीण क्षेत्रों में स्वंय सहायता समूह के माध्यम से महिला सशक्तिकरण उत्थान
–भावना मनराल, डॉ फखरुद्दीन राही 86

12. हिमालय क्षेत्र में शैव सम्प्रदा –प्रो. प्रभात कुमार, रणवीर सिंह 101

13. जय प्रकाश नारायण– भारतीय लोकतंत्र के पुरोधा
–हिमांशु कंवर इन्दा, डॉ. उम्मेद सिंह इन्दा 107

14. झुंझुनूं जिलें में भूमिगत जल स्तर में परिवर्तन का प्रतिरूप
एक भौगोलिक अध्यय –डॉ. संजीव कुमार, डॉ. कविता चौधरी 116

15. पर्यावरण चेतना की निरंतरता एवं परिवर्तन का ऐतिहासिक विश्लेषण वैदिक काल से गुप्त काल तक – मधु 122

16. **Impact of online arbitration upon society a discourse from legal prespective -Dr. Pradip Kumar Das, Ankit Kumar 131**

17. **Water untouched: Dalits' struggle for access to Water in Tamil Nadu -Dr. M. R. Raj Kumar, Dr. T. Asokan, Dr. Y. Srinivasa Rao 141**

18. **Gandhi as a Spiritual Politician in B.R. Nanda's Mahatma Gandhi A Biography -Dr. Pramod Kumar 149**

19. **Comparative study of education of Four Prominent Caste among the Scheduled caste Women in Punjab and District Ferozepur (A Historical Perspective (1947-1981) -Dr. Shefali Chauhan 167**

20. **The Panoptic Study of Hakki Pikki Tribes : Practice of Native Technical Knowledge in Chikkaballapur District. -G. Sai Kiran 179**

21. **Impact of Covid-19 Pandemic on Cultural Heritage with special reference to museums -Prof. Devendra Kumar Gupta, Kisha Shanker 186**

22. **Dhasal : A poet of Dalit underdog Champoins Indentity -Ashwani Kadiyan 192**

23. **An Economic Assessment of Sanitation Importance in Developing Countries : During Covid-19 Pandemic Period. -Ashvanee Kumar, Dr. Rajkumar Nagwanshee 197**

पूर्वदिवा में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है. सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 1–12

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

भारतीय कृषि क्षेत्र में महिला सहभागिता की उभरती प्रवृत्तियाँ

आसीन खाँ
सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)
Mob. 9460601973. E-mail : aseenalwar@gmail.com

सारांश

देश की कुल आबादी में आधा भाग महिलाओं का है, इसके उपरांत भी वे अपने मूलभूत अधिकारों से भी वंचित हैं; विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में। यदि अधिकारों के इतर भी बात करें तो जिन क्षेत्रों में वे पुरुषों के समकक्ष अथवा बराबरी पर हैं, वहां भी उनकी गिनती पुरुषों की अपेक्षा कमतर ही आंकी जाती रही है, इन्हीं में से एक कृषि क्षेत्र है। कृषि क्षेत्र में महिलाओं को मुख्य रूप से मजदूर का दर्जा ही प्राप्त है, कृषक का नहीं। बाजार की परिभाषा एवं अवधारणा के हिसाब से किसान होने की पहचान इस बात से निर्धारित होती है कि जमीन का मालिकाना हक़ किसके पास है, इस बात से नहीं कि उसमें श्रम किसका और कितना लग रहा है। हमारे समाज की विडंबना है कि भारत में महिलाओं को भूमि का मालिकाना हक़ बहुत कम प्राप्त है जो न के बराबर ही कहा जाएगा। कृषि क्षेत्र में महिलाओं के योगदान और बदली हुई सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उनकी भूमिका व महत्व को देखते हुए महिला किसानों के प्रोत्साहन की बात की जाए तो देश मे, केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा कृषि क्षेत्र को बढ़ावा देने हेतु अनेक प्रकार की योजनाएं, नीतियां व कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। लेकिन उन सबकी पहुंच महिलाओं तक या तो कम है या फिर उनको क्रियान्वित करने वाला तंत्र संवेदनशील नहीं है। शायद इस वजह से देश की महिला आबादी कृषि क्षेत्र में हाशिए पर है। मैंने इस अध्ययन में इन सब बातों को शामिल करते हुए महिलाओं की सहभागिता को लेकर जद्दोजहद और उनके उभरते नेतृत्व को दर्शाने वाले दृष्टांतों को सामने लाने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्दः कृषि क्षेत्र, महिला सहभागिता, किसान आंदोलन, महिला नेतृत्व, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास।

प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र अभी भी बहुत महत्वपूर्ण है और यह हमेशा से देश के विकास में सार्थक भूमिका निभाता रहा है। यह सही है कि अन्य क्षेत्रों की प्रगति के साथ–साथ देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि का सापेक्षिक अंश कम हुआ है लेकिन देश की लगभग आधी श्रमशक्ति अब भी कृषि क्षेत्र में ही संलग्न है। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (सीएसओ) के द्वितीय अनुशंसित अनुमानों के अनुसार 2011–12 के मूल्यों पर 2016–17 के सकल संवर्द्धित मूल्य (जीवीए) में कृषि तथा पशुपालन, वानिकी और मछली पालन जैसे संबंधित क्षेत्रों का योगदान 17.3 प्रतिशत रहा। अर्थशास्त्र और सांख्यिकी निदेशालय (डीईएस) के 2016–17 के लिए चौथे अग्रिम अनुमानों के अनुसार खाद्यान्न के मामले में एक समय में आयात पर निर्भर रहने वाला राष्ट्र, अब लगातार 27.5 करोड़ टन से अधिक खाद्यान्नों का उत्पादन कर रहा है। भारत गेहूं, गन्ना, धान, दलहन और कपास जैसी अनेक फसलों के उच्चतम उत्पादक राष्ट्रों में शामिल है, वहीं दूध का सबसे बड़ा तथा फलों और सब्जियों का दूसरे नंबर का उत्पादक है। वर्ष 2013 में विश्वभर के दलहन के 25 प्रतिशत, धान के 22 प्रतिशत और गेहूं के 13 प्रतिशत अंश का उत्पादन भारत में हुआ। विश्व के कपास उत्पादन में लगभग 25 प्रतिशत योगदान भारत का रहा है और पिछले कई वर्षों से कपास का दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक राष्ट्र भी।

भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्र की प्रगति एवं विकास में महिलाओं के उल्लेखनीय योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं कृषि क्षेत्र में विकास कार्यों को आगे बढ़ाने में ग्रामीण महिलाओं की न केवल महत्वपूर्ण भूमिका है अपितु वे स्थायी विकास के लिए ज़रूरी रूपांतरकारी आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक बदलावों को अंजाम देने में नेतृत्वकारी भूमिका में उभर कर आई हैं। देश भर में खेती–बाड़ी के कामों में महिलाओं की व्यापक भागीदारी को देखते हुए कृषि क्षेत्र में महिलाओं का सशक्तिकरण न सिर्फ़ व्यक्तिगत, पारिवारिक और ग्रामीण समुदायों की खुशहाली के लिए जरूरी है बल्कि उससे कहीं अधिक व्यापक ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक उत्पादकता के लिए भी, जो आज के दौर की आर्थिक जरूरत है।[1]

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को जानना है। इस उद्देश्य के साथ ही ग्रामीण विकास व कृषि क्षेत्र में महिला सहभागिता और नेतृत्व की उभरती प्रवृत्तियों को उजागर करना भी अध्ययन का उद्देश्य है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की अध्ययन विधि विवरणात्मक एवं समीक्षात्मक है जो मुख्य रूप से द्वितीयक समंकों व सूचनाओं पर आधारित है। मैंने इस अध्ययन हेतु विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं व प्रकाशित रिपोर्ट्स का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त किसान आंदोलन के दौरान शाहजहांपुर बॉर्डर पर पड़ाव का स्वयं अनुभव करके उसे भी अध्ययन में शामिल किया है।

मुख्य आलेख एवं विवेचना

भारत में, महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण का सपना उन लोगों को सशक्त किए बिना पूरा नहीं हो सकता जो समाज व आर्थिक तंत्र की आखिरी परिधि में रहते हुए हाशिये का जीवन जी रहे हैं। ये भारत की महिला किसान हैं, जिनकी आवाज उनके महिला होने के कारण अक्सर अनसुनी रह जाती है। उनका दिन सूरज उगने से पहले शुरू होकर सूरज छिपने के बाद तक जारी रहता है। हमारे सामाजिक ढांचे में मौजूद पितृसत्तात्मक परंपराओं और दोषपूर्ण समाजीकरण के कारण जमीनी स्तर पर अपनी पहचान स्थापित करने के लिए महिलाएं आज भी संघर्ष कर रहीं हैं। कृषि में महिलाओं का काम पत्नी, बहू और मां के रूप में उनकी भूमिका के अलावा है। वैधानिक प्रावधानों के बावजूद भारतीय नीतियों में महिलाओं को किसान के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है, जिसके कारण उन्हें बैंक, बीमा, सहकारी समितियों और सरकारी विभागों के संस्थागत समर्थन व सहयोग से वंचित होना पड़ता है। भारत में महिला किसान बुवाई से लेकर कटाई तक कृषि के अधिकांश कार्य करती हैं, फिर भी संसाधनों तक उनकी पहुंच उनके पुरुष समकक्षों की तुलना में कम है। कृषि क्षेत्र में विकास की गति को तेज करने के लिए इस भेदभावपूर्ण लिंग अंतर को समाप्त करना आवश्यक है। यदि हम प्रगतिशील भारत के सपने को जमीनी स्तर तक साकार करना चाहते हैं तो महिला किसानों की आवाजों को नीति निर्माण और कार्यान्वयन दोनों स्तरों पर सुनने की आवश्यकता है।

भारतीय कृषि क्षेत्र में महिलाएं

भारत में आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाओं में से 80 प्रतिशत को कृषि क्षेत्र रोजगार प्रदान करता है; जिनमें लगभग एक–तिहाई कृषि श्रमिक और 48 प्रतिशत स्व–नियोजित किसान शामिल हैं। आर्थिक सर्वेक्षण 2017–18 में कहा गया था कि पुरुषों के ग्रामीण से शहरी प्रवास के बढ़ जाने के कारण कृषि क्षेत्र का 'नारीकरण' होने लगा है, जिसके फलस्वरूप किसानों, उद्यमियों और मजदूरों के रूप में कई भूमिकाओं में महिलाओं की संख्या बढ़ रही है। देश में, जहां एक ओर लगभग 85 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं कृषि में लगी हुई हैं, वहीं दूसरी ओर लगभग 13 प्रतिशत के पास ही जमीन है। बिहार राज्य में स्थिति और भी अधिक शोचनीय है वहां केवल 7 प्रतिशत महिलाओं के पास भू–स्वामित्व है, हालांकि महिलाएं विभिन्न कृषि गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। एशियन डेवलपमेंट रिसर्च इंस्टीट्यूट (एडीआरआई) के एक अध्ययन– 'बिहार की अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिलाएं' का निष्कर्ष है कि बिहार का कृषि क्षेत्र काफी अधिक नारीकृत हो गया है। यहां पर खेती की गतिविधियों में लगे कुल कार्यबल का 50.1 प्रतिशत महिलाएं हैं। एक अनुमान के अनुसार देशभर में लगभग 60 से 80 प्रतिशत खाद्य का उत्पादन ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं द्वारा ही किया जाता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद, महिलाओं को असमानताओं एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो काम के अवसरों तक उनकी पहुंच और उनकी उत्पादकता में सुधार के प्रयासों में बाधा डालती हैं। कृषि क्षेत्र में काम करने वाली लगभग 68 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं अत्यधिक गरीबी में हैं। आमतौर से ग्रामीण महिलाओं की एक साथ एक से अधिक आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने की प्रवृत्ति होती है परंतु आय सृजन के वैकल्पिक साधनों के अभाव में, अनौपचारिक व असुरक्षित कार्य तक करना उनकी बाध्यता बन गई है।

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार भारतीय कृषि में महिलाओं का योगदान लगभग 32 प्रतिशत है, जबकि राज्यों के स्तर पर पहाड़ी राज्यों एवं उत्तर–पूर्वी क्षेत्र तथा केरल आदि में महिलाओं का योगदान कृषि तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पुरुषों से भी अधिक है। भारत देश के 48 प्रतिशत कृषि से संबंधित रोजगार में महिलाएं हैं। लगभग 7.5 करोड़ महिलाएं दुग्ध उत्पादन तथा पशुधन व्यवसाय से संबंधित गतिविधियों में सार्थक भूमिका निभा रही हैं। जब भी कृषि क्षेत्र और महिलाओं के उत्थान की बात आती है, तो बागवानी की भूमिका को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। ये भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बागवानी, कृषि का श्रम गहन क्षेत्र है इस कारण यह महिला रोजगार के अवसरों को बढ़ाता है। फलों और सब्जियों का इस्तेमाल घरेलू उपभोग के लिए ही नहीं किया जाता है, बल्कि ये विभिन्न उत्पादों– जैसे अचार, जैम, संसाधित सॉस आदि के लिए भी जरूरी हैं। वास्तव में देश के कई राज्यों जैसे–पूर्वी क्षेत्र में सिक्किम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश सहित हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश आदि में बागवानी ग्रामीण महिलाओं के लिए एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में उभर कर आया है। राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो 28.2 लाख टन फल और 66 लाख टन से अधिक सब्जियों के उत्पादन के साथ, भारत विश्व में फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। परंतु कृषि क्षेत्र में महिला सहभागिता का एक पहलू यह भी है कि अधिकतर घरेलू काम जैसे ईंधन, पीने का पानी, पशुओं के लिए चारा, परिवार के लिए लघु वनोपज सहित प्रत्येक काम में महिलाओं की केंद्रीय भूमिका है। इसका विचारणीय पक्ष यह है कि इसके उपरांत भी उनकी पहचान श्रमिक अथवा पुरुष के एक सहायक के तौर पर ही है। कुछ प्रगतिशील परिवारों को छोड़कर बात करें तो सामान्य परिवारों में वे कभी घर की मालिक नहीं बन पाती हैं; जिसकी वजह से कृषि कार्य का भार अपने कंधों पर उठाने वाली महिलाएं कृषि संबंधी निर्णय, नियंत्रण और किसानों को मिलने वाली समस्त सुविधाओं से वंचित रह जाती है। इस सबके बावजूद उन्हें किसान का दर्जा नहीं मिलता है।[2] खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) की 2011 की रिपोर्ट के अनुसार विश्व की कुल जनसंख्या में महिला किसानों की संख्या एक–चौथाई से अधिक है। इस रिपोर्ट में बताया है कि विकासशील देशों में कृषि श्रमिकों का 43 प्रतिशत अंश महिलाओं का है; इसके बाद भी कृषि से संबंधित परिसंपत्तियों, सामग्रियों और सेवाओं तक महिलाओं की पहुंच बहुत कम है।

वर्ष 2011 में किसान स्वामित्व कानून बन जाने के बावजूद भी कृषि क्षेत्र की अधिकांश महिलाएं असमानता, भेदभाव एवं आर्थिक व शारीरिक शोषण से मुक्त नहीं हो सकी हैं। कृषि जनगणना (2010–11) की रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्तमान में केवल 12.78 प्रतिशत कृषि जोत ही महिलाओं के नाम पर हैं इसी वजह से कृषि क्षेत्र में उनकी भूमिका निर्णायक नहीं है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रम के व्यापक योगदान के बाद भी उन्हें किसान नहीं माना जाता है। कृषि भूमि पर मालिकाना हक़ का मामला सिर्फ़ एक प्रशासनिक पहलू मात्र नहीं है, बल्कि इसके व्यापक सामाजिक–आर्थिक निहितार्थ हैं। इस एक अधिकार से व्यक्ति की पहचान, उसकी निर्णय क्षमता, आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास तथा उसके अधिकार व हक़ जुड़े हुए हैं। महिलाएं गंभीर आर्थिक संकट और आपदा की स्थिति में अपनी पैतृक भूमि का स्वतंत्र रूप से उपयोग करने में भी असमर्थ होती हैं। उनके पास जमीन का अधिकार न होने से निःसंदेह उनके सर्वांगीण

विकास का सपना और सशक्तीकरण के प्रयासों को गहरी क्षति पहुंचती है। इसलिए पैतृक जोत भूमि में पत्नी का नाम भी पति के साथ दर्ज हो, ऐसा कानून में प्रावधान किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण बात है जिसे समझने की आवश्यकता है– कि पुरुषों के प्रवासन के कारण कृषि कार्य पुरुषों से ज्यादा महिलाओं के हाथ में चला गया है, इसके बावजूद महिलाएं किसान नहीं हैं; क्योंकि उनके पास कृषि भूमि के मालिकाना हक़ के दस्तावेज नहीं हैं अर्थात वह खेतों की वास्तविक मालिक नहीं है।[3] इंस्टीट्यूट ऑफ ह्यूमन डेवलपमेंट– आईएचडी, दिल्ली द्वारा 2014 में जारी रिपोर्ट में बताया है कि देशभर में खेती में कार्यरत सभी महिलाओं में से 70 प्रतिशत महिलाएं ऐसे परिवारों से जुड़ी हैं जो प्रवासन देख रहे हैं।

कृषि क्षेत्र में महिला सहभागिता को बढ़ाने हेतु भारत के संस्थागत प्रयास

महिलाओं को कृषि क्षेत्र उनकी सहभगिता को लेकर जागरूक करने और उन्हें इस क्षेत्र में सम्मानजनक स्थान दिलाने के उद्देश्य से वर्ष 2017 में, भारत के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा प्रति वर्ष 15 अक्तूबर को राष्ट्रीय महिला किसान दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। निर्णय का आधार संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा 15 अक्तूबर को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाना था। 15 अक्तूबर, 2017 को देशभर के समस्त कृषि विश्वविद्यालयों, संस्थानों एवं कृषि विज्ञान केंद्रों में राष्ट्रीय महिला किसान दिवस मनाया गया। इस दिवस को मनाने का उद्देश्य कृषि में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को बढ़ाना है। इसके अलावा, कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में महिलाओं को और अधिक सशक्त बनाने के लिए तथा उनकी जमीन, ऋण और अन्य सुविधाओं तक पहुंच को बढ़ाने के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने किसानों के लिए बनी राष्ट्रीय कृषि नीति में उन्हें घरेलू और कृषि भूमि दोनों पर संयुक्त पट्टे देने जैसे नीतिगत प्रावधान किए हैं। राष्ट्रीय कृषि नीति में उन्हें किसान क्रेडिट कार्ड जारी करना, फसल, पशुधन पद्धतियों, कृषि प्रसंस्करण आदि सुविधाओं के माध्यम से जीविका के अवसरों का सृजन करवाए जाने जैसे प्रावधानों का उल्लेख भी शामिल है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय का लक्ष्य कृषि क्षेत्र में उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ किसानों के कल्याण के लिए उपाय करना है। साथ ही अपने समग्र जनादेश लक्ष्यों और उद्देश्यों के अंतर्गत यह भी सुनिश्चित करना है कि महिलाएं कृषि उत्पादन और उत्पादकता में प्रभावी ढंग से योगदान दे सकें और उन्हें बेहतर जीवनयापन के अवसर मिलें। इसलिए महिलाओं को सशक्त बनाने, उनमें क्षमता निर्माण करने, प्रौद्योगिकी और अन्य कृषि संसाधनों तक उनकी पहुंच को बढ़ाने के लिए उचित संरचनात्मक, कार्यात्मक और संस्थागत उपायों को बढ़ावा दिया जा रहा है और इसके लिए कई प्रकार की पहल की जा चुकी हैं।

कृषि में महिलाओं की अहम भागीदारी को ध्यान में रखते हुए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने वर्ष 1996 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत भुवनेश्वर में राष्ट्रीय महिला कृषि अनुसंधान केंद्र (एनआरसीडब्ल्यूए) स्थापित किया। यह संस्थान कृषि में महिलाओं से जुड़े विभिन्न आयामों पर कार्य करता है। भुवनेश्वर स्थित यह सेंटर कृषि प्रणालियों में महिलाओं के प्रभाव के पहचान के तौर–तरीकों और विभिन्न उत्पादन प्रणालियों के अंतर्गत विशेष रूप से महिलाओं के काम की तकनीक के विकास में लगा हुआ है। कृषि और घरेलू अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका और महत्व संबंधी अध्ययन केंद्र की सबसे महत्वपूर्ण परियोजनाओं में

शामिल रहा है। इसके अलावा, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 100 से अधिक संस्थानों ने कई तकनीकों का विकास किया ताकि महिलाओं की कठिनाईयों को कम करके उनका सशक्तिकरण हो। देश में 680 कृाि विज्ञान केंद्र हैं। हरेक कृषि विज्ञान केंद्र में एक महिला विशेषज्ञ है। वर्ष 2016–17 में महिलाओं से संबंधित 21 तकनीकियों का मूल्यांकन किया गया और 2.56 लाख महिलाओं को कृषि व संबंधित क्षेत्रों जैसे सिलाई, उत्पाद बनाना, मूल्य संवर्द्धन, ग्रामीण हस्तकला, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, पोल्ट्री, मछली पालन आदि का प्रशिक्षण दिया गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रमुख योजनाओं, कार्यक्रमों और विकास संबंधी गतिविधियों के अंतर्गत महिलाओं के लिए कम से कम 30 प्रतिशत धनराशि का आवंटन सुनिश्चित किया गया है। साथ ही विभिन्न लाभार्थी उन्मुखी कार्यक्रमों, योजनाओं तथा मिशनों के घटकों का लाभ महिलाओं तक पहुंचाने के लिए महिला समर्थित गतिविधियां शुरू करना तथा महिला स्वयंसहायता समूहों के गठन पर ध्यान केंद्रित करना ताकि क्षमता निर्माण जैसी गतिविधियों के माध्यम से उन्हें सूक्ष्म ऋण से जोड़ा जा सके और सूचनाओं तक उनकी पहुंच बढ़ सके एवं साथ ही विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने वाले निकायों में उनका प्रतिनिधित्व हो। इसके अलावा कृषि मंत्रालय द्वारा कई महिला समर्थित कदम भी उठाए गए जो काफी महत्वपूर्ण हैं।[4]

उपरोक्त संदर्भ में एक अमेरिकी संस्थान– आईएफपीआरआई के अध्ययन का उल्लेख करना विषय को विस्तृत करने के लिए उपयुक्त होगा। आईएफपीआरआई के अनुसंधान से यह बात सामने आई कि जब महिलाओं को पूंजी और अवसर दिया जाता है, तो वे कृषि उत्पादकता से लेकर गरीबी में कमी तक के विकास के परिणामों में बेहतरीन, सकारात्मक योगदान देती हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आम तौर पर कृषि अनुसंधान, विकास और विस्तार प्रणालियां तब कहीं अधिक सफल होती हैं जब वैज्ञानिक, शोधकर्ता और विस्तार एजेंट लैंगिक मुद्दों पर ध्यान देते हैं। वाशिंगटन स्थित अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान (आईएफपीआरआई) का कृषि में महिलाओं की भूमिका को बढ़ाना प्रमुख लक्ष्य है। यह संस्था स्त्री–पुरुष समानता के मुद्दों पर काम करती है। 'एनजेंडेरिंग एग्रीकल्चरल रिसर्च, डेवलपमेंट एंड एक्सटेंशन', (2011) नाम की पुस्तक और कृषि में महिला सशक्तीकरण सूचकांक (डब्ल्यूईएआई) का प्रकाशन इस संस्था के उल्लेखनीय कामों में से हैं। डब्ल्यूईएआई महिलाओं की भूमिका को मापने का एक उपयुक्त साधन है, जिससे अनुसंधानकर्ताओं को उन महिलाओं की पहचान करना आसान हो जाता है जो अशक्त और असमर्थ हैं। इससे प्रमुख क्षेत्रों में स्वायत्तता और निर्णय लेने की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने के कारगर उपायों को समझने में सहायता मिलती है।

महिला सशक्तिकरण के लिए वैसे तो वैश्विक स्तर पर बहुत सारे प्रयास हुए हैं किंतु अब तक इनका समग्र रूप में लाभ नहीं लिया जा सका है। यदि आज के दौर में इस तरह की कोई सकारात्मक पहल की जाती है, जिसमें इन समस्याओं से मुक्ति का मार्ग हो तो उसे सामाजिक रूप से स्वीकार्य बनाने की चुनौती सामने आ जाती है। महिला सशक्तिकरण और महिला शिक्षा की दिशा में किए जा रहे प्रयासों का भी यही हाल है। वैसे आजकल के दौर में सामाजिक रुझान में बड़े भारी बदलाव की मिशालें भी उभर कर आने लगी हैं। लड़कियों के प्रति तमाम अंकुश और शोषण के बावजूद उनमें अपने बूते कुछ कर गुजरने की जिद भी आज समाज में देखने को मिल रही है। लेकिन आज वास्तविक भारत यानी ग्रामीण क्षेत्र की जो स्थैतिक तस्वीर है,

उसे बदलने की जरुरत है। यद्यपि महिलाओं की शिक्षा व आर्थिक– सामाजिक सशक्तिकरण के लिए काफी प्रयास किए गए हैं किंतु अब जरूरत इस बात की है कि बदलते समय के अनुकूल उनके हक में समुचित कानूनी प्रावधानों को बनाने के साथ–साथ उन्हें ठीक से लागू किया जाए। महिला कृषक को वैधानिक आधार और प्रशासनिक समर्थन मिले, हम तभी समाज में वास्तविक बदलाव ला सकते हैं। इन सब कोशिशों से उनको सामाजिक स्वीकृति भी मिलनी प्रारंभ होगी।[5]

उल्लेखनीय है कि महिला रोजगार और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में झारखंड राज्य ने एक अच्छा उदाहरण पेश किया है। राज्य सरकार ने लीक से हटकर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप, भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता दिखाते हुए एक योजना बनाई है जिसके अंतर्गत प्रत्येक गांव में पानी और स्वच्छता की एक समिति होगी, जिसमें अनिवार्य रूप से गांव की एक महिला सदस्य शामिल होगी। समिति के उस विशेष सदस्य को 'जल सहिया' (जल मित्र) के रूप में पहचाना जाएगा। उस समिति में महिला सशक्तिकरण सुनिश्चित करने के लिए यह भी जरूरी किया गया है कि उक्त महिला सदस्य समिति की कोषाध्यक्ष होगी। अधिकारियों के अनुसार, यह समिति गांवों में जलापूर्ति योजनाओं के कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व निभाएगी। निश्चित रूप से इससे सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित हुई है और बेहतर परिणाम भी सामने आए हैं।

भारतीय कृषि क्षेत्र में महिला सहभागिता की उभरती प्रवृत्तियां

भारत के स्वतंत्रता आंदोलनों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी, उनके त्याग व बलिदान के अनेकों उदाहरणों के सामने आने के बाद और आधुनिक शिक्षा के साथ–साथ सामाज सुधार आंदोलनों तथा समाज सुधारकों के गंभीर प्रयासों से हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ। देश की आजादी के बाद, संविधान में महिला–पुरुष समानता और महिलाओं के कल्याण के लिए विशेष प्रावधानों के अंतर्गत उनकी शिक्षा, राजनीति, आर्थिक क्षेत्र एवं सार्वजनिक जीवन में भागीदारी बढ़ने से भी स्थिति में सुधार हुआ है। आज के भारत में महिलाएं गांवों से लेकर शहरों तक अपनी सार्थक उपस्थिति के साथ सफलता के रोज नये उदाहरण पेश कर रही हैं। यह सही है कि एक ओर जहां ऐतिहासिक कारणों ने देश में महिलाओं के सामर्थ्य, उनकी क्षमता व प्रतिभा को परंपराओं की बेड़ियों में जकड़ कर, उन्हें पुरुष पर निर्भर बनाकर दोयम दर्जे पर धकेलने का प्रयास किया। वहीं दूसरी ओर आधुनिक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक घटनाओं ने उनकी स्थिति को मज़बूत करके पुरुषवादी वर्चस्व को चुनौती देते हुए पुरुष प्रधान समाज के मिथक को तोड़ने में उसे सक्षम व सामर्थ्यवान बनाया, जिसमें आधुनिक शिक्षा प्रणाली का बड़ा योगदान रहा है।[6]

भारत में कृषि क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता की उभरती प्रवृत्तियों को उजागर करने हेतु मैं अपनी बात को एक उदाहरण और एक प्रमुख घटनाक्रम का उल्लेख करके रखना अधिक उपयुक्त मानता हूं। इनके अंतर्गत महिला किसानों की नई भूमिका के रूप में अनुकरणीय भागलपुर की कंचन देवी तथा घटनाक्रम के रूप में हाल के दिनों में केंद्रीय कृषि क़ानूनों के विरुद्ध घटित राष्ट्रव्यापी किसान आंदोलनों में महिला किसानों की स्वतंत्र किसान के रूप में नेतृत्व व सहभागिता का उल्लेख शामिल हैं।

मई 2016 में, ऑक्सफैम इंडिया और सेवा भारत के अभिनव प्रयासों से एक परियोजना की पहल की, जिसका उल्लेख समीचीन होगा। इस परियोजना में बिहार के मुंगेर और भागलपुर जिले के 35 गांवों में सब्जी आपूर्ति श्रृंखला के माध्यम से महिला किसानों का आर्थिक सशक्तिकरण, मुख्य उद्देश्य के रूप में शामिल था। कई ग्राम जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से इसमें महिला किसानों को जोड़ा गया। परियोजना कार्यान्वयन टीम ने प्रतिभागियों के रूप में महिला किसानों के साथ संपर्क बनाने का निर्णय करके उनसे आर्थिक सशक्तिकरण के साझा लक्ष्य के लिए हाथ मिलाने की अपील की। इस परियोजना के प्रभावी क्रियान्वयन के नतीजों के रूप में भागलपुर के लोधीपुर खुर्द की 29 वर्षीय कंचन देवी का नाम उभरकर आया। कंचन देवी ने एक किसान के रूप में, स्थायी कृषि पद्धतियों पर कई प्रशिक्षण तथा क्षमता निर्माण कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेकर महिला किसानों के अधिकारों और हुकुकों के बारे में सीखा व समझा। अब वे एक ग्राम स्तरीय महिला सब्जी उत्पादक समूह की अध्यक्ष हैं और उन्हें उनके समुदाय द्वारा राज्य में किसान उत्पादक संगठन के निदेशक मंडल के सदस्य के रूप में नामित किया गया है। बिहार सरकार के कृषि उत्पादन आयुक्त ने महिला किसानों को सशक्त बनाने में उनके प्रयासों की सराहना करते हुए 26 अप्रैल, 2018 को उन्हें 'एजेंट ऑफ चेंज' के रूप में सम्मानित किया। कंचन देवी का कहना है कि– 'दो वर्ष पहले, कोई यह मानने को भी तैयार नहीं हो सकता था कि हम स्थायी कृषि पद्धतियों के माध्यम से ग्रामीण व्यापार और कृषि उत्पादकता वृद्धि में अपनी कहानी लिखेंगे, लेकिन अब लोग हमारी पहल को स्वीकार करके पहचानने लगे हैं'।[7]

हाल के वर्षों में देश के विभिन्न भागों में हुए किसान आंदोलनों में महिला किसानों ने सक्रिय रहकर स्वतंत्र किसान के रूप में अपनी सहभागिता के बल पर, देश और विश्व समुदाय के समक्ष एक कामयाब उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। पंजाब, हरियाणा उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि राज्यों से देश की राजधानी दिल्ली की ओर कूच करने के बाद दिल्ली की बॉर्डर्स पर हुए पड़ावों के बाद राष्ट्रव्यापी किसान आंदोलन में महिला किसानों की उल्लेखनीय सहभागिता न केवल किसान नेताओं के लिए गौरान्वित कर देने वाला अनुभव था, अपितु इस आंदोलन की ओर विश्व समुदाय का ध्यान खींचने वाली बड़ी घटना रही है। आंदोलन में महिला किसान अपनी स्वतंत्र पहचान कायम करके अग्रिम पंक्ति में खड़ी दिखाई दी। किसान आंदोलन के नेताओं ने महिलाओं की महत्वपूर्ण नेतृत्वकारी भागीदारी को सम्मानपूर्वक स्वीकार किया और महिला श्रम को आदर दिया। ध्यान देने की बात यह है कि पंजाब, हरियाणा उत्तर प्रदेश, राजस्थान जैसे प्रान्तों से, जहां पितृसत्तात्मक सामंती सामाजिक संरचना गहराई से मौजूद है, वहां किसान आंदोलन में महिलाओं का स्वतंत्र किसान के रूप में उभरकर आना वास्तव में एक बड़ी घटना है। इस रूप में किसान आन्दोलन महिला सशक्तिकरण आंदोलन के रूप में भी काम करने वाला साबित हुआ है।[8]

2018 में नासिक से मुंबई तक के महिला किसानों के मार्च के दौरान पीपुल्स आर्काइव्स ऑफ रूरल इंडिया (पीएआरआइ) ने महिला किसानों पर एक लेख लिखा था। इससे राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के श्रम बल का मुद्दा चर्चा में आया। इसके बाद 2020 में तीन केंद्रीय कृषि

कानूनों के खिलाफ आंदोलन में हज़ारों महिलाओं ने सहभागिता की। टिकरी बार्डर पर भारतीय किसान यूनियन से जुड़ी महिला आंदोलनकारी हरप्रीत कौर का कहना था कि उनके क्षेत्र (भटिंडा जिला) में किसानों की बढ़ती आत्महत्या की समस्या के कारण किसानों के विरोध प्रदर्शनों में महिलाओं की व्यक्तिगत हिस्सेदारी अधिक है। क्योंकि उनकी समस्या कृषि संकट तो है ही, इस संकट के चलते उनके पुरुषों की आत्महत्याओं के कारण महिलाओं में विधवा होने का संकट भी बढ़ रहा है। लगभग ऐसी ही स्थितियों से अन्य प्रान्तों की महिलाओं को भी गुजरना पड़ा है। इसलिए पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की महिलाओं ने दिल्ली के चारों तरफ़ किसानों के आंदोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया। इन महिलाओं ने घरेलू जिम्मेदारियों को निभाते हुए आंदोलन को धीमा नहीं पड़ने दिया। इसके लिए उन्होंने विशेष 'रोटेशन सिस्टम' तैयार किया। जिसके अंतर्गत प्रत्येक पांच–दस दिनों के बाद परिवार की कुछ महिलाएं आंदोलन से घर लौट आती थी और उनके स्थान पर परिवार की ही दूसरी महिलाएं आंदोलन में शामिल हो जाती थी। कई महिलाओं ने आंदोलन स्थलों पर स्वैच्छिक तौर पर खाना पकाने, दवा वितरण, बैठकों के आयोजन, प्रेस ब्रीफिंग की गतिविधियों के माध्यम से अपना समर्थन देते हुए एकजुटता दिखाई। ऐसी ही एकजुटता का उदाहरण राजस्थान में भी सीटू से जुड़ी आशा कार्यकर्ताओं ने भी प्रस्तुत किया। उन्होंने शिविर लगाकर आंदोलनकारियों को मुफ्त में दवाइयां बांटी। इन महिलाओं के जज़्बे को देखकर अखिल भारतीय किसान सभा के नेता अमरा राम, जिन्होंने जयपुर दिल्ली राजमार्ग के शाहजहांपुर बॉर्डर पर आंदोलन का नेतृत्व किया था, का कहना है कि "महिला किसान अगली पंक्ति में आकर लड़ाई लड़ रही हैं और हम उनका अनुसरण कर रहे हैं"। संयुक्त किसान मोर्चा ने भी 13 जनवरी 2021 को प्रेस नोट में लिखा था कि 'कृषि में महिलाओं का योगदान अतुलनीय है और यह आंदोलन महिलाओं का भी एक आंदोलन है'। किसान आंदोलन और इससे पूर्व शाहीन बाग आंदोलन की विशेषता यह रही है कि इन्होंने भारतीय महिलाओं की रूढ़िवादी छवि को चुनौती दी है। इन आंदोलनों से पता चलता है कि आधुनिक विरोध स्थल 'प्रतिरोध और शक्ति' के साथ साथ लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण के लिए भी महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। यह सही है कि पिछले कुछ वर्षों से महिलाओं के प्रति समाज का नजरिया बदला है खास तौर से देशभर में हुए किसान आंदोलनों में महिलाओं की उत्साह जनक सहभागिता के बाद से। परंतु इन सुखद और सकारात्मक उदाहरणों के बाद भी हम इस ज़मीनी वास्तविकता को नज़रअंदाज नहीं कर सकते हैं कि देश में कृषि क्षेत्र की महिला आबादी के लिए अभी बहुत कुछ करना शेष है।[9]

सुझाव

- यह स्वीकार करते हुए कि महिलाओं के ज्ञानवर्धन से ग्रामीण भारत का स्वरूप बदल सकता है, देश में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए काफी प्रयास किए गए हैं। परंतु हमारे अब तक के प्रयासों का फोकस कृषि क्षेत्र की महिलाओं को एक लाभार्थी के रूप में मानते हुए उनके उत्थान के लिए काम करना रहा है। आज अनेकों प्रयोगों और अनुभव सिद्ध अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि महिलाओं के सशक्तिकरण को आकार देने में की उनकी भूमिका लाभार्थी की नहीं बल्कि सहभागी की होनी चाहिए, विशेष रूप से

कृषि में। अतः कृषि में महिलाओं को लेकर हमारा दृष्टिकोण सहभागिता के साथ संपोषणीय विकास मूलक होना चाहिए।

- प्रसिद्ध कृषि अर्थशास्त्री डॉ. स्वामीनाथन के पांच सूत्रीय सुझावों को अपनाते हुए उनके प्रभावी क्रियान्वयन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। जिनके अंतर्गत भूमि, जल और जीन की देखभाल, तकनीक और संसाधन, ऋण और बीमा, फ़सलोत्तर प्रबंधन और लाभप्रद बाज़ार के अवसर शामिल हैं। इससे महिलाओं की सहभागी भूमिका को उभार करके कृषि को उनके लिए बौद्धिक रूप से प्रेरक और आर्थिक दृष्टि से लाभदायक बनाया जाना संभव हो सकेगा।
- कृषि विकास एवं अनुसंधान से जुड़ी विभिन्न संस्थाओं में विकसित प्रौद्योगिकियों, अभिनव प्रयोगों और विचारों का व्यापक प्रचार–प्रसार करने की आवश्यकता है जिससे ग्रामीण महिलाएं उनका पूरा लाभ उठा सकें। महिलाओं को एकजुट करने, उनके समूह बनाने, संगठनात्मक, तकनीकी और उनकी व्यावसायिक क्षमता व सामर्थ्य में सुधार के लिए पर्याप्त संसाधनों के साथ नये कार्यक्रमों की रूपरेखा बनानी होगी। इन कार्यक्रमों को महिलाओं और अन्य संगठनों के साथ सहभागीय परामर्श से तैयार करने की आवश्यकता है।
- मार्च 2012 में, दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन– 'ग्लोबल कॉफ्रेंस ऑन वीमेन इन एग्रीकल्चर' में सुझाए गए उपायों– जिनमें छोटी जोत वाले गरीब किसानों, विशेषकर महिला किसानों की आजीविका और संपोषणीय विकास की उभरती चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यवस्था में विद्यमान खामियों को दूर करने हेतु अनुसंधान कार्यक्रमों में आमूल–चूल परिवर्तन करने का सुझाव शामिल था, उनको क्रियान्वित किया जाना चाहिए। इनके क्रियान्वयन के लिए एक कार्यवाही पद्धति 'फ्रेमवर्क फॉर एक्शन' तैयार किया जाए जिससे समावेशी विकास एवं सहभागिता को बढ़ाने के लिए महिलाओं को एकजुट और सशक्त बनाया जा सके।
- महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण देश की गरीबी कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इसके लिए, हमें पहले मौजूदा अनुपयुक्त आर्थिक मॉडल को ठीक करने की आवश्यकता है जो आर्थिक असमानता पैदा कर रहा है और लैंगिक असमानता को कम करने में कारगर नहीं रहा। यह सही है कि अर्थिक विकास के नवउदारवादी मॉडल ने हमारे सामाजिक ढांचे में मौजूद लिंग व जाति आधारित भेदभावों पर प्रहार किया है परंतु महिलाओं के लिए बेहतर गुणवत्ता और बेहतर भुगतान वाली नौकरियां, अवैतनिक देखभाल कार्य में असमानता को दूर करना जटिल बना दिया है और महिलाओं के प्रभाव और निर्णय लेने की शक्ति को भी बाधित किया है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को प्राप्त करने के लिए, हमें एक ऐसी संवेदनशील मानव अर्थव्यवस्था की ज़रूरत है जो महिलाओं और पुरुषों के लिए समान रूप से काम करे।
- अंत में, भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने मार्च 15, 2012 को दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन–'ग्लोबल कॉन्फ्रेंस ऑन वीमेन इन एग्रीकल्चर' के

समापन भाषण में बताई गई बातों का उल्लेख करते हुए उन पर अमल करना उपयोगी होगा। उन्होने सुझाया था कि "कृषि के विकास और स्त्री–पुरुष के बीच असमानता दूर करने के मुख्यधारा के प्रयासों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए उन्हें सशक्त और समर्थ बनाने हेतु उनको ज्ञान और कौशल से संपन्न बनाने की ज़रूरत है। आज विभिन्न कारणों से वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकी समुचित रूप से ग्रामीण महिलाओं तक नहीं पहुंच पा रही हैं, इसमें सुधार ज़रूरी है। अनुसंधान प्रणाली में महिलाओं के ज्ञान और अनुभव का भी सहयोग लिया जाना चाहिए, क्योंकि वे सदा से ही पारंपरिक ज्ञान और नवाचार का स्रोत रही हैं"। राष्ट्रपति ने कृषि अनुसंधान और विकास के क्षेत्र में महिलाओं को आगे लाने के लिए प्रत्येक गांव में महिला किसान मंडल के गठन का भी सुझाव दिया ताकि महिलाओं को कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों से जुड़े तमाम पहलुओं की जानकारी दी जा सके।[10]

निष्कर्ष

काफी हद तक शिक्षा और तकनीकी ज्ञान से वंचित महिला किसानों को लेकर हाल के वर्षों में अन्य अनेक सामाजिक–आर्थिक कारकों का भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। उनकी इच्छा और उत्सुकता के बावजूद सामान्य रूप से वे नई तकनीक, नवाचार और बाजार के अवसरों का उचित लाभ नहीं उठा सकी हैं। महिलाओं को कृषि में जिन अभावों और अवसरों का सामना करना पड़ता है, वे बहुत हद तक देश की कृषि पारिस्थितिकी और भौगोलिक क्षेत्रों पर निर्भर होता है। अनेक नीतिगत सुधारों और बड़े स्तर पर हस्तक्षेप के बाद भी महिलाओं के अधिकारों और सम्मान को लेकर जिस प्राथमिकता से ध्यान दिया जाना चाहिए वह नहीं हो सका है।

यह सही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न सामाजिक कल्याणकारी योजनाओं और जागरुकता कार्यक्रमों ने महिलाओं को समाज के स्वीकृति प्राप्त कामकाजी वर्ग में हिस्सेदार बनाने में काफी हद तक सफलता पाई है। ग्राम पंचायतों में महिला आरक्षण, महानरेगा में उनकी सुनिश्चित भागीदारी, आंगनबाड़ी, आशा कार्यकर्ता जैसी नई भूमिकाओं ने वास्तव में ग्रामीण महिलाओं के उदास चेहरों पर आत्मनिर्भरता की चमक बिखेरने और आत्मविश्वास से लबरेज़ करने का काम किया है। अब ग्रामीण समाज में महिलाओं ने अपनी भागीदारी निभानी शुरू की है और समाज में उनकी प्रस्थिति में सकारात्मक रूपांतरण देखा जा सकता है। लेकिन इन बहुत सी सुखद बातों के अलावा कुछ ऐसे भी सामाजिक–आर्थिक पहलू हैं जो ग्रामीण महिलाओं के सहभागीय सशक्तिकरण के मार्ग में अभी भी बाधक बने हुए हैं।[11] इस संबंध में विशेषज्ञों का मानना है कि यदि कृषि में महिलाओं को बराबर का दर्जा मिले तो कृषि कार्यों में महिलाओं की बढ़ती संख्या से उत्पादन में बढ़ोतरी हो सकती है और देश में भूख और कुपोषण को भी रोका जा सकता है। इसके अलावा ग्रामीण अजीविका में सुधार होगा, जिसका लाभ पुरुष और महिलाओं, दोनों को होगा। वैसे तो अब सरकार की विभिन्न नीतियों जैसे जैविक खेती, स्वरोजगार योजना, भारतीय कौशल विकास योजना, इत्यादि में महिलाओं को प्राथमिकता दी जा रही है। परंतु यदि महिलाओं को सहभागीय अवसर और सुविधाएं मिलें तो वे देश की कृषि को द्वितीय हरितक्रांति की तरफ ले जाने के साथ देश के विकास का परिदृश्य बदल सकती हैं।

❒

सन्दर्भ –

1. पटेल, अमृत. (2012): 'कृषि क्षेत्र में महिलाएं', योजना, वर्ष–56, अंक–6, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली. पृ. 11–12.

2. कुमार, गौरव. (2013): 'ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के सामाजिक–आर्थिक आयाम', कुरुक्षेत्र, वर्ष–59, अंक–10, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली. पृ. 13–15.

3. जैन, पूर्णिमा. (2018): 'जेंडर जस्टिस एंड इंक्लुजन', रावत पब्लिकेशन', जयपुर.

4. कुमार, गौरव. (2018): 'कृषि क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता', कुरुक्षेत्र, वर्ष–64, अंक–4, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 66–68.

5. तिवारी, कणिका. (2013): 'महिला सशक्तिकरण का आत्मावलोकन', कुरुक्षेत्र, वर्ष–59, अंक–10, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली. पृ. 3–6.

6. जैतली, ममता. (2006): 'आधी आबादी का संघर्ष', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.

7- https://www.oxfamindia.org/women-empowerment-india-farmers

8- https://www.aljazeera.com/news/2021/3/8/thousands-of-indian-women-join-farmers-protests-against-new-laws

9- https://www.downtoearth.org.in/news/agriculture/international-women-s-day-50-000-women-farmers-join-protest-at-singhu-and-tikri-75834

10. पटेल, अमृत. (2012): 'कृषि क्षेत्र में महिलाएं', पूर्वोक्त

11. चौधरी, कृष्ण चन्द्र.(2013): 'मनोसामाजिक सशक्तिकरण से ग्रामीण महिलाओं के जीवन–स्तर में सुधार', कुरुक्षेत्र, वर्ष–59, अंक–12, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली. पृ. 56–59.

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 13–20

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

आदिवासियत का काव्य संसारः "जंगल पहाड़ के पाठ"

डॉ. बन्ना राम मीना
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पीजीडीएवी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली–110065
मोबाइल नं. 9910272879 E-mail - bannaramanshu@gmail.com

प्रस्तावना

आदिवासियत एक 'संस्कृति' हैं जो आदिवासी समुदाय के जंगल, पहाड़, धर्म, संस्कृति, प्रकृति, पर्व–त्योहार, संस्कार, लोक कलाएँ और उनके अस्तित्व को परिभाषित करती है। आदिवासियत को समझने के लिए आदिवासियों द्वारा लिखित साहित्य को ही आधार बनाना उचित होगा। प्रस्तुत शोध आलेख में आदिवासी कवि के काव्य संसार के माध्यम से आदिवासियत को समझने की पड़ताल की गई है। पिछले करीब दो दशकों से हिन्दी साहित्य में जल, जमीन और जंगल से जुड़े मुद्दों और सवालों ने, आदिवासी–लेखन को, एक अलग पहचान दी है। आज देश भर में, लगभग हर भाषा में यह लेखन मुखर है। आदिवासी सवालों पर महादेव टोप्पो अस्सी के दशक से ही लिखते रहे हैं। महादेव टोप्पो की कविता आदिवासी–दुनिया के संर्घष, जद्दोजहद, आक्रोश, पीड़ा, प्रतिरोध, के अलावा आशाओं, आकांक्षाओं, सपनों से न केवल परिचित कराती है बल्कि आदिवासी–जीवन और झारखंडी–परिवेश से जुड़े, अनदेखे कई मुद्दों, सवालों की स्थानीयता को, वैश्विक–संदर्भों से भी जोड़कर एक नया आयाम देती है।

आदिवासियत और जयपाल सिंह मुण्डा

भारत के समस्त आदिवासियों की आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति के लिए संघर्ष में जयपाल सिंह मुण्डा का महत्वपूर्ण योगदान है। "चालीस–पचास के दशक में भारतीय राजनीति के पटल पर आदिवासी सवालों को 'आदिवासियत' के रूप में सूत्रबद्ध और इसे स्थापित करने में जयपाल सिंह मुंडा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत के पहाड़ों, जंगलों, पठारों और मैदानी भागों में बिखरे विभिन्न आदिवासी कबीलों को 'आदिवासी' पहचान और सवाल के रूप में एकजुट करने का ऐतिहासिक राजनीतिक काम उन्होंने ही किया है।"[1] आदिवासियत के संघर्ष के लिए जयपाल सिंह मुण्डा ने एक रास्ता दिखाया, भले ही उनके जीते जी यह संभव नहीं हुआ। परन्तु हमारे समक्ष उनकी समझ साकार हुई। दूर दृष्टि और परखने की क्षमता न होने से आदिवासी संघर्ष की अपेक्षाएँ अनुकूल न बनकर लूटखंड बनाम जहरखंड

में तब्दील हो गई। जिसके कारण आदिवासियों को उनकी जमीन का हक नहीं मिल रहा है। वर्तमान में विभिन्न सांमतवादी, साम्राज्यवादी, तानाशाही, पूँजीवादी, मुनाफाखोर तथा उपभोक्तावादी–आत्मकेन्द्रित संस्कृति ने आदिवासी समाज को बुरी तरह ग्रस लिया है। इसके खिलाफ वह बौद्धिक गलियारों में लगातार अपना प्रतिरोध दर्ज कर रहे हैं। आदिवासी बुद्धिजीवी अपनी पारंपरिक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मानसिक, भाषिक तथा कला संबंधी अच्छाईयों को देश, दुनिया और समाज के बीच दर्ज कर रहे हैं। पूरी दुनिया में जल, जमीन और जंगल से जुड़ी उनकी सजगता, जिजीविषा, पड़ताल, सवाल और पुरखों की अदम्य संघर्षशीलता, उन्हें बहुत कुछ नया लिखने के लिए प्रेरित करती रहती है, वहीं आज के संदर्भ में पृथ्वी, प्रकृति, मनुष्य, मनुष्यता और आदिवासियत को बचाने के लिए विकास, उपभोक्तावाद, भेदभाव, पूँजी और मुनाफा के संदर्भ में इनके अंतर्संबंधों और अंतर्विरोधों को समझने के लिए आज ज्यादा प्रासंगिक हो गई है। ऐसे में महादेव टोप्पो का काव्य–संग्रह 'जंगल पहाड़ के पाठ' महत्वपूर्ण कविता संग्रह के रूप में हमारे समक्ष आता है।

पुरखा–दृष्टि और गैर–आदिवासी दृष्टिकोण

महादेव टोप्पो की कविता आदिवासी आन्दोलनों के इतिहास की उपज है। टोप्पो पूरी ईमानदारी और गहराई के साथ मेनस्ट्रीम के कल्चर को आदिवासियों पर थोपने की प्रक्रिया की पड़ताल करते है। आदिवासी भाषा, जल, पहाड़, जमीन, जज्बात उनके काव्य संसार के केन्द्रीय भाव हैं। इसलिए बाहरी प्रतिमानों से मुक्त होकर आदिवासी जीवन से संवाद करना उनकी कविता का लक्ष्य है। महादेव टोप्पो की कविता सांस्कृतिकरण की चौकाचौध में चमकते हुए रंगों की चालबाजी का पर्दाफाश करती है–

"पहले ले आये वेद–पुराण फिर रामायण,फिर कुरान,
फिर लाये बाइबल, हद तो यह कि, अब दे गये त्रिशूल
और ले गये हैं हमारे हल, बैल, कुदाल, कुल्हाड़ी, हमारे तीर कमान"[2]

गैर–आदिवासी दृष्टिकोण से आदिवासी समुदाय के जीवन–मूल्य और विश्व दृष्टि को नहीं समझा जा सकता है। आदिवासी समुदाय को समझने के लिए इन समाजों के साथ रहना और जीना जरूरी है। इसके बिना इनके जीवन पर साहित्यिक मूल्यांकन करना कोरा बुद्धिविलास ही होगा। सहजीविता, सहअस्तित्व, 'जीयो और जीने दो' आदिवासियत की प्रमुख विशेषता है। 'समकालीन हिन्दी उपन्यास और दिकू समाज का आदिवासी चिंतन' लेख में रोहिणी अग्रवाल इस संबंध में कहती हैं "बेशक सृजन के समय रचनाकार सृष्टा होता है, लेकिन उसके सृष्टा के भीतर बैठा बोध उसके वर्ग, धर्म, लिंग और वय से निर्देशित प्रभावित होता हुआ उसे जो दृष्टि और संवेदना देता है, वही उसके लेखकीय व्यक्तित्व का सृजन करता है और रचना में प्रतिफलित होता है।"[3] वरिष्ठ आदिवासी चिंतक रोज केरकेट्टा आदिवासी साहित्यकार और गैर–आदिवासी साहित्यकार के बीच सृजनात्मक अंतर को स्पष्ट करती हुई कहती है, "गैर–आदिवासी द्वारा रचित आदिवासी विषयक साहित्य में शिल्प है परन्तु आदिवासी आत्मा नहीं है। उसमें सृजक अपनी दृष्टि से अच्छाई–बुराई का कलात्मक विवरण रखता है। लेकिन आदिवासियों का सच उससे अलग है।"[4] इस प्रकार आदिवासियत को समझने के लिए गैर–आदिवासी दृष्टिकोण के दिकू चश्में को हटाना पड़ेगा। आदिवासी समाजों को लेकर

मुख्यधारा के समाज का नजरिया सदियों से पूर्वाग्रही रहा है। महादेव टोप्पो की कविता उनके नजरिए में बदलाव की उम्मीद और पूर्वाग्रहों के खिलाफ एक बुलंद आवाज है–

"तुम्हें जो लिखना है लिखो, जो छापना है छापो
नंगी, अंधनंगी तस्वीरें हमारी, मैं कुछ नहीं बोलूँगा !"[5]

आदिवासी समुदाय का मूल्यांकन करना है तो हमें बाहरी समाज की संस्कृति और संस्कारों से आजाद होकर महादेव टोप्पो की कविता से संवाद करना पड़ेगा। यह कविता सदियों से गैर–आदिवासी दृष्टिकोण की अंधी गुफा के द्वार पर आशा और नई चेतना की दस्तक है। यह शताब्दियों के अंधेरे को समझने की कोशिश है। गैर–आदिवासी दृष्टिकोण की पहेली को सुलझाती है। महादेव टोप्पो की कविता आदिवासी संघर्ष, आकांक्षा, व्यथा के रूप, रंग, आकार एवं आदिवासीपन को देखने, महसूस करने की दिशा में अगला कदम है। उनकी कविता आदिवासी जीवन को देखने का अलग दृष्टिकोण एवं अनुभव लेकर उससे दृष्टि सम्पन्न बनती है। कवि कविता के माध्यम से यही प्रयास कर रहा है लेकिन आदिवासी वातावरण में विकसित अपने नजरिए से, अंतर यही है। जबकि सभ्य समाज इसे अपने बनाये मापदंड से मापना चाहता है फिर कवि कहता है–

"मेहरबानी कर इसलिए, मेरी कविताएँ न पढ़ें आप
पहाड़ों, पेड़–पौधों,जगंल को भी, नदी–झरनों को भी
आदमी समझें, पहले आप, फिर कविताएँ पढ़े मेरी आप।"[6]

प्रकृति,सांस्कृतिक विरासत और मातृभाषा को बचाने का स्वर

जंगल, पहाड़ और जमीन पर आदिवासियों का सामुदायिक अधिकार होता है। पूँजीपतियों के लिए जमीन सिर्फ आर्थिक विकास का जरिया भले हो लेकिन आदिवासियों के लिए जमीन जीवन के लिए अनिवार्य इकाई है। क्योंकि प्रकृति पर ही इनका धर्म, पर्व त्योहार, संस्कृति, संस्कार आदि आधारित है। प्रकृति से दूर करने का अर्थ इनके अस्तित्व को खतरे में डालना है। हेराल्ड एस. तोपनो के लेख 'उपनिवेशवाद के शिकंजे में जनजातीय क्षेत्र' में इस आदिवासियत की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। वे कहते हैं "भूमि को ही लें, यह उनके लिए जमीन का एक टुकड़ा भर ही नहीं होता है। भूमि के साथ उनकी भावनाएँ जुड़ी होती है। आदिवासियों के लिए उनकी पारंपरिक जमीन प्रतीकात्मक और भावनात्मक मायने रखती है। जमीन के संबंध में आदिवासियों की अवधारणा को दिकू समाज समझ नहीं पाते। भूमि का स्वामित्व सामूहिक होता है। उनका समाज, संस्कृति, धर्म, पहचान यहाँ तक कि उनका अस्तित्व भी जमीन से जुड़ा होता है।"[7] दूसरी तरफ दिकू समाज ने प्रकृति का अपने स्वार्थ के लिए दोहन किया है। "आदिवासी समुदाय भी पेड़–पौधों का इस्तेमाल करता है, पर वे कभी भी अपनी जरूरतों के लिए उन्हें नष्ट नहीं करते। अगर वे लकड़ी के लिए पेड़ की डाली काटते हैं तो इस बात का ध्यान रखते हैं कि कटी हुई जगह से फिर डालियाँ निकल आएँ। पर दिकू समाज ऐसा नहीं करता। वह तने से ही पेड़ को काट डालता है। इससे पेड़ के जीवित रहने की संभावना हमेशा के लिए खत्म हो जाती है।"[8] प्रकृति आधारित संस्कृति और जीवन आदिवासियों की विशेषता है। देश में जंगल वहीं बचे हुए हैं जहां आदिवासियों की रिहाइश है। व्यवस्था में मौजूद अन्याय और अराजकता

लगातार आदिवासी की छाती पर हथौड़े की तरह चोट करती हैं। अपने पहाड़, जंगल से दूर कर उनको पिछड़ा बनाने की साजिश का कवि पर्दाफाश करता हैं। उन्होंने व्यंग्य–भाषा में आदिवासी समुदाय की आकांक्षाओं, उम्मीदों, सपनों और संघर्षों को अभिव्यक्ति दी है। प्रजातंत्र और उसके संचालकों के प्रति असंतोष और निराशा है। आदिवासी समुदाय का यह असंतोष टोप्पो की कविता का मूल तेवर है। आदिवासी अपनी जीवन शैली में जीते हुए बदलाव की सीढ़ियों पर चढ़कर, मुख्यधारा के षड्यंत्र को लेखन के जरिए सामने ला रहे हैं। उनके वैचारिक हमलो के खिलाफ कलम की ताकत से चिंतित लोगों के लिए कवि कविता रचता है–

"जब तक थे वे, जंगलों में
माँदर बजाते, बाँसुरी बजाते , करते जानवरों का शिकार
अधनंगे शरीर, वे बहुत भले थे" [9]

महादेव टोप्पो आदिवासियों को उनके जंगल, पहाड़ों से महरूम करने की साजिश का लगातार भण्डाफोड़ करती है। आज हम उपभोक्तावादी संस्कृति के जाल में फँस रहे हैं। सिर्फ अपने लाभ और हानि तक सीमित हो रहे हैं। मुख्यधारा की चमकदार जीवनशैली आदिवासी जीवन पर हावी होती जा रही है। "त्रासदी, एक आशा" नामक कविता में विलुप्त होती आदिवासियत का बचाव, सांस्कृतिक विरासत, माँदर की थाप पर थिरकना, आदिवासीपन, पुरखों की विरासत को कैसे बनाए रखें इन सबका उत्तर महादेव टोप्पो की कविता है–

"मै एक जगंली, एक आदिवासी, महसूस करता हूँ घुटन
कि असभ्य से सभ्य बनने की कोशिश में, जीवन की अन्धी दौड़ में
एक पूर्जा बनता जा रहा हूँ , न बन पा रहा हूँ अमीर और न सभ्य
और न बचा पा रहा हूँ अपना आदिवासीपन, न पुरखों की विरासत"[10]

छिनते जंगल और पहाड़ के दर्द को आदिवासी समाज ने लोक कंठों में दर्ज किया है। इसलिए कवि मातृभाषाओं को बचाने का संकल्प करता है। "आदिवासी समाज की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की धमक ने भारत के भाषाई जगत में अब तक बहिष्कृत रही आदिवासी भाषाओं की उपस्थिति से भद्रजनों को सकते में डाल दिया है। क्योंकि इससे उनका भाषाई एकाधिकार और नस्ली श्रेष्ठता का दंभ दरक गया है।"[11] कवि का मानना है कि मातृभाषा में लिखने से जल, जमीन, जमीर, और जीवन से जुड़ी भावनाएँ, स्थानीयता को समझने की वैश्विक दृष्टिकोण एवं समझदारी तो देती है, इसके विपरीत वैश्विक दृष्टिकोण को समझने की स्थानीयता भी। इसलिए एक अनजान आदिवासी गाँव से चलकर पूरे विश्व में फैल जाने की विस्तृत मानवीय संवेदना, आकांक्षा और सम्भावना कविता में सिमटी है–

"रोटी तो हम माँगेंगे ही, कटते वृक्षों के साथ चिपकेंगे भी
छिनती जमीन की खातिर देंगे जान भी, मरती अपनी भाषा की खातिर
माँगेंगे तुम्हारे अखबार में दो कॉलम भी,
रेडियो, टीवी में कुछ घंटे का प्रसारण समय भी।"[12]

प्रकृति से जुड़ाव–लगाव आदिवासियत की खास विशेषता है। आदिवासियत में वर्तमान के प्रति ठोस जीवन दृष्टि अपनाई जाती है। इससे जीवन में उमंग, उत्साह और उल्लास उत्पन्न

होता है और निराशा, अवसाद, विषाद के लिए कोई जगह नहीं होती। आदिवासी संसार को नकारते नहीं क्योंकि संसार को बसने लायक बनने के लिए उनके पूर्वजों ने खून पसीना बहाया। नगाड़े की धमक, बाँसुरी की तान, माँदर की ताल आदिवासियत की खास विशेषता है। महादेव टोप्पो ने अपनी कविता 'माँदर का साथ' में माँदर की महता को रेखांकित किया है–

"जब तक बदलते मौसम के साथ, माँदर के बदलते तालों पर नहीं थिरकोगे
खद्दी, करम, माघे, बा पोरोब, जतरा में नहीं नाचोगे
चाँद के घटते–बढ़ते रूपों, आकारों के साथ, माँदर के बदलते तालों पर।"[13]

डॉ. राम दयाल मुंडा कहते थे– 'जे नाची से है बाँची'।[14] जो भाई बहन नाचेगा, नाच–गान कर सोचेगा, सोचसमझकर नाचेगा। जो हर तरह से संगठित होकर अपने अखाड़ा को बचाएगा, संघर्ष करेगा, साहित्य लिखेगा, वही बचेगा।

"समान लय–ताल में, गाओगे नहीं गीत
माँदर को नहीं समझोगे, अखड़ा में नाचना–कूदना"[15]

आज आदिवासी समुदाय की की ऐसी छवि बना दी गयी है जो वास्तविक नहीं है। उसे जंगल में माँदर या बाँसुरी बजाते एक निरीह, असहाय, खामोश आदमी के रूप में देखने का साँचा गढ़ लिया गया है, जो विस्थापित किये जाने पर गुस्से में कभी–कभी चीख–चिल्ला लेता है। लेकिन जैसे ही एक जुझारू आदिवासी इस साँचे से बाहर निकलता दिखता है, नस्लवादी लोगों की तकलीफें बढ़ जाती है तब कवि कह उठता है–

"मुझे भी नहीं समझोगे! करते रहोगे घोषित
खुद को सभ्य और मुझे असभ्य या हाशिए का आदमी
लेकिन, हम गाते रहेंगे माँदर की थाप पर"[16]

2001 में झारखंड अलग बनने के बावजूद झारखंड में सता का असली खेल शुरू हुआ और झारखंड में आदिवासी नेतृत्व के बीच भी जिस तरह की अवसरवादिता, आपाधापी और लूटमार शुरू हुई, यह झारखंड इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी। सत्ता की इस बाजीगरी ने आदिवासियों, खासकर युवाओं में गहरी निराशा, असंतोष और मोहभंग पैदा किया। आदिवासियत और सांस्कृतिक मूल्यों के आत्मसातीकरण और कार्यान्वयन की प्रक्रिया असफल साबित हुई। इस असफलता के शोर में 'बाजार का झारखंड' नामक कविता पैदा हुई–

"झारखंड गठन के बाद हो ही झारखंडी, बस लगा लेना है झारखंड का लेबल
और उतार देना है बाजार में, बिरसा के नाम पर एक नया उत्पाद।"[17]

बाहरी समाजों ने आदिवासियों के जीवन और समाज व्यवस्था को बहुत नुकसान पहुँचाया। इसलिए महादेव टोप्पो की कविता आदिवासियों के जंगल पहाड़ को बचाने की लड़ाई लड़ती है। वह मानवीय गरिमा की प्राप्ति के लिए लगातार संघर्षरत होती है। बारीक से अध्ययन करने पर पता चलता है कि महादेव टोप्पो आदिवासियों को आदिवासियत से वंचित किये जाने की प्रकिया के खिलाफ में कविता रचते हैं। 'वे और हम' में फर्क को समझाते हुए उस जनतांत्रिक व्यवस्था पर सवाल उठाते हैं जो कुछ खास लोगों के हाथों की कठपुतली बन गया है और आदिवासियों के सरोकारों से कट गया है–

"पीपल को उन्होंने चुना, ले गये हमारे पहाड़ों से, उसे किया महिमामंडीत,उसे पूजा
अब उनकी ही संतानें, आती है लेकर ट्रक, हमारे पेड़ों का खरीदार बन"[18]

मुख्यधारा का समाज आदिवासियों के सीधेपन का लाभ उठाकर उनकी आदिवासियत को नष्ट करने पर उतारू है। आधुनिक विकास की ओट में उन्होंने आदिवासियों के हिस्से की हवा, धूप और रोशनी तक को छिन लिया। उन्होंने भोले आदिवासियों को भरमाने के लिए दो मुंही भाषा और दोगले सिद्धांत ईजाद किये। उनकी आड में पहाड़, जल, और जमीन से खदेड़ने की साजिश रची। इसलिए कवि मुख्यधारा की बेईमानियों को पहचानने और अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाने की प्रेरणा देता है। यह कविता आदिवासियों के मूल्यों, आदर्शों और आदिवासीपन के साथ मुख्यधारा ने जो विश्वासघात किया, उसकी पूरी व्यथा–कथा है। विकास के नाम पर जो प्रहसन आज तक चल रहा उसका पाठ कविता में लिखते हैं। मुख्यधारा के समाज में हर तरफ दो मुंही भाषा और दोगले चरित्रों का बोलबाला है। ऐसी स्थिति में आदिवासी अपने आप को बड़ा असहाय महसूस करता है क्योंकि मुख्यधारा ने उसे लगातार ठगा है। आदिवासी में बैचेनी, रोष और गुस्सा बढ़ रहा है। पीड़ा, आक्रोश और बेबसी का मिला–जुला भाव कविता में है–

"लेकिन जैसे ही मुख्यधारा में तुम्हारे, चाहता हूँ करना प्रवेश
मुझे दिखते हैं, मुख्य–धारा के द्वार पर, कई असभ्य, अमानवीय, और ढेरों चेहरे क्रूर
फिर भी कर साहस, समेट हिम्मत, बह चुका हूँ दूर तक बहुत
मुख्यधारा में तुम्हारे, और देख रहा हूँ अब"[19]

महादेव टोप्पो की कविता आज भारतीय साहित्य और इतिहास में आदिवासियों को अपने आप को पहचानने की यात्रा–कथा भी है। महादेव टोप्पो आदिवासियों के लिए इतिहास के जो मायने थे, उनको समझते हैं। इसलिए उनके मन में इतिहास को सही अर्थों में समझ पाने की अनवरत बैचेनी है। वह यहाँ संतुष्ट हैं कि उनके पूर्वजों ने जमीन के टुकड़ों की लड़ाई का इतिहास नहीं लिखा। उनके पूर्वज जमीन की खातिर लड़ाई नहीं लड़ते हैं। युद्ध और हत्याओं का उनके जीवन दर्शन में कोई स्थान नहीं है। वह सहजीविता और सहधर्मिता में विश्वास करते हैं। तुम भी जियो, हम भी जिएँ। इसे हम आज भी देख सकते हैं आदिवासी समाज में। इस संदर्भ में कवि कह उठता है–

"अच्छा ही है कि हमने लिखा नहीं इतिहास
वरना हम भी लड़ते होते उन टुकड़ों की खातिर
जिसके बारे में हमें नहीं जरा भी ज्ञान
इसलिए करते हैं हम अपने घर खेतों जमीन की बात"[20]

पुरखों द्वारा विरासत में जोअर, जोहार शब्दों का प्रयोग आदिवासी समुदाय अपनी भाषा–संस्कृति और समाज की रक्षा के लिए करता है। इससे बाहरी असामाजिक तत्वों को हार का सामना करना पड़ता है। आदिवासी समाज किसी अन्य आदमी को अपने समाज में जगह देना नहीं चाहता। जब–जब उसने अपने समाज में बाहरी लोगों को जगह दी है उन्होंने हमेशा उनका नुकसान ही किया है। वह उनके बनावटीपन को समझ नहीं पाता है–

"आखरि किन–किन रूपों में हम तुम्हें पहचानें
क्योंकि हमने तुम्हारे जिस भी रूप को माना सच
उसी रूप ने किया है हमारे साथ विश्वासघात
फिर भी हम कहते रहते हैं तुम्हें जोहार! जोहार! जोहार!"[21]

सदियों से आदिवासी झारखंड की धरती पर जंगल पहाड़ के बीच अपने समाज तथा संस्कृति को बचाये हुए थे। परंतु पिछले कुछ दशकों में मुख्यधारा के लोगों के सांस्कृतिक आक्रमण और तथाकथित विकास की आँधी के सामने आदिवासी समुदाय अपनी आदिवासियत को खोते चले जा रहे हैं। झारखंड में आदिवासियों के 'जमीन की लूट' और सांस्कृतिक जनसंहार और हर संभव तरीके से शोषण के शिकार बनते हैं–

"उन दोपाया जोंकों से लड़ते हुए, जो चूसते नहीं सिर्फ हमारे शरीर का रक्त
चूस लेते हैं हमारे खेत–खलिहान, हमारी भाषा संस्कृति और हमारे इतिहास का भी रक्त"[22]

आदिवासी कविता लोकतंत्र के एक सार्थक पहलू के रूप में भी उभरकर सामने आती है। इसमें विकास से विस्थापित, जीवन के आँसू या दर्द–भर नहीं है बल्कि विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियों से उपजे अन्याय और शोषण के प्रति विरोध है, संघर्ष की चेतना है। जंगल, पहाड़ की हरियाली, खेत–खलिहान के अन्न बचाने, नयी परिस्थितियों में खुद को खोजने एवं परिभाषित करने की आकांक्षा इसमें समाहित है। इसमें हर अमानवीय और असंवैधानिक पहलुओं के हनन के प्रति विरोध है–

"जानता हूँ, अँगूठा काटने के तौर–तरीके, और रंग–ढंग में आ गया है भारी परिवर्तन
अँगूठा कटेगा हमारा और हमें पता भी नहीं चलेगा, क्योंकि हमें देखने की
मनरू स्थिति तुम्हारी है वही, देखने का नजरिया है वही"[23]

निष्कर्ष

महादेव टोप्पो की कविता हिन्दी कविता के लोकतंत्र को समृद्ध करती है। यह कविताएँ साहित्य और इतिहास में किनारे खदेड़ दिए आदिवासियों को उचित जगह दिलाने की मुकम्मल आवाज है। रचनाकार जंगल, पहाड़, जमीन, मातृभाषा को बचाने की लड़ाई के साथ जुड़ा और खड़ा है। अपनी कविता के माध्यम से आदिवासियत के उस मूल बुनियादी सांस्कृतिक सवाल को वृहत्तर भारतीय समाज के सामने ला खड़ा किया है जिसे आर्थिक सवालों की आड़ में अब तक लगातार पीछे धकेला जा रहा था। जंगल पहाड़ के पाठ' संग्रह की अधिकांश कविताएँ जहां एक ओर–विकास, पूंजीवाद, विस्तारवाद, उपभोक्तावाद, बाजारवाद, अंधराष्ट्रवाद, सामन्तवाद, श्रेष्ठतावाद, नस्लवाद, की विद्रूपताएँ झेलते आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषिक, राजनीतिक समस्याओं को लोकतंत्र के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने, परखने का प्रयास करती हैं वहीं दूसरी ओर ये कविताएं धरती, मनुष्य, मनुष्यता और आदिवासियत बचाने के लिए चिन्तित और बेचैन भी नजर आती हैं। खासतौर से झारखंड के आदिवासियों के दर्द को गहराई

तक समझा है। झारखंड की प्रकृति की संस्कृति, आदिवासी समाज की संरचना और आदिवासी जीवन की जद्दोजहद की अभिव्यक्ति तो इन कविताओं में हुई ही है, आदिवासी समुदाय की बोली–बानी को आधार बना कर विकसित की गयी काव्यात्मकता में कुछ आदिवासी शब्द और नई शैली भी आई हैं, जो हिन्दी भाषा को समृद्ध करने के साथ–साथ हमारी संवेदना का भी विस्तार करती हैं।

❐

सन्दर्भ –

1. *पंकज, ए.के, (2022), आदिवासियत : जयपाल सिंह मुण्डा के चुनिंदा लेख, प्यारा केरकेटश प्रकाशन, झारखंड, पृ.7*
2. *टोप्पो, महादेव, (2017), जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पृ. 9*
3. *मीणा, गंगा सहाय, (2014), आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ. 93.*
4. *टेटे, वंदना, (2015), एलिस एक्का की कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 22.*
5. *टोप्पो, महादेव, (2017), जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पृ. 47*
6. *पूर्वोक्त, पृ. 67*
7. *पंकज,ए.के, (2015), उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 52.*
8. *टेटे,वंदना, (2020), वाचिकता : आदिवासी दर्शन, साहित्य और सौंदर्यबोध, राधाकृष्ण पैपरबैक्स, दिल्ली, पृ.143.*
9. *टोप्पो, महादेव, (2017), जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पृ. 21*
10. *पूर्वोक्त, पृ.16*
11. *टेटे, वंदना, (2021), आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, नोशन प्रेस, दिल्ली, पृ. 53.*
12. *टोप्पो, महादेव, (2017), जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प भठ, 22.*
13. *पूर्वोक्त, पृ. 36.*
14. *मुण्डा, रामदयाल (2005), सेलेद(विविधा), साइल राकाब पुथी सेंटर,बिराटी, कोलकाता, पृ. 47.*
15. *टोप्पो, महादेव, (2017), जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पृ. 37.*
16. *पूर्वोक्त, पृ.38*
17. *पूर्वोक्त,, पृ. 50*
18. *पूर्वोक्त,, पृ. 62*
19. *पूर्वोक्त, पृ. 69*
20. *पूर्वोक्त, पृ. 71*
21. *पूर्वोक्त, पृ. 87*
22. पूर्वोक्त, पृ. 93
23. पूर्वोक्त, पृ. 75

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 21–27

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

भारतीय हिन्दी सिनेमा में नारी की भूमिका

डॉ. गायत्री

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविधालय, अजमेर
E-mail: drgayatrinirwan@gmail-com Mob- 9460242232

सारांश

आज के वैश्वीकरण के युग में जब हम स्त्री, पुरूष को समान दर्जा देते है। क्या यह कथन सत्य है या सिर्फ कहने के लिए कह दिया जाता है। वास्तविकता इससे अभी भी दूर है। ऐसे में हम हिन्दी सिनेमा को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि सिनेमा समाज का ही परिदृश्य प्रस्तुत करता है। समाज की बुराईयाँ, नये परिवर्तन, नया विकास, नवाचार चाहे वह सही हो या गलत, हमें देखने को मिलता है। फिल्मों का प्रभाव समाज पर एवं समाज का प्रभाव फिल्मों पर पड़ता है। भारतीय सिनेमा की अगर बात कि जाए तो स्वतन्त्रता से पूर्व 1913 में, जब स्त्री एवं पुरूष के किरदार पुरूषों द्वारा ही निभाया जाता था उस फिल्म का नाम राजा हरिशचन्द्र था। 1931 में आर्देशर ईरानी निर्देशित आलमआरा से नारी का आगमन होता है 1960 के दशक के उतर्राद्ध में विदेशी स्थानों पर फिल्मों की शूटिंग के साथ–साथ गायन के साथ नृत्य की शुरूआत हुई। फिल्मों के उदाहरणों–कागज के फूल, मदर इंडिया, पाकिजा, हॉफ टिकट, पडोसन, ये स्वर्णयुग की फिल्में थी। विमलराय, गुरूदत्त, महबूब खान और राजकपूर जैसी फिल्म बनाने वाली हस्तियों ने नारी के रूप माँ, पत्नी प्रेमिका का ही सही रूप दिखाया है। फिल्मकारों ने स्त्रियों के जीवन की दशा एवं दिशा का चित्रण लोकप्रियता के आइने में किया है। 1975–80 तक टिकिट खिड़की पर सहने वाली स्त्री सफलता प्राप्त करती रही। 1980 का दशक एक्शन फिल्मों का दौर था। इस दौर में स्त्री ग्लेमरस घटक में सिमट गई थी। मिर्च मसाला, जोशीला, हिम्मतवाला, एक चादर मैली सी, रूदाली स्त्री चरित्र को नये रूप में उभारा है।

1993 में आयी फिल्म दामिनी नारी की न्याय के लिए संघर्ष की कहानी थी। अब महिला निर्देशकों का आगमन हो चुका था। कल्पना लाजमी, तनुजा चन्द्रा, फरहा खान, मेघना गुलजार ने इसे आगे बढ़ाया। जुबैदा (2001) ,डोर (2006) जैसे फिल्में स्त्री मुक्ती में मील का पत्थर साबित हुई। अभिनय की उत्कृष्टता के मापदण्ड के

बावजूद हिन्दी सिनेमा में नारी को भोगवादी और शोपीस की भूमिका से अधिक रखते हुए रूप और मादकता के लिए महत्वपूर्ण माना जब बाजारीकरण नवमूल्यवाद हावी हो गया तब परिणिता, लाइफ इन मैट्रो (2007), नो वन किल्ड जेसिका जैसी नारी वर्चस्व की फिल्में प्रदर्शित हुई। 2013 में जब हिन्दी सिनेमा अपने 100 वर्ष पूर्ण का जश्न मना रहा था तब स्त्री का सिनेमा में योगदान भी याद किया गया। इसके पश्चात् नीरजा, कहानी, एक क्वीन, पिंक, मीनी राजी जैसी महिला प्रधान फिल्मों ने न केवल अपनी छाप छोड़ी बल्कि अभिनय के नवीन आयाम प्रस्तुत किए।

मुख्य शब्द– *भारतीय सिनेमा, फिल्म और नारी, हिन्दी सिनेमा*

प्रस्तावना

दुनिया की आधी आबादी का सच स्त्री ही है। परन्तु विश्व परिदृश्य में जितनी बाते स्त्री के बारें में कही जाती है उतनी पुरूष के बारे में नही। स्त्री समर्थ भी है। वह हर उड़ान भरने में समर्थ है। जैसा एन. मनमोहन कहते है। ''विश्व की आबादी में आधी से अधिक स्त्री ही है पर सबसे अधिक उपेक्षित एवं शोषित वर्ग भी वही है। स्त्री असूर्यपश्या भी है पुरूष सत्तात्मक समाज ने स्त्री को इतना सबल बना दिया है कि वह सचमुच ही अंधकार में अपना रास्ता टटोल रही है।''[1]

हालाँकि पितृसत्तामक व्यवस्था, कन्याभ्रूण हत्या, तलाक, दोहरी जिम्मेदारी, घरेलू हिंसा, प्रेम, जातिवाद, गरीबी, सामन्ती व्यवस्था, परम्परा धर्म और नैतिकता ने उसे खूब पीछे भी किया है मगर फिर भी उसने अपनी अस्मिता को पहचान लिया है और इसी अस्मिता और स्वायत्तता की तलाश में जुटी हुई है। भारतीय सिनेमा के परिदृश्य में विगत कुछ वर्षो से बदलाव आया है उसने स्त्री की भूमिका को परिवर्तित कर दिया है। पहले स्त्री हीरो की सहायिका मात्र होती थी। लेकिन अब कई ऐसी फिल्में है जिनमें स्त्री मुख्य पात्र भी होती है इससे कहना ही होगा कि आज महिला किरदार प्रभावशाली तरिके से हिन्दी सिनेमा में प्रभुत्व बढ़ाती जा रही है। स्त्री मुक्ति की एक अकुलाहट हमें हिन्दी सिनेमा में देखने को मिलती है स्त्री अब स्त्री नही बायनिक वुमन बन गई है क्योंकि उसे शिक्षा का महत्व तथा अपने व्यक्तित्व का आभास हो गया है। उसे पता लग गया है कि वह आज धूघँट में छुपी हुई छह गज की पट्टी लपेटकर चलने वाली नारी नही है वरन वह भी मानव है। उसका भी समाज में कुछ अस्तित्व है उसे साँस लेने के लिए पर्यावरण की आवश्यकता है। घर परिवार केवल उसकी नही बल्कि स्त्री और पुरूष दोनों की जिम्मेदारी है।

हिन्दी फिल्मों में स्त्री का आगमन 1913 में हुआ। 1913 में दादा साहेब फालके ने फिल्म राजा हरिश्चन्द्र बनाई तब नाटकों और फिल्मों में महिलाओं की भूमिका पुरूष निभाते थे। अभिनेता सालंखे ने लंका दहन फिल्म में राम और सीता दोनों की भूमिका निभाई, इसके लिए उसे 15 रूपये दिए गए। 1913 में दादा साहब फालके की मोहिनी भस्मासुर फिल्म द्वारा पहली बार कमलाबाई गोखले के आगमन से हिन्दी फिल्मों में नारी का आगमन हुआ।[2]

हिन्दी सिनेमा का प्रारंभ वैसे तो सन् 1931 से आर्देशर ईरानी निर्देशित आलमआरा से ही होता है। उसके बाद नारी जीवन की विडंम्बनाओं को अछूत कन्या, दुनिया ना माने, आदमी,

देवदास, इंदिरा, एम.ए.बाल योगिनी आदि फिल्मों में नारी जीवन से संबंधित बाल, विवाह, अनमेल विवाह, पर्दाप्रथा, अशिक्षा आदि समस्याओं को उभारा है। इन फिल्मों में समस्या तो दिखाई गई परन्तु कृत्रिमता के साथ अतः यह प्रभावशाली नही रही। ससुरालवालों के अत्याचार सहते–सहते भी पति को परमेश्वर मानती हुई दिखाई गई है। 1937 में पहली रंगीन फिल्म ''किशन कन्हैया'' बनी। परन्तु यह इतनी सफल नही रही। 1950 के बाद रंगीन फिल्में प्रसिद्ध होने लगी। इसी काल में हिन्दी सिनेमा में अभिनेता एवं अभिनेत्री प्रसिद्ध हुए जैसे– दिलीप कुमार, देव आनन्द, राजकपूर, नर्गिस, नूतन, मीना कुमारी, मधुबाला इत्यादि। फिल्में सामाजिक पहलूओं को चित्रित करने और प्रभावित करने के लिए एक बड़ी भूमिका निभाती है। पारिश्रमिक, हैसियत और भूमिकाओं के मामले में उस समय की प्रमुख महिलाएँ अपने पुरूष समकक्षों के बराबर थी।[3]

1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में विदेशी स्थानों पर फिल्मों की शूटिंग के साथ–साथ गायन के साथ नृत्य की शुरूआत हुई राजेश खन्ना और धर्मेन्द्र जैसे सितारे का स्वर्णकाल 1960 से 1970 तक का माना जाता है, यह वह समय था जो ग्रामीण भारत को प्रदर्शित करने का था लेकिन समृद्ध और जीवंत परम्पराएँ थी। फिल्मों ने भारतीय समाज के रिश्तों, रीतिरिवाजों, मानदण्डों और नैतिकता को प्रदर्शित किया। इस दौरान गरीबी की समस्या का समाधान किया गया। दर्शक आसानी से उन स्क्रीन पात्रों के साथ अपनी पहचान बना सकते है जिनके जीवन ने उन्हें खुद की याद दिला दी। इस युग की फिल्मों के कुछ उदाहरणों में कागज के फुल, मदर इंडिया, पाकिजा ,हॉफ टिकट एवं पड़ोसन। इस स्वर्ण युग की फिल्में इतनी लोकप्रिय है की आज भी याद की जाती है।

निर्देशक महबूब द्वारा 1957 में बनाई गई फिल्म मदर इंडिया पर चर्चा करें। यह पारम्परिक मूल्यों के साथ समाजवादी आदर्शो को जोड़ने का प्रयास करती है। फिल्म मदर इण्डिया की शुरूआत राधा के साथ एक बूढ़ी औरत के रूप में होती है। जिसे अपने गांव के माध्यम से निर्मित एक नई नहर का उद्घाटन करने के लिए कहा जाता है। समारोह की अध्यक्षता करने वाले पुरूष साधारण कपड़े पहनते है और राधा को गांव की माँ कहते है वे किसी को भी जाने देने से इन्कार करते है। लेकिन वह नहर की खुदाई करती है। 50 से 60 के दशक में विमलराव, गुरूदत्त महबूब खान और राजकपूर जैसे फिल्म बनाने वाली हस्तियों ने नारी के कई रूप माँ, पत्नी, प्रेमिका का ही सही रूप दिखाया है। सिनेमा में 70 से 90 दशकों में नारी का अलग रूप उभर कर आया है। परदे पर बदलाव केवल पर्दे तक समिति न रहकर वह समाज में भी बदलाव लेकर आया।

जबल्लीमल्ल पारख के अनुसार ''पिछले एक दशक में बनने वाली हिन्दी सिनेमा की एक प्रमुख प्रवृत्ति स्त्री जीवन की समस्याओं को केन्द्र में रख कर फिल्म बनाना है। ऐसा नही है कि इससे पहले इस तरह की फिल्में नही बनी लेकिन पहले की फिल्मों में कुछ बुनियादी फर्क है। पहले की फिल्मों में मुश्किल और विडम्बनाओं को व्यक्त करते हुए उनके साथ बराबरी और अधिक मनुष्योचित व्यवहार करने पर बल देती थी जबकि इधर की फिल्मों में बराबरी मानवीय व्यवहार के साथ उनके सबलीकरण पर अधिक बल है इन फिल्मों में स्त्री जीवन के कुछ ऐसे पहलुओं को उठाया गया है।[4] जो शायद इस तरह से इतने पहले इतने तीखे रूप में नही उठाया

गया सिनेमा में स्त्रियों की जीवन की दशा दिशा का चित्रण लोकप्रियता के आइने में किया है। दरअसल यह पीड़ा पर पर्दा और मुक्ति स्वप्न का यर्थाथ है।

क्षमा शर्मा के अनुसार'' सहने वाली स्त्री 1975–80 तक टिकिट खिड़की पर सफलता प्राप्त करती रही लेकिन जो स्त्रियों की शिक्षा बढ़ी जागरूकता भी बढ़ी उनके अधिकारों की आवाज बढ़ी प्रतिरोध के स्वर बढ़े और 'सास और बहू'' थी जैसी फिल्में बनी। वैसे इस दौर में जय सन्तोषी माता नामक फिल्म भी बनी जिसने एक नई देवी को जनमानस में प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु मदर इण्डिया फिल्म ने प्रेमिका, पत्नी, माँ, पुत्री, भाभी, छोटी बहन की छवि से स्त्री को आगे बढ़ाया जो स्वयं का पोषण करती थी।[5]

1980 के दशक की यदि बात की जाए तो यह एक्शन फिल्मों का युग था। इसने बड़े बदलाव लाए। बॉलीवुड की नायिकाओं ने नायक के लिए अपनी ताकत और स्थान खो दिया। वह फिल्मों के एक ग्लैमरस घटक में सिमट गई थी। भारतीय सिनेमा में महिलाओं की एक्शन भूमिका का एक उदाहरण 1989 में के तन मेहता द्वारा निर्देशित एक फिल्म ''मिर्च मसाला'' है। यह सोनबाई (स्मिता पाटिल) की कहानी है। जो सशक्त रहकर मुकाबला करती है। परन्तु इस मुकाबले मे उसका सहयोग एक अन्य पुरूष किरदार करता है। 1980 के दशक की अग्रणी महिला, श्री देवी को थंडर थाइज के रूप में जाना जाता है। अन्य महिला सितारों की तरह श्रीदेवी मेकअप रूम में घन्टों बिताती है और आक्रामक प्रभावशाली चरित्र को चित्रित करती है। जोशीला (1989) में शीर्ष पुरूष नायकों के साथ जब उन्हें मौका दिया गया तो अन्य कलाकार मुश्किल से अपनी भूमिका निभा पाये। एक पत्रिका में एक कवर स्टोरी द्वारा दिखाया गया था। जिसमें कहा गया था। ''क्या श्रीदेवी एक नायक है ? (शो टाइम सितम्बर 1987) इससे पता चलता है कि इस समय तक महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण और धारणा पूरी तरह से बदल चुकी थी। पुरूष प्रधान व्यवस्था में स्वाभिमान से जीती है। नारी आन्तरिक शक्ति को पहचानने लगी। आज पति परमेश्वर की गलतियों को स्वीकारने का जमाना नही। विवाह बाह्य सम्बन्धों पर आधारित ''अर्थ'' (1982) नारी जीवन के आन्तरिक संघर्ष को प्रस्तुत करती है।[6]

1986 में ''एक चादर मैली सी'' परम्पराओं से उभरने वाली नारी समस्या को दर्शाती है। रूदाली (1993) की अपशकुनी शनिचरी, राजस्थान की पेशेवर निम्न जाति की महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है। जिन्दगी में कभी न रोने वाली शनिचरी परिस्थितिवश रूदाली बन जाती है। मनसिक विक्षिप्तता से जुड़ी बलात्कार की समस्या पर आधारित फिल्म दामिनी (1993) नारी की न्याय के लिए संघर्ष की कहानी है। 1994 दस्युरानी फूलन देवी के जीवन पर आधारित ''बैंडिट क्वीन'' फूलन के माध्यम से निम्न जाति की स्त्रियों का सवर्णो द्वारा, यौन शोषण, पुलिसी असहयोग, बलात्कार, प्रतिशोधवश हाथ में बंदूक उठाकर, डाकू बनना, अंत में दल की औरते व बच्चों के ध्यान को ध्यान में रख कर आत्मसमर्थन करना नारी उत्पीड़न के आयामों को दर्शाता है। 1996 'फायर' नारी समलिंगी जैसे विषय पर बनी प्रथम भारतीय फिल्म है। स्त्री परंपरा और दुर्भाग्य की जंजीरे तोड़ संस्कारों से विद्रोह करती है। समाज को अनुप्रेक्षित, विरोधाभासी मूल्य जब स्त्री में आए तो वह भी सिनेमा का विषय बन गये। आस्था 1997, मृत्युदण्ड 1997 फिल्में नारी पर होने वाले सामाजिक और लैंगिक न्याय पर आधारित है। देशकाल के विस्तार से परे

सिनेमा का सम्बन्ध लोगो के संस्कार मूल्य मानसिकता उनके बनने एवं बिगड़ने से होता है महिलाओं का सुधारवादी रूप फिल्मों में दिखाया जाने लगा। अब महिला निर्देशकों का भी बोलबाला हो गया। कल्पना लाजमी ने रूदाली बनाई बाद में तनुजा चन्द्रा रीता कागड़ी, फरहा खान, अनुशा सिजवी, मेधना गुलजार जैसी निर्देशिकाओं ने इस दिशा को आगे बढ़ाया।

चाँदनी बार (2001) वेश्यावृत्ति, डान्सबार पर आधारित फिल्म है। फिजा (2001) बम्बई दंगो के दौरान गुम हो चुके अपने भाई को खोजने वाली बहन की कहानी है, जुबैदा 2001, जीने की आजादी और स्वंय निर्णय की क्षमता से दूर नायिका के विद्रोह को दर्शाती है। डोर 2006 अलग पृष्ठभूमि की औरतों को जोड़ती है। विधवा, परम्पराओं में फंसी मीरा उत्साह काले घूंघट में दब जाता है।

अभिनय की उत्कृष्टता के मापदण्ड के बावजूद हिन्दी सिनेमा में नारी को भोगवादी और शोपीस की भूमिका से अधिक रखते हुए रूप् और मादकता के लिए महत्वपूर्ण माना गया। पुरूषी प्रवृतियों को चुनौती देने वाली प्रथाओं के चलते कुछ नायिकाओं को प्रसिद्धि मिली। ''द डर्टी पिक्चर (2011) दक्षिणाक्य अभिनेत्री सिल्क स्मिता के वादग्रस्त अल्प जीवन के साथ दर्शकों को अश्लील मनोवृत्ति, पैसा कमाने के अव्यावसायिक तंत्र एवं नारी मनोविज्ञान को दर्शाता है। बाजारीकरण, नव मूल्यवाद स्टार युग का प्रभाव आम समाज पर हुआ जिसे फिल्म फैशन (2008) में देखा गया। परिणिता (2005) लाइफ इन मैट्रो (2007) नो वन फिल्म जेसिका (2011) कहानी (2012) चक्रव्यूह (2012) नारी वर्चेस्व को प्रदर्शित करती है। भारतीय सिनेमा ने 2013 में अपने सौ साल पूरे कर चुका है। इन सौ सालों में उसने कई यात्राएँ की है। कई पड़ावों को पार किया है। समाज में जितने आन्दोलन परिवर्तन हुए सभी को हिन्दी सिनेमा ने अपने कथ्य को आधार बनाया फिर स्त्री जो कि परिवार राष्ट्र की धुरी है। उसको कैसे अनदेखा कर दिया जाता। सिनेमा ने अपनी जिम्मेदारी पुरी निभाई।[7]

सिनेमा के सौ सालों में स्त्री ने कई यात्राऐं की है, कई पड़ावों को पार किया है। स्त्री ने उसके सरोकारों से अपना पल्ला नही झाड़ा, अपितु वह स्त्री के साथ सजग रहकर खडा रहा है हिन्दी फिल्में हर युग में बदलते परिस्थितियों के साथ भारतीय समाज के हर रूप और रंग को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुई है। फिल्में मुख्य मनोरंजन और ज्ञान संवर्द्धन करने का कारगर साधन है। फिल्म प्रस्तुतीकरण की शैली में बदलाव अवश्य दिखाई देता है। किन्तु इसके केन्द्र में व्यक्ति और समाज के अन्तर सम्बन्ध ही रहे है। निश्चित रूप से फिल्में समाज को एक नई सोच देती है। हिन्दी सिनेमा ने नारी को नई पहचान दी आवाज दी, उसके अस्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वैश्वीकरण के साथ भारतीय सिनेमा पश्चिमी सिनेमा से अधिक प्रभावित होता जा रहा है। बॉलीवुड विदेशों से तकनीकी विशेषज्ञता का आयात करता है और कई फिल्मों की शूटिंग पश्चिमी स्थानों पर की जाती है। कई बॉलीवुड फिल्में भी हॉलीवुड ब्लाक बास्टर पर आधारित है। बालीवुड की शुरूआत 1899 में एक पार्टेर फोटोग्राफर, हरिशचन्द्र, सखाराम माटोवेडेकर द्वारा एक लघु फिल्म के निर्माण के साथ हुई जिसे द रेसलर कहा जाता है। हालांकि हॉलीवुड का जन्म 1910 में एक जीवनी मेलोड्रामा के साथ हुआ।[8]

आज भारत दुनिया में फिल्मों का सबसे बड़ा निर्माता है जिसमें हालीवुड की तुलना में

केवल 2009 में कुल 1288 फिचर फिल्मों का निर्माण किया गया था। हालीवुड प्रतिवर्ष औसतन 500 फिल्मों का निर्माण करता है (बीबीसी न्यूज 2011) हालीवुड में दुनिया भर में 2.6 विलियन दर्शक है, जबकि बालीवुड हर साल 1000 से अधिक लगातार नई फिल्मों का निर्माण करता है और दुनिया भर में इसके दर्शक 3 विलियन है। दर्शकों की संख्या के मामले में बालीवुड ने 2004 में हॉलीवुड को पीछे छोड़ दिया और तब से वह आगे चल रहा है। भारतीय फिल्मों और संगीत पर अनिवासी भारतीयों द्वारा अनुमानित विलियन 800 खर्च किये जाते है। (यू एस 2 मिलियन भारतीय प्रवासी 1 मिलियन) यूके (1.5 मिलियन) दक्षिण अफ्रीका (अफ्रीका की 2 मिलियन भारतीय आबादी में से 1 मिलियन) वालीवुड के लिए प्रमुख बाजार है।[9]

समाज में राजनीतिक दर्शन, सामाजिक मूल्य, समूह व्यवहार भाषण और पहनावा सिनेमा में परिलक्षित होता है और समाज पर भी प्रतिबिंबित होता है, इसके अलावा फिल्मी सितारे लाखो लोगों के भाग्य का मार्गदर्शन करने वाली शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में उभरने के लिए अपनी कल्पना की भूमि से राजनीति में चले गए इसमें कई अभिनेत्री भी शामिल है जिन्होने खुद को समाज की कार्यवाहक के रूप में सेवा दी है। यह विकास इंगित करता है कि फिल्म उद्योग में महिला घटक ने न केवल फिल्मों में बल्कि वास्तविक दुनिया में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। बालीवुड एक बड़ा सफल उद्योग होने के साथ उनकी फिल्मों में निभाए गए महिला पात्र भारतीय महिलाओं को इन महिला पात्रों के साथ आसानी से खुद को जोडने की अनुमति देता है।

1990 के दशक में, नायिका और वैप के बीच की रेखा गायब हो गई। नायिका साहसपूर्वक कपड़े पहने और पुराने समय की बुरी लडकी के रूप में उत्तेजक रूप से आगे बढ़े। कुछ आलोचकों का मत था कि वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के प्रभाव के रूप में जहां बड़े पैमाने पर उत्पादन ने नायिकाओं को वास्तविक महिला की तुलना में अधिक ओमानिक बनने की मांग की। उसे बर्फ से ढके स्विजरलैण्ड या आस्ट्रेलिया में नृत्य करते हुए दिखाया जा सकता है। लेकिन मूल रूप से आदर्श महिला भारतीय पुरूषों के लिए एक गृहिणी बनकर रहने की कल्पना की जाती है। छवियों का परिवर्तन अचानक नही बल्कि धीरे–धीरे हुआ है। फिल्मों में महिलाओं के विशिष्ट किरदारों में कुछ बदलाव स्पष्ट हुए है, उदाहरण के लिए जिया खान, ''निशब्द'' में एक नया बदलाव है । यह किशोरी की अपनी मुहर की बढ़ती चेतना पर केन्द्रित है। छोटे सिनेमा की एंट्री मल्टीप्लेक्स क्यूब्योर से उत्साहित होकर नए निर्देशकों ने स्वीकार करना शुरू कर दिया है अपने खुद के सपनों को लिपियों में लाने का समय आ रहा है।

वालीबुड अभी भी अपनी फिल्मों के माध्यम से भारतीय मूल्य को बरकरार रखे हुए है भारतीय लोगो के पारम्परिक रीति रिवाजों और जीवन से जुड़ा है मूल्यों को संघटित करने का कार्य नारी द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान की बात की जाए तो नारी प्रधान फिल्मों में क्वीन, कहानी–2 राजो, नीरजा, मर्दानी 1 एवं 2 की चर्चा करना आवश्यक है इन्हीं फिल्मों ने महिला चरित्रों का जो बेहतरीन अभिनय किया। आज महिला अभिनेत्री अपने कंधो पर पूरी फिल्म का भार उठाती है नये विषयों का चयन हो रहा है, चाहे वह समलैंगिकता हो। प्लेट फार्म पर सेन्सर सीप के नियम कुछ उदार होने के कारण वर्जनाएँ टूटी है ऐसे विषय बिन्दु तथा चरित्र उभर कर सामने आये है जो सामान्य भारतीय सिनेमा में सामाजिक एवं मानसिक बेडियों के

कारण अस्पर्श रहे। लीव इन रिलेशनशीप जैसे सभी विषयों को फिल्मों ने छुआ है। 2018–19 वर्ष कोरोना महामारी का काल था फिल्म उद्योग में नयी फिल्मों को रिलीज नहीं किया गया क्योंकि सिनेमा घर बन्द था ऐसे में एक नये युग की शुरूआत हुई वह है वेबसीरीज का युग।

वेबसीरीज सेन्सर बोर्ड की पहुँच से दूर है। अतः इन वेबसीरीज ने ज्यादा खुलापन, अश्लीलता को बढ़ावा दिया है वेबसीरीज के नाम पर कुछ भी परोसा जा रहा है वेबसीरीज की महिलायें अधिक स्वतन्त्र एवं वर्जना मुक्त है। जो एक अलग प्रकार के उच्चवस्तरीय समाज की अनुमति कराती है। सुष्मिता सेन द्वारा अभिनय त्रिभंगा जैसी फिल्मों ने महिला चरित्रों को मुखर किया है। आर्यो वेबसीरीज स्त्री संशक्ता को दिखलाती है।

निष्कर्ष

भारतीय सिनेमा समाज का ही प्रतिरूप होता है। समाज में जो घटता है उसी पर कहानी केन्द्रित होती है चूंकि समाज में भी महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है तो सिनेमा ने भी वही दिखाने का प्रयास किया है। भारतीय सिनेमा जहां स्त्री चरित्रों को ऊचाईयाँ दी है वही इसके नकारात्मक पहलू की बात करे तो कास्टींग काउच, मीटू जैसे विवादास्पद मामलों में सिनेमा की चकाचौंध के पीछे का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है भारतीय सिनेमा की एक सच्चाई यह भी है जो लडकियाँ यहाँ अपनी किस्मत आजमाने आती है उनके साथ क्या क्या होता है इसको हम नजर अंदाज नही कर सकते । आत्महत्या की खबरे इसे पुख्ता भी करती है इस नकारात्कता के साथ हिन्दी सिनेमा की सकारात्मक महिला चरित्रों की भूमिका उन्हें आसमान की ऊचाईयों तक ले जाती है। चाहे महिला कलाकारों को पुरूषों की तुलना में कम मानदेय दिया जाता है। जोकी इसमें एक अपवाद है आलिया भट्ट की फिल्म ''गंगूबाई'' काठियाबाड़ी (2022) जिसका मानदेय उन्हें 15 करोड़ रूपये दिया गया है। जिसकी ऐसी चर्चा है जो अन्य पुरूष साथी कलाकारों से अधिक है। अब स्थितियाँ बदल रही है। फिर भी राह आसान नही है। आने वाले समय में हम नये आयामों पर महिला प्रधान फिल्मों को देखेगें। महिलाओं की दशा दिशा में उत्तरोत्तर परिवर्तन होता रहेगा।

❐

सन्दर्भ –

1. *एन. मोहनन, समकालीन हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2013. पृ. 110*
2. *काम्बले माथुर, डा. अनिल माथुर भंडारकर की फिल्मों में स्त्रीवादी मीडिया दृष्टि, शिवालिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2016. पृ. 121*
3. *Sharma Sonu Dr- Jitendra Singh Narban] Indian Cinema & Women] Article IJARIIE&Vol&2 Issue 2016*
4. *एन. जवरीलाल ,हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र प्रकाशन 191 ग्रन्थ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2006*
5. *अरविंद, मंडलोई लीलाधर, अतिथि संपादक, स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2014. पृ.127*
6. *Shwetashindi blogopart-com Hindi Chetan Bharti*
7. *- Humrang-com/Humarg/100237/Cinema*
8. *- Sablong in/new&lady of cinema&march 2019/4931/*
9. *- Agarwal, Ruchi, Changing Rules of Woman in Indian Cinema, Shlpakorn University Journal of Social Science, Humanities and Arts Vol. 14 (2) : 117-132,2014.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 28–38

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

मध्यकाल में तकनीकी विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

ओमकार नाथ पाण्डेय

शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail : omkarpandeybest@gmail.com

सारांश

मध्यकालीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी प्राचीन भारत की ज्ञान परम्परा एवं तुर्क तथा मंगोल शासकों द्वारा लायी गयी ज्ञान परम्परा का समन्वय है। तुर्क एवं मंगोल शासकों द्वारा स्थापित अनुवाद विभाग में बड़े पैमाने पर संस्कृत पुस्तकों का फारसी में अनुवाद के कारण नया शासक वर्ग भारतीय ज्ञान–विज्ञान से परिचित हुआ।

शोध पत्र में ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास एवं उससे होने वाली राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की पड़ताल की गयी है। तुर्की रण प्रणाली की गतिशीलता एवं उन्नत अश्वारोही प्रणाली ने तुर्की को भारत में विजय दिलायी। युद्ध की तुगलमा पद्धति एवं तोपों के प्रयोग ने बाबर को भारत का शासक बना दिया। सिंचाई व्यवस्था में परिवर्तन (रहट के प्रयोग) ने पंजाब के पशुपालक लोगों को समृद्ध किसानों में बदल दिया। नहर प्रणाली एवं बाँध निर्माण की प्रौद्योगिकी ने गरीब किसानों का कायाकल्प कर दिया तथा शाही खजानों को भी समृद्ध कर दिया। आलू, पपीता, मिर्च, अनानास के प्रचलन से लोगों के जीवन स्तर में सुधार परिलक्षित हुआ। चरखे के प्रयोग से मोटे कपड़ों का उत्पादन बड़े पैमाने पर शुरू हुआ जिसके कारण वस्त्रों तक गरीब व्यक्ति की पहुँच हो पायी। स्थापत्य प्रौद्योगिकी में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। चूना एवं गारे के प्रयोग से बड़े पैमाने पर भवनों का निर्माण हुआ। शासक वर्ग की जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर सरकारी कारखानों में नियोजित किया गया जिससे सैनिक लोगों के साजो समान से लेकर वस्त्र निर्माण तथा दैनिक आवश्यकता की वस्तु बनायी जाती थी। मध्यकालीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (सिंचाई, रहट, चरखा) तत्कालिक समाज के लिए लोक कल्याण का उपकरण सिद्ध हुआ, जिससे उत्पादन में वृद्धि करके लोगों के जीवन में गुणात्मक बदलाव लाने का सार्थक प्रयास किया।

मुख्य शब्द– कालिब, गुलतसाज, गुलबदन, छापा, चारबाग, कूफी

प्रस्तावना

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानव के पृथ्वी पर प्रार्दुभाव का इतिहास। मानव के पृथ्वी पर आगमन के पश्चात मनुष्य की उपजी आवश्यकतओं ने विज्ञान को जन्म दिया है। पुरा पाषाण काल में पत्थर के हथियार बनाने की तकनीक से लेकर आज तक के मानव सभ्यता के विकास यात्रा, वास्तव में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की विकास की गाथा है। आग एवं कृषि के आविष्कार ने मनुष्य को स्थायी रूप से एक जगह रहना सिखा दिया, उसके पश्चात मानव समाज का निर्माण शुरू हुआ फिर क्रमशः जन, जनपद, महाजनपद और बड़े–बड़े साम्राज्यों का निर्माण विभिन्न शासकों द्वारा किया गया। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, मानवता की सेवा मानव के पृथ्वी पर प्रार्दुभाव से ही कर रहा है। इसने सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन को न केवल गति प्रदान की है बल्कि इस परिवर्तन का जन्मदाता भी स्वयं रहा है, इसीलिए प्रख्यात इतिहासकार डी.डी. कौशाम्बी जब इतिहास के काल विभाजन की बात करते हैं तब समाज में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन को काल विभाजन का महत्त्वपूर्ण घटक मानते है।

भारत में सल्तनत भाासन की स्थापना करने वाले तुर्क बर्बर और असभ्य समाज से सम्बन्ध नही रखते थे बल्कि उनके यहाँ भी ज्ञान–विज्ञान के संरक्षण की परम्परा थी और वे उस समय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नत अवस्था में थे। भारत में तुर्को के विजय का एक प्रमुख कारण उनका उन्नत सैन्य विज्ञान एवं वैज्ञानिक युद्ध प्रणाली थी। फखे मुदब्बीर ने अपनी पुस्तक आदाब–उल–हर्ब में तुर्को के विजय का श्रेय तुर्की रण प्रणाली की गति ीलता और उनकी अ वारोही सेना को दिया है जो लोहे के रकाब एवं नाल के प्रयोग के कारण भारतीय राजाओं की सैन्य बल की तुलना में श्रेश्ठतर अवस्था में थे।[1] मध्यकालीन भारत में सल्तनत शासन की स्थापना के पश्चात सबसे बड़ा राजनीतिक परिवर्तन भारत में मुगल शासन की स्थापना थी जिसका संस्थापक बाबर था। बाबर के भारत विजय का भी मुख्य कारण उसकी उन्नत सैन्य प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक युद्ध प्रबन्धन था। युद्ध में तोप का प्रयोग, युद्ध की उस्मानी विधि एवं तुगलमा पद्धति ने परम्परागत रण प्रणाली वाली अफगानी सेना को संख्या में अधिक होने के बावजूद पराजित कर दिया।[2] उपरोक्त वर्णन से बिल्कुल स्पष्ट है कि मध्यकालीन महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तनों का प्रमुख कारण विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी थी जिसने अदम्य साहस और वीरता की भावना से परिपूर्ण होने के बावजूद भारतीय राजाओं के सैन्य प्रौद्योगिकी में पिछड़े होने के कारण युद्ध क्षेत्र में पराजय का सामना करना पड़ा।

मध्यकालीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास विज्ञान की अनेक धाराओं के मिश्रण से हुआ है। भारत की प्राचीन काल से चली आ रही अपनी ज्ञान–विज्ञान की परम्परा थी जो क्षेत्रीय राजाओं के समय में अपनी स्वाभाविक गति के साथ विद्यमान थी। राजपूत काल में विशेषकर गणित और चिकित्सा शास्त्र में अनेक पुस्तकों की रचना हो रही थी। भारत में आने वाले तुर्क और मंगोल शासकों के पास विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रचलित अपनी परम्परा थी। तुर्क शासन की भारत में स्थापना एवं मंगोलों द्वारा खलीफा के पराजय के बाद अरब जगत के विद्वान आश्रय की खोज में अपने स्वधर्मी दिल्ली शासक के दरबार में आए जिन्होंने प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अनुवाद में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा किया। अरब जगत से आने वाले इन

विद्वानों ने भारतीय विज्ञान एवं विदेशी शासकों द्वारा लाये गए ज्ञान–विज्ञान के समागम में मुख्य प्रणेता बनकर सामने आए। भारत आने वाले तुर्क मंगोल शासक भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति जिज्ञासु रूख अपनाया और बड़े पैमाने पर भारतीय पुस्तकों का फारसी भाषा में अनुवाद का कार्य प्रारम्भ हुआ। फिरोजशाह तुगलक पहला शासक था जिसने प्राचीन हिन्दू धर्म ग्रन्थों के बेहतर समझ के लिए उन पुस्तकों का संस्कृत से फारसी में अनुवाद कराने के लिए अनुवाद विभाग की स्थापना किया। फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में अजीजुद्दीन किरमानी उर्फ खालिद खानी द्वारा संस्कृत पुस्तकों का फारसी अनुवाद दलायले फिरोजशाही नाम से किया गया। इस पुस्तक में दर्शन एवं नक्षत्र विज्ञान के सिद्धांतों का समावेश है। सिकन्दर लोदी के समय फारसीकरण की प्रक्रिया बढ़ी फलतः संस्कृत पुस्तकों के फारसी अनुवाद में तेजी आयी। सिकन्दर लोदी का वजीर मिंया भुवाँ अनुवाद के कार्यों में व्यक्तिगत रूचि रखता था, इसने चिकित्सा शास्त्र के पुस्तकों का अनुवाद फहरंगे सिकन्दरी नाम से किया गया था। चिकित्सा के विभिन्न पद्धतियों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। अकबर के समय फैजी के नेतृत्व में अनुवाद विभाग ने गणित और विज्ञान की अनेक पुस्तकों का फारसी भाषा में अनुवाद किया, जिसने फैजी द्वारा अनुवादित लीलावती (गणित की पुस्तक) मुकम्मल खाँ गुजराती द्वारा अनुवादित जहान–ए–जफर (ज्योतिष शास्त्र की पुस्तक) एवं हाजी इब्राहिम सरहिन्दी ने अथर्ववेद का फारसी में अनुवाद किया, इन प्रक्रियाओं से भारतीय विज्ञान एवं विदेशी शासकों द्वारा लाये गए विज्ञान का समन्वय हुआ एवं मध्यकाल में सभी क्षेत्रों में उन्नत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास सम्भव हुआ जिसने मध्यकाल में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन की बुनियाद मजबूत किया एवं तत्कालिक व्यवस्था को प्रगतिशील स्वरूप प्रदान किया।[3]

कृषि एवं सिंचाई तकनीक

कृषि एवं सिंचाई एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित है। मध्यकाल में कृषि की वर्षा पर निर्भरता एवं वर्षा की अनिश्चितता ने सिंचाई के महत्त्व को बढ़ा दिया था। मध्यकालीन शासक राजस्व में वृद्धि के लिए कृषि पैदावर को बढ़ाने पर ज्यादा जोर देते थे। इसके लिए अनेक तरीके अपनाये जाते थे जैसे कृषि भूमि का विकास किसानों को तकावी (ऋण) प्रदान करना एवं सिंचाई व्यवस्था का विकास करना शामिल था। भारत में सिंचाई के लिए तालाबों, जलाशयों का प्रयोग किया जाता था जिसमें अरघट (नोरिया) के मदद से पानी निकालकर सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता था। मध्यकाल में पर्शियन व्हील के आ जाने से सिंचाई के क्षेत्र में क्रांति आ गयी। अब पहिए वाले पर्शियन व्हील से कुँओं से पशुशक्ति की सहायता से पानी निकाला जा सकता था, जिसके कारण सिंचाई तक किसानों की पहुँच सुगम हो पायी। पहले कृषि कार्य वही किया जाता था, जहाँ पानी सतह पर मौजूद हो किन्तु पर्शियन व्हील से सिंचाई कुँओं से भी सम्भव हो गया परिणामतः गैर–कृषि क्षेत्र तेजी से आबाद होने लगे और जहाँ खेती की सुविधा नहीं थी वहाँ कुँआ खोदकर पर्शियन व्हील की सिंचाई तकनीक से कृषि कार्य प्रारम्भ हुआ इससे न केवल पैदावार में वृद्धि से कृषक समृद्ध हुए बल्कि सुल्तानों के खजाने में पहले से ज्यादा राजस्व जमा होने लगा। पंजाब का क्षेत्र जहाँ पहले केवल पशु पालन का कार्य होता था। यह वर्णन क्रमशः युआन–च्वांग, 7वीं शताब्दी एवं अलबरूनी 11वीं शताब्दी का है। बाबर के आगमन के समय तक यह क्षेत्र कृषि के क्षेत्र में समृद्ध बन चुका था। अबुल फजल और सुजान राय भण्डारी

के वर्णन में पंजाब का क्षेत्र कृषि में समृद्ध हो चुका था। पर्शियन व्हील ने कृषि क्षेत्र में परिवर्तन लाकर सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जिससे कई पशुपालक समाजों ने कृषक का पेशा अपना लिया था।[4]

मध्यकाल में सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण किया गया। गियासुद्दीन तुगलक प्रथम शासक था जिसने सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण कराया था। फिरोजशाह तुगलक ने अनेकों नहरों का निर्माण कराया था। अफीफ फिरोजशाह तुगलक द्वारा बनाये गए दो नहरों का उल्लेख करते है। इसने सतलज नदी पर उलूग खानी नहर (150 कि.मी.) एवं यमुना नदी पर रजवाही नहर (96 कि.मी.) का निर्माण कराया।[5] नहरों के पानी का उपयोग सिंचाई के साथ–साथ शहरों के जल आपूर्ति के लिए भी किया जाता था। अकबर और शाहजहाँ के समय इन नहरों का पुर्ननिर्माण कराया गया क्योंकि ये नहर दिल्ली में जल–आपूर्ति के महत्वपूर्ण स्रोत थे। मुहम्मद–बिन–तुगलक ने कृषि के क्षेत्र में उत्पादन पद्धति में परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया उसने कृषि में मिश्रित कृषि को बढ़ावा दिया।[6] मुगलकाल में भारत में पुर्तगालियों के आगमन के साथ ही उनके द्वारा लाये गये पैदावारों का प्रचलन बढ़ा जिसमें आलू, मक्का, पपीता महत्वपूर्ण है। नये फसलों के उत्पादन ने गरीब लोगों के पोषण स्तर में गुणात्मक वृद्धि कर दिया। आलू शीघ्र ही भारतीयों के भोजन का मुख्य अवयव बन गया। कृषि एवं पशु पालन के क्षेत्र में इस युग में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसने लोगों के जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया। इरफान हबीब का मानना है कि मध्यकालीन किसान घी के सम्बन्ध में भाग्यशाली है क्योंकि घी पर्याप्त मात्रा में लोगों के पास उपलब्ध था। आधुनिक इतिहासकार वी.ए. देसाई का भी मानना है कि आधुनिक युग के कृषक की अपेक्षा मुगलकालीन किसान आहार उपभोग का औसत स्तर, उसकी अधिक जोत, जमीन की ज्यादा उत्पादन क्षमता तथा अधिक अनुकूल भूमि की दृष्टि से आज की अपेक्षा काफी ऊँचा था।

सिंचाई तकनीक में आये गुणात्मक परिवर्तन ने मध्यकालिन किसानों की वर्षा पर निर्भरता को कम कर दिया, किसान भी कृषि में पूँजी निवेश करके व्यवसायिक फसलों की खेती के लिए प्रोत्साहित हुआ राज्य भी व्यवसायिक खेती को बढ़ावा देने का पक्षधर था क्योंकि इससे राज्य को नगद राजस्व की प्राप्ति होती थी किसान व्यवसायिक फसलों को अधिक समय तक घर में नही रख सकता था क्योंकि व्यवसायिक फसले बगैर परिष्कृत किये उपयोग में नहीं लाई जा सकती थी। फलतः व्यापारियों, अढ़ातियों का एक वर्ग स्वतः तैयार हो गया जो किसानों से कृषि का कच्चा माल खरीदकर शहरी केन्द्रों तक पहुँचाता था। व्यवसायिक फसलों के विक्रय से किसानों को भुगतान मुद्रा में किया जाता था जिससे मुद्रा अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। गन्ना, कपास, नील, रेशम आदि नकदी फसलों का पैदावार बढ़ने लगा और इन फसलों पर आधारित बड़े एवं कुटिर उद्योगों के स्थापना से गाँवों एवं शहरों में बड़ी संख्या में लोग गैर–कृषि कार्यों में संलग्न हो गये।[7]

गन्ने के उत्पादन में वृद्धि से गन्ने पर आधारित उद्योग एवं प्रौद्योगिकी के विकास में उत्तरोतर वृद्धि हुई। विज्ञानेश्वर द्वारा लिखित मिताक्षरा में गन्ना के पेराई से सम्बन्धित मशीन लोगों द्वारा लगाये जाने को महापाप कहा गया है। मिताक्षरा के वर्णन से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि गन्ना पेराई का कार्य राजकीय नियंत्रण में रहा होगा किन्तु लोगों द्वारा गन्ना

पेराई की मशीन लगाने से सरकार को नुकसान हो रहा था जिसके कारण दरबारी लेखक विज्ञानेश्वर ने लोगों द्वारा पेराई मशीन लगाने को महापाप की संज्ञा दिया गया था। गन्ना पेरने वाले कोल्हू का चित्रण जैन महापुराण से मिलता है। पुस्तक में कोल्हू के बगल में गन्ने का खेत भी चित्रित है जिससे पता चलता है कि किसान व्यक्तिगत स्तर पर कोल्हू का प्रयोग करके शक्कर तैयार करता होगा और व्यापारियों को बेचता होगा। उत्तर भारत में गन्ना पेरने वाली मशीने पानी से चलायी जाती थी मिफ्ताह उल कुजाला में पानी के बहाव से चलने वाली मशीनों को चित्रित किया गया है एवं उसे असयाव (पानी की मिल) नाम दिया गया है। उन्नत प्रौद्योगिकी के कारण गन्ने की खेती एवं भाक्कर के उत्पादन में वृद्धि हुई जिसके परिणाम स्वरूप भारत शक्कर एवं मिश्री का निर्यातक बन गया। समकालिन ग्रन्थों में दिल्ली और लाहौर से मुल्तान में शक्कर ले जाने का वर्णन मिलता है। मुल्तान के रास्ते भारतीय शक्कर का निर्यात स्थल मार्ग से विदेशों में किया जाता था। सिन्ध के रास्ते मार्ग से निर्यात किये जाने वाले शक्कर का एक बड़ा भाग अरब देशों द्वारा क्रय किया जाता था। बंगाल, दिल्ली, लाहौर भारत में शक्कर के बड़े व्यापारिक केन्द्र बनकर उभरे जहाँ देश के विभिन्न हिस्सों से शक्कर मँगाये जाते थे फिर उसे मुल्तान एवं सिन्ध के रास्ते दूसरे देशों को निर्यात किया जाता था। अबुल फजल शक्कर की चार किस्मों का वर्णन करता है जैसे कि खांड की चीनी, परिष्कृत चीनी, सफेद चीनी और सफेद चीनी मिश्री। मुगलकाल की अर्थव्यवस्था कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगों पर आधारित थी। भारत से निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएँ भू–उत्पाद थी। भारत आने वाले प्रमुख इतावली यात्री मनूकी के अनुसार ''भारत से निर्यात के लिए मुख्य सामग्री चार विभिन्न पौधों अर्थात कपास, शहतूत, अफीम एवं नील पौधों से प्राप्त होती है।''[8] कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कृषि प्रौद्योगिकी के परिणाम स्वरूप उत्पादन में हुई वृद्धि से व्यापार वाणिज्य में वृद्धि के साथ शाही खजाने की समृद्धि बढ़ी होगी। मनूकी द्वारा बताये गये कृषि फसलों के व्यवसायिक उत्पादन से आर्थिक प्रक्रिया को गति मिली होगी और इन व्यवसायिक फसलों को बाजार में बेचे जाने से पूर्व प्राथमिक स्तर पर प्रसंस्करण का काम किया जाता होगा जिसके कारण घरेलू स्तर पर कुटिर उद्योग स्थापित हुए होगें जिसमें जनसंख्या का एक भाग संलग्न रहा होगा और लोगों को अतरिक्त आय के साधन प्राप्त हुए होंगे।

वस्त्र निर्माण एवं रंगाई तथा छपाई की तकनीक

तुर्क शासन के पहले से ही भारत वस्त्र निर्माण में अग्रणी था। सूती व ऊनी कपड़ों का भारत में बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता था। काश्मीर ऊनी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था, सूती कपड़े भड़ौच वाराणसी, मसूलीपट्टनम में निर्मित किए जाते थे, किन्तु तुर्को द्वारा लाया गया चरखा ने कपड़े के उत्पादन को कई गुना बढ़ा दिया। तुर्को के आने से पहले कपड़े के उत्पादन के लिए तकली का प्रयोग किया जाता था, जिससे महीन सूत का निर्माण किया जाता था। इस प्रक्रिया में लम्बा समय लगता था। चरखे से मोटा सूत काटा जाता था जो तकली से छः गुना ज्यादा उत्पादन करता था। शासक वर्ग महीन सूत से बने कपड़े पहनता था, इस कारण तकली से बनने वाले महीन कपड़े का उत्पादन जारी रहा और चरखे से बनने वाला मोटा कपड़ा सर्वसाधारण के लिए आसानी से सुलभ हो गया था। चरखे का सर्वप्रथम प्रमाणित साक्ष्य इसामी ने अपने पुस्तक फुतुह–उस–सलातीन (1350 ई.) में दिया है, मोहम्मद शायदावादी ने अपनी पुस्तक

मिफताह–उल–फुजला (1469 ई0) में पैर से चलने वाले चरखे का सचित्र वर्णन किया है। कपड़ों के बुनाई के जरवाफ्त (सोने की कढ़ाई) पद्धति का विकास भी मध्यकाल में हुआ, इससे कपड़े पर सोने के पतले तारों से कढ़ाई की जाती थी। मिफ्ताह उल फुजला में भी सोने के जरदारी के कार्य का वर्णन किया गया है। जरवाफ्त कपड़े का उपयोग शासक वर्ग करता था और इसका प्रयोग उच्च अधिकारियों को विशेष अवसरों पर खिल्लत प्रदान करने के लिए किया जाता था।[9]

ईरान से आने वाले चरखे ने वस्त्र उत्पादन में नयी क्रांति को जन्म दिया। चरखे के आगमन से पहले हाथ से चलने वाले पहिए और तकली का प्रयोग भारतीय बुनकर करते थे। मोहम्मद हबीब की शहरी क्रांति की अवधारणा का मुख्य तत्व चरखा ही है। नये चरखे के कारण वस्त्र उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई और भारत शीघ्र ही सूती वस्त्र उत्पादन और निर्यात का प्रमुख केन्द्र बन गया। देश के विभिन्न भागों में तैयार किये जाने वाले सूती वस्त्रों की अपनी विशेष पहचान थी। सहारनपुर का खासा और चौतर, बनारस का गंगाजल, झोना, मिहिरकुल, मंदिल लाहौर का सरहिन्द, दिल्ली का छींट, गुजरात का वाफ्था सूती कपड़े प्रसिद्ध थे। पटना में जफरानी और जहाँगीरी किस्म के सूती वस्त्र तैयार किये जाते थे। कुछ स्थानों पर निर्मित वस्त्र उस स्थान के मुख्य पहचान गये जैसे खैराबाद का खैराबादी दरियाबाद का दरियाबादी कपड़ा।

इरफान हबीब ने अपने शोध कार्य में बताया है कि सूती वस्त्र उद्योग को कृषि के बाद आजिवीका का सबसे बड़ा साधन है। सूती वस्त्र तैयार करने वाले बुनकर गाँवों से लेकर शहरों तक फैले हुए थे, जिस प्रकार से कृषि ग्रामिण लोगों के जीवनयापन का मुख्य साधन थे। उसी प्रकार शहरों की एक बड़ी आबादी सूती वस्त्र उत्पादन में संलग्न थी। चरखे से कपड़ा बनाने सम्बन्धि कार्यों में पुरूशों की अपेक्षा महिलाओं की भूमिका अधिक थी। अभिजात्य वर्गीय परम्परा के कारण महिलओं को घर से बाहर निकलने की पाबंदी होती थी। पुरूश घर में रूई लाकर देते थे और महिलाएँ घर में इसके धुनाई और सफाई का कार्य करती थी। सीमित अर्थों में विश्लेषण किया जाए तो सूती वस्त्र उद्योग औद्योगिक उत्पादन में महिला सहभागिता का मध्यकालिन भारत आर्दश स्वरूप स्थापित करता हुआ प्रतित होता है। महिलाओं के द्वारा घर पर उत्पादन प्रक्रिया में भाग लेने से अवश्य ही उनके आर्थिक जीवन में सुधार आया होगा। मध्यकालिन सूती वस्त्र उत्पादन में महिलाओं की निर्णायक भूमिका का सहज अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि समकालिन स्रोतों में महिलाओं को चरखे के साथ सम्बन्ध किया गया है। अमीर खुसरो ने सूई और तकुए को महिलाओं का ''तीर और भाला'' कहा है। फुतुह उस सलातिन का लेखक इसामी ने अधिकांश समय चरखा चलाने वाली महिलाओं को बेहतर बताया है। सूती वस्त्र उद्योग का विस्तार गाँवों से लेकर शहरों तक था। गाँव के लोग अपनी आवश्यकता के वस्त्रों का निर्माण स्वयं करते थे। ग्रामीण क्षेत्र में कृषि कार्यों से शेष बचे समय में लोग अपने घरों में सूत निर्माण एवं धागे के निर्माण में लगे रहते थे। जिसके कारण मध्यकाल में मौसमी बेरोजगारी जैसी समस्याओं में कमी हुई होगी। सुल्तानों ने बड़े पैमाने पर दासों को क्रय किया और उन्हें सूती वस्त्रों के राजकीय कारखानों में नियोजित किया। जिसमें शाही परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्त्रों का उत्पादन किया जाता था। किन्तु कारीगरों का एक बड़ा भाग स्वतंत्र रूप से विभिन्न शहरों में वस्त्र उत्पादन में संलग्न था जिसने सामाजिक संरचना में औद्योगिक श्रमिक वर्ग को जन्म दिया।

रेशमी कपड़े का उत्पादन भी भारत में सर्वप्रथम सल्तनत काल में प्रारम्भ हुआ। उत्पादन की यह प्रणाली भारत में चीन से आयी। चीनी यात्री महुयान जब 1422 ई. में बंगाल पहुँचा तब उसने शहतूत के पेड़, रेशम के कीड़े और कृमि कोष को देखा, रेशम उत्पादन बंगाल में शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया और उत्पादन में शीर्ष पर पहुँच गया। भारत में रेशम उत्पादन शीघ्र ही फैल गयी और काश्मीर, कासिम बाजार, बालासोर, ढाका, बुरहानपुर इसके प्रमुख केन्द्र बनकर उभरे। रेशम के उद्योग की स्थापना से आर्थिक गतिशीलता में वृद्धि हुई और शीघ्र ही यह राजकीय संरक्षण प्राप्त उद्योग का दर्जा प्राप्त कर लिया। रेशम के कीड़ों के पालने से लेकर रेशमी वस्त्रों के निर्माण प्रक्रिया में लागत अधिक होने के कारण रेशमी वस्त्र आम आदमी के पहुँच से बाहर थे। रेशमी वस्त्रों की माँग शासक वर्ग में अधिक थी शासक विशेष अवसरों पर अधिकारियों को खिल्लत के रूप में रेशमी वस्त्रों का वस्त्र प्रदान करते थे। जिसका उत्पादन अधिकारियों के देख–रेख में शाही कारखानों में किया जाता था। रेशम उद्योग ने देश में आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया बंगाल रेशम उत्पादन का सबसे बड़ा केन्द्र था जबकि रेशमी वस्त्रों का सर्वाधिक उत्पादन गुजरात में किया जाता था। ट्रेवेनियर के अनुसार बंगाल के कच्चे रेशम के उत्पादन का दो–तिहाई भाग गुजरात को भेज दिया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि बंगाल से रेशम गुजरात ले जाकर वस्त्र उत्पादन करने में कितना बड़ा अर्थ तंत्र काम करता होगा। पट्टन शहर का पटोला सिल्क अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध था। अहमदाबाद में सोने और चाँदी के धागों का प्रयोग रेशमी वस्त्रों के उत्पादन में किया जाता था जिसे जरवाफ्त कहा जाता था। घेराघाट, कासिम बजार, बाकला, बालासोर, कटक, जगन्नाथ पुरी जैसे शहरों का विकास रेशम उद्योग के कारण ही हुआ था।[10] रेशमी वस्त्र मध्यकाल में उपभोग की प्रमुख वस्तु थी जो सहज रूप से आम जनता को उपलब्ध नहीं थी, अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरी के लूट में रेशमी वस्त्र भी प्राप्त किया था। रेशमी वस्त्रों का उपयोग उच्च सामाजिक स्थिति का सूचक था इसलिए अलाउद्दीन खिलजी ने पटोला रेशमी वस्त्र खरीदने के लिए अधिकारियों को शासन से अनुमती प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया था।

कपड़े के उत्पादन के बाद कपड़े के रंगाई का कार्य महत्वपूर्ण उद्यम था। आज के तरह पहले कृत्रिम रंग उपलब्ध नहीं थे, इसीलिए प्राकृतिक वनस्पतियों को विभिन्न अनुपात में मिलाकर रंग तैयार किया जाता था। कपड़ों के कुछ हिस्सों को बाँधकर रंगाई करने की पद्धति विकसित हुई जिसे बंधना अथवा गुलबदन कहा जाता था। आगरा और अहमदाबाद उस समय रंगाई प्रौद्योगिकी में सबसे आगे थे क्योंकि उत्तम कोटि के नील उत्पादन केन्द्र बयाना और सरखेज इनके नजदीक थे। रंगाई प्रौद्योगिकी के विकास ने भारत में नये सामाजिक वर्गों को जन्म दिया जो मुख्यतः रंगाई के पेशे से जुड़े हुए थे इनमें रंगाई का काम करने वाले रंगरेज, नील बनाने वाले नीलगर और सिन्दूर बनाने वाले गुलतसाज प्रमुख थे। कपड़े की रंगाई में विभिन्न वनस्पतियों को एक निश्चित मात्रा में मिलाकर प्राकृतिक रंग प्राप्त किये जाते थे, इस प्रणाली का विकास मध्यकाल में हो चुका था। हरा रंग प्राप्त करने के लिए पहले कपड़े की रंगाई हल्दी से की जाती थी उसके पश्चात नील से, नारंगी रंग प्राप्त करने के लिए शाहाब में जाफरान मिलाया जाता था। लाख, आल का पौधा, मजीठा, कचनार के पेड़ की छाल और लोध वृक्ष की छाल से लाल रंग प्राप्त किया जाता था। पीला रंग प्राप्त करने के लिए हल्दी की गांठे, धाओ

का फूल, आँवले का फल और जाफरन का प्रयोग किया जाता था, उसी प्रकार अनार के पेड़ की छाल से हरा और बबूल की छाल से भूरा रंग प्राप्त किया जाता था। रंगरेजो को इस बात की पूरी जानकारी थी कि किस अनुपात में प्राकृतिक वनस्पतियों के प्रयोग से किस प्रकार का रंग प्राप्त किया जा सकता है। कपड़े पर रंगाई के बाद कपड़े के छपाई का कार्य महत्वपूर्ण हो जाता था कपड़े की छपाई मुख्यतः अहमदाबाद, महमूदाबाद, वुरहानपुर में की जाती थी किन्तु दरियाबाद और खैराबाद के छपाई वाले कपड़े विशेष रूप से प्रसिद्ध थे जिसे दरियावादी और खैरावादी नाम से जाना जाता था, कपड़े के छपाई के लिए लकड़ी के ठप्पे का प्रयोग करते थे मुंशी टेकचंद ने अपने पुस्तक बहार–ए–आजम में लकड़ी के ठप्पे से छपाई की विधि को कालिब कहा है जबकि मलिक मुहम्मद जायसी ने इसके लिये छापा शब्द का प्रयोग किया है।[11]

स्थापत्य तकनीक

मध्यकाल में भारत आये नये शासक की अपनी जरूरते थी पहली जरूरत तो इबादत करने के लिए मस्जिद निर्माण करने की थी, नया शासक वर्ग शहरी मिजाज का था और शहरो में रहना पसन्द करता था, इसलिए राजस्व अधिशेष का प्रयोग शहरो में नई इमारतों के निर्माण में किया गया इबादत के लिए मस्जिद, शिक्षा के लिए मदरसा और रहने के लिए भवनो का निर्माण उनकी प्राथमिक आवश्यकता थी। शासक वर्ग को नये निर्माण की जरूरत थी और उस नये निर्माण के लिए उनकी अपनी स्थापत्य तकनीक भी थी जो भारतीय स्थापत्य से सर्वथा भिन्न थी। देश के विभिन्न भागो में स्थापित मध्यकालीन इमारते तुर्क–मंगोल शासकों के स्थापत्य विज्ञान का प्रतिबिम्ब है। तुर्क–मंगोल शासकों द्वारा लायी गयी स्थापत्य शैली और भारतीय स्थापत्य शैली के आपसी समन्वय से एक नयी शैली का निर्माण हुआ जिसे जॉन मार्शल ने भारतीय मुस्लिम शैली और फर्ग्युसन ने पठान शैली कहा है। नये शासक वर्ग द्वारा लाये गये स्थापत्य तकनीक की कुछ विशेषताएँ ऐसी थी जो भारतीय स्थापत्य निर्माण के लिए सर्वथा नवीन थी उनमे प्रथम था चुना–गारा का सीमेन्ट के रूप में प्रयोग करना भारतीय स्थापत्यकार निर्माण सामग्री के रूप में मिट्टी, पत्थर, लकड़ी व कभी–कभी ईटो का प्रयोग करते थे।[12] तुर्को के आगमन के बाद निर्माण में बड़े पैमाने पर चूना एवं गारा का सीमेन्ट प्रयोग होने लगा। तुर्को के आगमन से न केवल निर्माण सामग्री में परिवर्तन हुआ बल्कि निर्माण की शैली में भी परिवर्तन आया। भवनो के निर्माण में मेहराबो और गुम्बदो का प्रयोग होने लगा। इस्लाम में इमारतो को सजाने के लिए सजीव चित्रो का प्रयोग नही किया जाता था इसलिए सजावट के लिए ज्यामितिय डिजाइनो एवं कुरान के आयतो के प्रयोग वाली कूफी एवं अरबैस्क शैली का प्रयोग किया गया। गुम्बद एवं मेहराब सुल्तानों की स्थापत्य शैली की प्रमुख विशेषता बन गये। बलवन का मकबरा शुद्ध मेहराब शैली पर बना भारत की पहली इमारत थी।[13] स्थापत्य निर्माण में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता था अलाउद्दीन खिलजी द्वारा कुतुबमीनार के प्रांगण में घोड़े के नाल के अकार का निर्मित अलाई दरवाजा इसका सुन्दरतम उदाहरण है। जॉन मार्शल ने इसे इस्लामी स्थापत्य कला के खजाने का सबसे सुन्दर नग कहा है। तुगलक काल में विशाल ढलवाँ दीवार वाली इमारतो का निर्माण किया गया था जिसमें बड़े पैमाने पर ग्रेनाइट पत्थर एवं धूसर पत्थरो का प्रयोग किया गया था एक चतुश्क एवं चार चतुश्क मस्जिदों का निर्माण फिरोजशाह तुगलक के निर्माण की मुख्य विशेषता थी। लोदी काल में मस्जिद एवं मकबरे को

संयुक्त करके बनाने की शैली का विकास हुआ। अष्टभुजाकार मकबरे भी लोदी स्थापत्य की प्रमुख विशेषता है मकबरो के निर्माण की परम्परा विशिष्ट शैली के साथ इतनी लोकप्रिय हुई की लोदी काल को मकबरो का काल कहा जाने लगा। सिकन्दर लोदी का मकबरा (1517), शेरशाह सूर का मकबरा (1545), इस्लामशाह सूर का (1550) अष्टभुजाकार शैली के प्रमुख मकबरे है।[14]

मुगल काल में स्थापत्य तकनीक में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव हुए अब भवन निर्माण से पहले उसका ब्योरेवार खाका (आयोजन) बनाने को प्रमुखता दिया गया अकबर एवं शाहजहाँ ने अपने समय के निर्माण में ब्योरेवार खाके को प्रमुखता दिया मुगलो के आगमन के बाद भवनो को वाटर प्रुफ बनाने के तकनीक में बदलाव हुआ अब भवनो को वाटर प्रुफ रखने के लिए सरूज का प्रयोग होने लगा जो कि चूने, रेत एवं लकड़ी के राख का मिश्रण था। मुगलो के समय पित्रा डयूरा और चार बाग पद्धति से इमारतो का निर्माण हुआ अकबरो ने इमारतो के निर्माण में प्राचीन स्थापत्य को उतारने का प्रयास किया है, फतेहपुर सिकरी के पंचमहल का निर्माण पर नालन्दा बौद्ध बिहार की अमिट छाप है। जहाँगीर के समय रत्नो की जड़ावत वाली पित्रा डयूरा शैली का प्रचलन शुरू हुआ, आगरा में स्थित एतमाद–उद्दौला का मकबरा पित्रा डयूरा शैली का सुन्दर उदाहरण है। शाहजहाँ का समय स्थापत्य निर्माण की दृष्टि से स्वर्णयुग था। संगमरमर और लाल पत्थरो का प्रयोग इसके समय में भरपुर हुआ। ताजमहल और लालकिला शाहजहाँ के काल की सर्वोत्तम स्थापत्य कृति है। शाहजहाँ के समय नौ दंताकार या नोकदार मेहराबो का प्रयोग हुआ जो प्याज के सदृश्य बाहर से फूली और पतली गर्दन वाली दोहरी गुम्बदे थी।[15]

भारत का नया शासक वर्ग शहरी जीवन का अभ्यस्त था इसलिए भारत में शीघ्र ही क्षेत्रिय प्रशासनिक केन्द्र शहर के स्वरूप में विकसित हो गये। किन्तु हमें यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि शहरी जीवन जीने के अभ्यस्त शासक वर्ग का पोषण गाँव से जाने वाले राजस्व से होता था। शासक वर्ग की बढ़ी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज्यादा मात्रा में राजस्व अधिशेष की जरूरत थी जिसे उन्नत सिंचाई तकनीक, कृषि प्रौद्योगिकी एवं व्यवसायिक खेती ने पुरा किया था। गन्ने के उत्पादन में वृद्धि से लाहौर चीनी (शक्कर) उद्योग के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। चरखे के आगमन से वस्त्र निर्माण प्रक्रिया में गति आयी जिसके कारण और अधिक कपास उत्पादन की आवश्यकता हुई जिसमें सिंचाई की नवींन रहट प्रणाली ने सहयोग प्रदान किया। कच्चे माल को विभिन्न गाँवों से ले जाकर एक स्थान पर प्रसंस्करण के लिए पहुँचाया जाने लगा जिससे बड़े औद्योगिक शहरों का विकास हुआ। सूती वस्त्र उद्योग ने शहरीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान किया। किंग्सले डेविस ने मुगल काल की आबादी 12.5 करोड़ बताया है जबकि इरफान हबीब का मानना है कि उस समय भारत की 15 फिसदी जनसंख्या शहरी थी। शहरी जनसंख्या औद्योगिक कार्यों में संलग्न होती है और उद्योग, तकनीक एवं प्रौद्योगिकी से चलते है। चीनी, शक्कर, नील, कपास के उत्पादन में वैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग से कृषि उत्पादन बढ़ा जिसके कारण कृषि आधारित उद्योगों का विकास हुआ जिसने शहरों में रहने वाले लोगों को रोजगार प्रदान किया जिसके कारण शहरी जीवन में स्थिरता बनी रही। मध्यकाल में शहरीकरण की प्रकिया तेज गति से आगे बढ़ी विशेषकर मुगल काल में शहरीकरण ने स्थापत्य निर्माण को बढ़ावा दिया अबुल–फजल के शब्दो में कहे तो यह सब

महामहिम (अकबर) की परोपकारिता के कारण सम्भव हुआ। निजामुद्दीन अहमद 120 बड़े शहरो और 3200 कस्बो की संख्या बताता है जो मुगलकाल से विद्यमान थे। विदेशी यात्रियों ने अपने यात्रा वृतांतों में उस मध्यकालीन नगरीय जीवन एवं शहरों के भव्यता का वर्णन किया है। बर्नियर के अनुसार ''दिल्ली पेरिस से कम नही था और आगरा दिल्ली से बड़ा था।'' मांनसेराट ने लाहौर की तुलना यूरोपिय नगरों से करता है और बताता है कि यहाँ का बाजार इतना व्यस्ता था कि चलने पर कंधे परस्पर सट जाते थे। राल्फ फिंच ने भारतीय शहरों का अवलोकन बड़ी सूक्ष्मात के साथ किया है उसने आगरा एवं फतेहपुर को लंदन से भी बड़ा शहर बताया है।[16] मध्यकाल में ईट के प्रयोग का प्रचलन बढ़ा जिसके कारण समान्य लोग भी ईट के घरो का निर्माण करने में सक्षम हो सके। तुर्को के आगमन से पूर्व भवनो के निर्माण में पत्थरों का प्रयोग किया जाता था। पत्थरों से भवनों के निर्माण की लागत अधिक होने के कारण गरीब कच्चे मकानों में रहते थे। किन्तु मध्यकाल में ईटो के प्रचलन बढ़ने से समान्य लोग भी ईट के घरो का निर्माण कराने लगे। अबुल–फजल पकी हुई, अधपकी, बिना पकी हुई ईटो का वर्णन करता है। पकी ईटो का प्रयोग विशिष्ट वर्ग के लोग गुम्बद, मेहराब और छत बनाने के लिए करते थे किन्तु साधारण वर्ग अपना घर अधपकी और बिना पकी ईटो से लकड़ी की सहायता से बनाता था।

स्थापत्य निर्माण ने स्थापत्य निर्माण से जुड़े नये समाजिक वर्ग को जन्म दिया जिसमें पत्थर तराशने वाले (संगतराश) खुली खानो में काम करने वाले (संगबार), अभियन्ता (मुहान्दीस) वस्तुशिल्पी (मेमार) कुशल मजदूर (इजारा) और दैनिक वेतन मजदूर (रोजिंदार) प्रमुख थे।[17]

निष्कर्ष

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के कारण सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए। शहरीकरण की प्रक्रिया को गतिशीलता प्रदान करने में विज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण थी जिसने बढ़ते शहरी जरूरतों को पुरा किया। विज्ञान एवं प्रौद्योगिक के आगमन से ग्रामीण जीवन में रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्राप्त हुए जिससे ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार परिलक्षित हुआ एवं रोजगार के बढ़ते अवसर एवं कार्य करने के बदलते स्वरूप ने नये पेशेवर सामाजिक वर्ग को जन्म दिया जिसमें रंगरेज, (रंग का काम करने वाले), नीलकार (नील का काम करने वाले) गुलतसाज (सिन्दुर बनाने वाले), संगरताश (पत्थर तराशने वाला) प्रमुख है। मध्यकाल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी समाजिक प्रगति का सूचक था इसने मनुष्य के जीवन में कई बदलाव लाये जैसे पर्शियन व्हील से किसानों की पैदावार बढ़ी तो दूसरी ओर चरखे के प्रयोग से मोटे कपड़े का उत्पादन बड़े स्तर पर होने लगा जिसके कारण समान्य जन की कपड़ों तक पहुँच सुनिश्चित हो सकी, कृषि में विभिन्न नये फसलो के पैदावार से गरीब किसानों के पोषण स्तर में वृद्धि हुई। आलू की पैदावार से किसानों के भूखमरी की समस्या समाप्त हुई

ईटो के व्यापक प्रयोग से गरीब व्यक्ति को भी ईट के घरो में रहना नसीब हुआ। प्रस्तुत लेख में विज्ञान के तीन क्षेत्रों का चयन किया गया है जिसके प्रयोग से समान्य लोगों के जीवन

में खुशहाली और उनके रहन–सहन का स्तर उपर उठा। मध्यकालीन सिंचाई तकनीक, वस्त्र निर्माण कला और स्थापत्य महत्वपूर्ण परिक्षेत्र है जिसने समाजिक परिवर्तन को गति प्रदान किया।

❒

सन्दर्भ –

1. वर्मा, हरिश्चन्द्र, (2015), मध्यकालीन भारत भाग–1 (750–1540), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृ.115
2. प्रसाद, ईश्वरी, (2011), मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, श्री मुक्ता प्रिन्ट, लखनऊ, पृ. 225
3. Khan, Iqbal G, (1982), The Methodological Heritage of Medieval Indian Science, Indian History Congress, New Delhi, p. 353-54
4. वर्मा, हरिश्चन्द्र, (2015), मध्यकालीन भारत भाग–1 (750–1540), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृ.386
5. शेंगर, शैलेन्द्र, (2005), मध्यकालीन भारत का इतिहास, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ.150
6. पान्डेय, अवध बिहारी, (1972), पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, पृ. 246–47
7. Grewal, J.S., (1984), Social Change in Medieval India, Indian History Congress, New Delhi, p. 5
8. वर्मा, हरिश्चन्द्र, (2015), मध्यकालीन भारत भाग–2 (1540–1761), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृ. 399
9. हबीब, इरफान, (1992), मध्यकालीन भारत अंक–एक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 25
10. Varadarajan, Lotika, (1988), Silk in Northeastern and Eastern India : The Indigenous Traditions, Indian History Congress, New Delhi, p. 568
11. वर्मा, हरिश्चन्द्र, (2015), मध्यकालीन भारत का इतिहास भाग–2 (1540–1761), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृ. 354–56
12. Subodh, Sanjay, (2015), Knowledge Technology and Building Construction in Medieval India, Indian History Congress, New Delhi, p. 186
13. रहमान, ए., (2003), भारत में विज्ञान और तकनीकी प्रगति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.13
14. चन्द्र, सतीश, (2009), मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ.179
15. श्रीवास्तव, ए.एल., (1972), मुगलकालीन भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ. 562
16. हबीब, इरफान, (1993), मध्यकालीन भारत का इतिहास अंक–दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.123
17. वर्मा, हरिश्चन्द्र (2015), मध्यकालीन भारत का इतिहास भाग–2 (1540–1761), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृ. 324

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 39–44

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना अंतर्गत शिशु लोन का राज्यवार प्रदर्शन

छन्नी साहू
शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगांव जिला–राजनांदगांव, (छत्तीसगढ़)
E-mail : chhannisahu2019@gmail.com Mob. 9770898572
डॉ. के.एल.टाण्डेकर
(शोध निर्देशक), प्राचार्य शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजनांदगांव, जिला–राजनांदगांव , (छत्तीसगढ़)
डॉ. एच.एस.भाटिया
(सह शोध निर्देशक),विभागाध्यक्ष वाणिज्य संकाय, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजनांदगांव, जिला–राजनांदगांव, (छत्तीसगढ़)

सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र में प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना के अन्तर्गत शिशु लोन का राज्यवार प्रदर्शन का अध्ययन किया गया है। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना आज हमारे समाज के लोगो के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण योजना साबित हो रही है। इस योजना के माध्यम से समाज के निम्न वर्गो के लोग बहुत अधिक लाभान्वित हुए है तथा यह योजना उनके लिए एक महत्वाकांक्षी योजना है। यह योजना समाज के लोगो के आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध हुई है। इस शोध पत्र का उद्देश्य प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के लाभ को उजागर करना तथा शिशु लोन के महत्व को प्रदर्शित करना है। भारत के तमिलनाडू राज्य का प्रदर्शन शिशु लोन अन्तर्गत सबसे अच्छा रहा है।

मुख्य शब्दः– प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना, हितग्राही, उद्यमी, आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, रोजगार, गरीबी, बेरोजगारी, व्यवसायी, शिशु लोन, किशोर लोन, तरूण लोन।

प्रस्तावना

भारत एक विकासशील देश है। यहॉ की सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी एवं गरीबी है। इस समस्या को दूर करने के लिए भारत सरकार ने अनेक प्रयास किये है तथा इसी प्रयासों मे एक प्रयास प्रधान मंत्री मुद्रा ऋण योजना है। जब भी कोई व्यक्ति या समाज का कोई वर्ग कुछ करना चाहता है तो उसके पास सबसे पहली और सबसे बड़ी समस्या धन की होती है। धन के आभाव में कोई व्यक्ति चाह कर भी कुछ कर नहीं पाता है। पुराने जमाने में जब कभी भी किसी व्यक्ति को धन की आवश्यकता होती थी तो वे पहले तो औपचारिक स्त्रोतो के पहुंच

से दूर होने के कारण वहॉ तक पहुंच नहीं पाते थे, दूसरी समस्य उनकी अशिक्षा होती थी, जिससे की वे औपचारिक स्त्रोत की पहुंच से दूर थे, जिसके कारण उन्हे साहूकारों, महाजनों का सहारा धन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए लेना पड़ता था। साहूकार उंचे ब्याज दर पर पैसे उधार में उन्हे देते थे, मजबूरी में कुछ व्यवसाय, या उद्योंग–धन्धे प्रारंभ करने के लिए उन्हे महाजनों से ऋण लेना पड़ता था। खोला गया उद्योग अगर ठीक से चला तो वे साहूकारों के ऋण के चंगूल से निकल जाते, परन्तु अगर उद्योग–धन्धों में लाभ नहीं हुआ तो वे उनके ऋण के दुश्चक्र में फंस कर गरीब से और गरीब हो जाते है। कुछ लोग औपचारिक स्त्रोतो का सहारा लेना भी चाहते है परन्तु बैंको के नियमों मे उलझना नहीं चाहते वे बैंक जाने से घबराते है क्योकि बैंक उधार देने से पहले गारंटी मांगता है, बहुत सारे प्रोसेसिंग फीस होते है, इत्यादि के कारण उन्हे बैंको का चक्कर काटना पड़ता है, जिससे वे इन असुविधा से बचने के लिए साहूकारो से ही ऋण लेना उचित समझते है। हमारे देश के सकल घरेलु उत्पाद का अधिकाशं भाग उद्यमियों के माध्यम से ही आता है। इसलिए इन उद्यमियों की पहुंच बैंक तक हो, इन्हे कम से कम ब्याज दर पर ऋण प्राप्त हो, जिसमें कोई गारंटी की जरूरत भी न हों। ऐसी सुविधा यह प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना प्रदान करता है। इस योजना के अन्तर्गत स्वयं का व्यवसाय प्रारंभ करने के लिए बैंक 50,000/–रूपये तक का लोन उपलब्ध करा रही है। जो शिशु लोन की श्रेणी में आता है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य

1. प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना अंतर्गत शिशु लोन की भूमिका का अध्ययन।
2. प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना का राज्यवार प्रदर्शन करना।

शोध अध्ययन की प्रविधि

इस शोध अध्ययन में प्रधानमंत्री मुद्रा योजना की पोर्टल साईट से प्रधानमंत्री मुद्रा योजना से संबंद्धित आकड़ो को द्वितीयक समंक के रूप में लिया गया है। उक्त स्त्रोत से प्राप्त जानकारियों को संकलित करने के पश्चात उपर्युक्त साख्यिकी प्रविधियों का आवश्यकतानुसार उपयोंग कर सारणी के माध्यम से विश्लेषण किया गया है।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना का परिचय

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना की शुरूवात हमारे देश के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा 8 अप्रैल 2015 को की गयी थी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के सर्वेक्षण (2013) के अनुसार हमारे देश में लगभग 5.77 करोड़ लघु/सूक्ष्म इकाइयॉ हैं, जिनमें लगभग 12 करोड़ लोग कार्यरत हैं। इनमें से ज्यादातर स्वामित्व–आधारित/लेखा उद्यम है। 60 प्रतिशत से अधिक इकाइयों के मालिक अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अथवा पिछड़े वर्ग के लोग है। इनमे से अधिकतर उद्यम औपचारिक बैंकिंग प्रणाली के बाहर है। इसलिए उन्हे या तो साहूकारो, महाजनो, रिश्तेदारों से ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है या अपने पास रखो कुछ थोड़े

जमा पूंजी का उपयोग करने के लिए। मुद्रा ऋण योजना इस कमी को दूर करने के लिए बनाई गयी है। मुद्रा ऋण योजना का उद्देश्य पहली बार व्यवसाय प्रारंभ करने वाले इच्छुक युवाओं तथा अपनी गतिविधियों का विस्तार करने के लिए मौजूदा लघु व्यवसायियों के मनोबल में वृद्धि करना है।

इस योजना अन्तर्गत ऋण तीन श्रेणियों में प्रदान किया जाता है।

(1) **शिशु लोन**–जो पहली बार अपना व्यवसाय प्रारंभ करना चाहते है, इसके अन्तर्गत उन्हे 50,000/–रूपये तक का लोन उपलब्ध कराया जाता है।

(2) **किशोर लोन**–इसके अन्तर्गत उन लोगों को लोन दिया जाता है जो अपना व्यवसाय तो प्रारंभ कर चुके पर पर स्थापित करने के लिए उन्हे पैसों की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत उन्हे 50,000/–रूपये से 5,00,000/–रूपये तक का लोन उपलब्ध कराया जाता हैं

(3) **तरूण लोन**–अपने व्यवसाय के लिए संयत्र का कोई मशीनरी खरीदना चाहते है तथा व्यवसाय का विस्तार करना चाहते है इसके अंतर्गत उन्हे 5,00,000/–रूपये से 10,00,000/–रूपये तक का लोन उपलब्ध कराया जाता है।

मुद्रा ऋण वाणिज्यिक बैंक, सहकारी बैंक, लघु वित्त बैंक, सूक्ष्म वित्तीय संस्थान, RBF द्वारा प्रदान किये जाते है। मुद्रा ऋण के तहत कोई निश्चित ब्याज दर नही है। अलग–अलग बैंक मुद्रा ऋण के लिए अलग–अलग ब्याज दर लेती है। मुख्यतः ब्याज दर 10 से 12 प्रतिशत है।

मुद्रा यानि माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेंट एंड रिफाइनेंस एजेंसी लिमिटेड सूक्ष्म ईकाईयों के विकास तथा पुनर्वित्तपोषण से संबंधित गतिविधियों हेतु भारत सरकार द्वारा गठित एक नयी संस्था है। मुद्रा एक पुनर्वित्त संस्थान है। यह सीधे सूक्ष्म उद्यमियों या व्यक्तियों को उधार नहीं देता। इसकी घोषणा माननीय वित्तमंत्री जी ने वित्तीय वर्ष 2016 का बजट पेश करते हुए की थी। मुद्रा का उद्देश्य गैर निगमित लघु व्यवसाय क्षेत्र को निधि/वित्तपोषण प्रदान कराना है।

प्रकिया–जिस भी आवेदक को मुद्रा ऋण लेना होता है वह बैंको से अथवा बैंक की किसी भी शाखा से सपंर्क कर जानकारी लेकर आवेदन भर सकता है और नियमानुसार बैंको की सम्पूर्ण कार्यवाही उपरांत आवेदन का लोन पास होने पर उनके खाते मे लोन की राशि वितरित कर दी जाती है। आवेदक किसी भी प्रकार के शंका समाधान के लिए मुद्रा के नोडल एंजेसी से संपर्क कर सकता है। आवेदक को वित्त/निधि बैंको के माध्यम से दिया जाता है।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना अन्तर्गत शिशु लोन का राज्यवार प्रदर्शन

वित्तीय वर्ष 2015–2016 से 2020–21 तक (Amount Rs. in crore)

Financial Year	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	2020-21
State Name	No. of A/C	No. of A/C	No. of A/C	No. of A/C	No. of A/C	No. of A/C
Andaman and Nicobar Islands	15724	1634	1710	2047	296	2376
Andhra Pradesh	612312	366322	353879	366217	529001	811412
Arunachal Pradesh	3194	4645	9137	12476	20088	2506
Assam	390320	1214502	1558335	2112198	1516050	862844
Bihar	2310112	3622665	4063534	5507357	6168244	447990
Chandigarh	18082	14151	9391	18683	14790	9564
Chhattisgarh	605051	840480	871455	1078662	1115562	821423
Dadra and Nagar Haveli	815	2196	2437	1441	2030	1953
Daman and Diu	835	471	462	280	308	586
Delhi	341933	148741	145979	627923	463970	227677
Goa	36247	22173	26766	32711	26344	19166
Gujrat	975320	944644	1230455	1306008	1738925	1114077
Haryana	693408	652844	660709	916742	983706	785940
Himachal Pradesh	59757	49158	41978	55693	46058	64163
Jammu and Kashmir	19057	23589	19532	30982	43862	94698
Jharkhand	828785	969948	1118607	1305620	1563096	1391806
Karnataka	4153714	3546071	4065431	4913740	4738832	3466071
Kerala	707492	775022	2035426	1834120	1788708	1158550
Lakshadweep	551	311	612	422	527	1096
Madhya Pradesh	2406310	2532101	2648183	2812855	3063437	2693204
Maharashtra	3337382	3054130	3145685	3750570	4132679	2912303
Manipur	20943	19099	27973	77581	81858	56050
Meghalaya	15451	20357	23858	27558	38751	26513
Mizoram	5473	3408	6474	6828	13784	3849
Nagaland	3247	8723	11069	11940	11360	9000
Odisha	2281495	2525473	3322007	3910051	3410033	3193856
Pondicherry	74516	121567	130970	143035	113306	88226
Punjab	594025	618286	669630	986106	1083174	903435
Rajasthan	1068001	1015448	1430399	2274699	2598195	1876486
Sikkim	5491	18466	18878	19726	14587	7437
Tamil Nadu	4506237	5000285	5366167	6528577	6405139	4150574
Telangana	286985	379247	637258	786781	1213412	443057
Tripura	59298	243249	366127	381981	371417	233223
Uttar Pradesh	3149078	3076798	3963399	4441760	5222319	3898753
Uttarakhand	326802	246341	188604	223768	236572	213968
West Bengal	2487603	4415268	4497279	5000300	5719620	4145668
Ladakh	-	-	-	-	577	615
Total-	32401046	36497873	42669795	51507438	54490617	40180115

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि वित्तीय वर्ष 2015–2016 में तमिलनाडू राज्य में सबसे अधिक हितग्राहियों के खाते 4506237 है। दूसरे स्थान पर कर्नाटक 4153714 एवं तीसरे नंबर पर महाराष्ट्र 3337382 में खातों की संख्या है। वहीं वित्तीय वर्ष 2016–2017 में तमिलनाडू में खातों की संख्या 5000285 है, दूसरे स्थान में पश्चिम बंगाल में खातों की संख्या 4415268 है, तथा तीसरे स्थान पर कर्नाटक में खातों की सख्या 3546071 है। वित्तीय वर्ष 2017–2018 में खातों की संख्या सबसे अधिक 5366167 है, उसके पश्चात पश्चिम बंगाल में खातों की संख्या 4497279 है, तथा तीसरे स्थान पर कर्नाटक में खातों की संख्या 4065431 है। वित्तीय वर्ष 2018–2019 में सबसे अधिक खातों की संख्या तमिलनाडू में 6528577 है, दूसरे स्थान पर बिहार राज्य में खातों की संख्या 5507357 है, तीसरे स्थान पर पश्चिम बंगाल में खातों की संख्या 5000300 है। वित्तीय वर्ष 2019–2020 में सबसे अधिके खाते तमिलनाडू राज्य में 6405139 है, वही दूसरे स्थान पर बिहार राज्य में खातों की संख्या 6168244 है। इसी प्रकार वित्तीय वर्ष 2020–2021 में सबसे अच्छा प्रदर्शन एक बार फिर तमिलनाडू राज्य का रहा जहॉ खातों की संख्या 4150574 है। वही दूसरे स्थान पर पश्चिम बंगाल में खातों की संख्या 4145668 है एवं तीसरे स्थान पर उत्तरप्रदेश राज्य में खातों की संख्या 3898753 है। इसप्रकरण तमिलनाडू राज्य का प्रदर्शन भारत में सबसे अच्छा रहा है।

अगर भारत में शिशु लोन का प्रदर्शन देखेंगे को प्रत्येक वित्तीय वर्ष में शिशु लोन के खातों की संख्या में वृद्धि हुई है। परन्तु वित्तीय वर्ष 2020–2021 में भारत में कुल खातों की संख्या में कमी दिखाई पड़ती है।

समस्याए

1. इस योजना के अंतर्गत जो लोन बैंक से दिया जाता है वह बिना गारंटी के होता है, इसलिए ऋण राशि वापसी की संभावना बहुत ही कम हो जाती है, जिसके कारण बैंक को एन.पी.ए. की समस्या का सामना करना पड़ता है, और यह लोन बैंक से डूबत खाते में चला जाता है।
2. ग्रामीण इलाको में शिक्षा एवं जानकारी के आभाव में लोग इस योजना के लाभ से वंचित है।
3. ग्रामीण क्षेत्रो के लोगों में जागरूकता की कमी होती है तथा उनके पास उचित साधन नहीं होते, जिससे वे योजना की पहुंच से दूर होते है।

निष्कर्ष

केन्द्र सरकार ने देश में बेरोजगारी और गरीबी को दूर करने के लिए अनेक प्रयास किये है इसी क्रम में अनेक योजनाएं भी तैयार की है, इसी क्रम में प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना अन्तर्गत शिशु लोन निम्न वर्ग के लोगों के लिए एक अच्छी योजना साबित हुई है ,जिससे की वे अपना स्वयं का व्यवसाय प्रारंभ कर एक अच्छा जीवन निर्वाह कर रहे है। उन्हे अब स्वयं का कुछ व्यवसाय खोलने के लिए साहूकारों, महाजनों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। शिशु लोन का प्रदर्शन तमिलनाडू में सबसे अच्छा रहा है। इस योजना का लाभ करोड़ो लोगों को मिला है।

सुझाव

1. इस योजना की जानकारी अधिक से अधिक लोगो को हो सके इस हेतु प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए।

2. ग्रामीण क्षेत्रो में इस योजना के प्रचार के लिए प्रतिमाह एक जागरूकता कार्यक्रम सम्पन्न किया जाना चाहिए जहॉ इस योजना के लाभ के बारे में बताया जाना चाहिए।

3. इस योजना के अंतर्गत जो लोन दिया जाता है वह लोन हितग्राहियों द्वारा उसी उददेश्य के लिए उपयोग किया जा रहा है या नही इस बात की जानकारी के लिए बैंक को सतर्क रहना चाहिए।

❐

सन्दर्भ –

1- https://www.mudra.org.in

2- https://rajnandgaon.nic.in

3. योजना पत्रिका

4. कुरूक्षेत्र पत्रिका

5. https://www.cg.gov.in

6. मुद्रा योजना की वार्षिक प्रतिवेदन 2015 से 2021 तक

7. वित्तीय वर्ष 2015–2016 से 2018–2019 तक का बजट भाषण नोडल मंत्रालय वित्तीय सेवाएं विभाग।

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 45–53

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

आजादी से पूर्व चाय के व्यापार में भोटिया जनजाति की भूमिका (उत्तराखण्ड के संदर्भ में)

मीनाक्षी
शोध छात्रा, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड
Email- meenakshipml72@gmail.com Mob. 7983514709

सारांश

भोटिया जनजाति उत्तराखण्ड की पाँच जनजातियों में एक प्रमुख जनजाति है। सदियों पूर्व से ही चरवाहों का यह समुदाय अपने ट्रांस–हिमालयी व्यापार, अपने विकसित ऊन उद्योग और हस्तशिल्प के लिए प्रसिद्ध रहा है। भोटिया जनजाति के लोग तिब्बत के साथ नमक, खाद्यान, ऊन, सुहागा, चीनी, गुड, नील, सूती धागा, तिब्बती भेड़ आदि विभिन्न वस्तुओं का व्यापार किया करते थे। यह जनजाति तिब्बत के साथ अपने अनोखे व्यापारिक प्रथाओं के माध्यम से सदियों तक व्यापारिक एकाधिकार को बनाए रखने में सफल रही और वर्ष 1962 में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया इसके पश्चात भोटिया जनजाति का तिब्बत के साथ सदियों पूर्व का व्यापारिक संबध सदा के लिए समाप्त हो गया। ब्रिटिश सरकार द्वारा 19वीं शताब्दी के मध्य में तत्कालीन कुमाऊँ संभाग के पहाड़ी क्षेत्रों में चाय बागान लगाने की शुरूआत हुई और चाय की खेती के सफल होने के पश्चात भोटिया व्यापारियों को तिब्बत में निर्यात करने के लिए चाय के रूप में एक और प्रमुख व्यापारिक वस्तु प्राप्त हुई जिसकी तिब्बत में बहुत अधिक मांग थी। प्रस्तुत शोध पत्र में भोटिया व्यापारियों द्वारा तिब्बत के साथ किए जाने वाले चाय के व्यापार, चाय के व्यापार हेतु उपयोग किए जाने वाले प्रमुख दर्रों, चाय के व्यापार का महत्व, चाय के व्यापार में आने वाली समस्याएं, ब्रिटिश सरकार द्वारा समस्याओं के समाधान हेतु किए गए प्रयास और तिब्बत से व्यापारिक संबध समाप्ति का भोटिया जनजाति के जीवन पर पड़े प्रभावों का तथ्यात्मक चित्रण किया गया है।

मुख्य शब्दः– भोटिया जनजाति, ट्रांस–हिमालयी व्यापार, दर्रा, दुर्गम, गमग्या, कुडांखार, ट्रेड एजेंसी, चपरांग जोपंन, सर्वेक्षण।

प्रस्तावना

भारत का हिमालय और उप.हिमालय क्षेत्र न केवल दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों, सुरक्षा दृष्टि से संवेदनशील और ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं व उनमें स्थित असंख्य दर्रों के लिए जाना जाता है बल्कि यह क्षेत्र विश्व के सर्वाधिक समृद्ध जैव विविधता वाले क्षेत्रों में से एक है। यह क्षेत्र सदियों से विभिन्न स्वदे,ाी समुदायों और जनजातियों का मूल निवास स्थान रहा है। मध्य हिमालय में स्थित उत्तराखण्ड राज्य में 29.49^0 से 31.27^0 उत्तरी अंक्षाश और 78.30^0 से 81.3^0 पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित क्षेत्र में भोटिया नामक जनजाति निवास करती है।[1] भोटिया जनजाति के लोग मुख्यतः उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी, चमोली, बागेश्वर, पिथौरागढ़ और अल्मोड़ा जिले में निवास करते है।[2] वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भोटिया जनजाति उत्तराखण्ड की चौथी बड़ी जनजाति है जिसकी कुल जनसंख्या 39,106 है और 72^02: जनसंख्या गाँवों में निवास करती है।[3] उत्तराखण्ड के अतिरिक्त भोटिया जनजाति हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश, सिक्किम, जम्मू–कश्मीर, अरूणाचल प्रदेश आदि राज्यों में भी निवास करती है।[4]

भोटिया/भोट शब्द की उत्त्पत्ति 'बोड' शब्द से हुई है। 'बोड' तिब्बत का मूल नाम था, इसका अपभ्रंश शब्द भोट बाद में प्रचलित हुआ। इसी बोड अर्थात तिब्बत और भारत के मध्य की सीमावर्ती जनजातियों के लिए यहां के स्थानीय लोगों द्वारा भोटिया नाम दिया गया।[5] शेरिगं, स्मिथ और पंत जैसे विद्वानों ने अस्कोट व कपकोट के मध्य सीधा विभाजन रेखा खीचें जाने की स्थिति में इस रेखा के उत्तरी भाग को भोट क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया है। शेरिगं के अनुसार भोटिया जनजाति की उत्त्पति तिब्बत में हुई[6] और 641 ई. में तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रसार होने से सदियों पूर्व ही भोटिया लोग भोट क्षेत्र में आकर बस चुके थे।[7] भोटिया जनजाति के लोगों की शारीरिक विशेषताऐं मंगोलियाई नस्ल के लोगों से मिलती–जुलती है।

वर्ष 1906 में चार्ल्स शेरिगं ने अपनी पुस्तक ''वेस्टर्न तिब्बत एण्ड द ब्रिटिश बॉर्डरलैण्ड'' में भोटिया जनजाति को शौका, दारमी, जौहारी, तोल्छा, मारछा और जाड़ नामक छः उपजनजातियों में विभाजित किया था[8] लेकिन बाद में इसमें चौडांसी व ब्यांसी नामक दो उपजनजातियों को शामिल किया गया। शौका, दारमी, ब्यांसी और चौडांसी भोटिया पिथौरागढ़ जिले में स्थित धौली और कुटीयांगती नदियों की घाटियों में निवास करते है। वहीं जौहारी भोटिया पिथौरागढ़ की गौरी नदी घाटी में निवास करते है और जौहारी भोटिया दो उपवर्ग जेठौरा व रावत में विभाजित है। जेठौरा भोटिया गौरी नदी की तलहटी में स्थित भू–भाग पर निवास करती है और मुख्यतः अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है।[9] चमोली जिले में स्थित विष्णु गंगा नदी घाटी में स्थित माणा एवं नीति में मारछा व तोल्छा और उत्तरकाशी जिले में स्थित जाड़गंगा नदी घाटी में रहने वाली भोटिया जनजाति जाड़ कहलाती है।[10]

मध्य हिमालय क्षेत्र की विषम भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव भोटिया जनजाति के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समुद्रतल से 3000 से 6000 मी. की ऊँचाई पर स्थित भू–भाग वनस्पति विहीन होने के कारण कृषि हेतु उपयुक्त नहीं है लेकिन इन नदी घाटियों के ऊपरी भाग में मखमली घास वाले बुग्याल (चारागाह) पाए जाते है जहां ग्रीष्मकाल में भोटिया जनजाति निवास करती है और चारागाह की उपलब्धता के कारण बड़ी मात्रा में पशुओं का पालन करती है। भेड़, बकरी, यांक, जीबू,

खच्चर, टट्टू, कुत्ते आदि इस जनजाति के दैनिक जीवन और तिब्बत के साथ व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। प्राचीन काल से ही तिब्बत के साथ व्यापार भोटिया जनजाति का मुख्य व्यावसाय रहा और इस व्यापार में उन्हें एकाधिकार प्राप्त था। लेकिन वर्ष 1962 में हुए चीन–भारत युद्ध के बाद सुरक्षा दृष्टि से हिमालय की चोटियों के मध्य से गुजरने वाले इन व्यापारिक दर्रों को सदैव के लिए बंद कर दिया गया और इस प्रकार भोटियों का यह व्यापारिक एकाधिकार सदा के लिए समाप्त हो गया।

तिब्बत के साथ भोटिया जनजाति का व्यापारिक इतिहास

भोटिया जनजाति एवं तिब्बत के मध्य किए जाने वाले व्यापार का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके प्रमाण प्रथम शताब्दी ई. से ही प्राप्त होते है जब कुणिन्द शासकों ने कुषाण राजवंश की अधीनता स्वीकारी थी। भारत में कुषाणों का शासन स्थापित होने से मध्य एशिया के व्यापारिक मार्गों को लुटेरों के आक्रमण से भय मुक्त बनाने में मदद मिली जिससे तिब्बत के साथ होने वाले भोटिया व्यापार में वृद्धि हुई।[11] चौथी शताब्दी ई. में कुषाणों के पतन के पश्चात उत्तराखण्ड में शक्तिशाली कत्यूरी राजवंश की सत्ता स्थापित हुई और कत्यूरी काल में भोटिया व्यापार बहुत अधिक फलाफूला।[12] लेकिन मध्यकाल में इस क्षेत्र में होने वाले मुस्लिम आक्रमणों के कारण इस व्यापार में गिरावट दर्ज की गई। भोटिया–तिब्बत व्यापार में पुनः उस समय तेजी देखने को मिली जब 1670 ई. में चंद राजा बाज बहादुर चंद ने तिब्बत पर आक्रमण कर तकलाखान का किला छीन लिया और भोटिया व्यापारियों पर तिब्बत में लगाए गए कई करों को समाप्त करवाया।[13] इस विजय के बाद लम्बे समय तक भोटिया–तिब्बत व्यापार शान्तिपूर्वक चलता रहा।

1790 ई. में नेपाल के गोरखों ने कुमाऊँ व 1803 ई. में गढ़वाल राज्य पर अधिकार कर लिया। गोरखों का शासन उत्तराखण्ड के इतिहास में सबसे क्रूर, दमन और अवनति का काल माना जाता है जिसे स्थानीय भाषा में 'गोरख्याणी' की संज्ञा दी जाती है। गोरखों के शासनकाल में भोटिया व्यापार बहुत अधिक प्रभावित रहा।[14] लेकिन शीघ्र ही अंग्रेजों ने 1815 ई. में गोरखा राज समाप्त कर संगौली की संधि (1816) द्वारा गढ़वाल व कुमाऊँ के अधिकाशं क्षेत्रों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। प्राचीन काल से प्रसिद्ध भोटिया–तिब्बत व्यापार और सुरक्षा की दृष्टि से संवेदनशील इस क्षेत्र का महत्व ब्रिटिश प्रशासक शीघ्र समझ गए। इसलिए तिब्बत के विषय में गहनता से ज्ञात करने हेतु सर्वप्रथम जॉर्ज भोगले, 1812 में विलियम मूरक्राफ्ट और 1863 में पड़ित नैन सिहं के नेतृत्व में ब्रिटिश सर्वेक्षण मिशन गुप्त रूप से तिब्बत भेजे गए।[15] पड़ित नैन सिहं के नेतृत्व में भेजा गया मिशन अपने लक्ष्य में सफल रहा और इस मिशन के द्वारा भारत व तिब्बत स्थित ल्हासा नदी तक 1200 मील लम्बे भौगोलिक क्षेत्र में स्थित 33 महत्वपूर्ण स्थानों की ऊँचाई व 31 स्थानों की सटीक भौगोलिक स्थित की जानकारी एकत्र की गई।[16]

वर्ष 1863 में किए गए सर्वेक्षण कार्य ब्रिटिश सरकार के लिए भविश्य में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। 20वीं शताब्दी के शुरूआती वर्षों में तिब्बती सरकार ने नए व्यापारिक नियम लागू किए जिसके कारण भोटिया व्यापारियों को कठिनाईयों को सामना करना पड़ा और भारत सरकार ने अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करने हेतु 1904 ई. में कै. यंगहस्बैण्ड के अधीन एक सेना

भेजकर ल्हासा को जीत लिया और व्यापार हेतु अनेक सुविधाएं प्राप्त की, साथ ही कर मुक्त व्यापार हेतु दलाई लामा से एक व्यापारिक समझौता किया।[17] इस समझौते के अनुसार भारत सरकार ने तिब्बत में तीन ट्रेड एजेंसियां यातुंग, ज्ञानिसी और गरतोक में स्थापित की। प्रथम दो एजेंसियां नेपाल के पूर्व में स्थित व्यापारिक मार्ग एवं गरतोक स्थित एजेंसी उत्तराखण्ड स्थित भोटिया व्यापारियों की समस्याओं का समाधान करती थी।[18]

भोटिया.तिब्बत व्यापार में उपयोग की जाने वाली व्यापारिक प्रथाऐं एवं व्यापारिक मार्गः—प्रतिवर्ष जून माह के मध्य में तिब्बत का चपरांग जोंपन (व्यापारिक अधिकारी) अपने संदेशवाहकों को प्रत्येक भोटिया घाटी में यह ज्ञात करने के लिए भेजता था कि कहीं भोट क्षेत्र में महामारी का प्रकोप, अंकाल और पशु रोग तो नहीं फैला है।[19] हर प्रकार से संतुष्ट होने पर ही वह भोटियों को व्यापार हेतु आमंत्रित करता। इसके पश्चात विभिन्न भोटिया प्रतिनिधियों से उपहार व अन्यय प्रकार के कर वसूल कर वह वापस तिब्बत लौट जाता और इस प्रकार प्रतिवर्ष व्यापार की शुरूआत होती थी। नियमानुसार प्रत्येक भोटिया व्यापारी के लिए व्यापार करने हेतु तिब्बत में एक मितर (मित्र) बनाकर रखना अनिवार्य था और अपने उसी मित्र से वह व्यापार करता था। यह तिब्बती मित्र किसी अन्य भोटिया व्यापारी से व्यापार नहीं कर सकता था, यदि वह ऐसा करता तो उसे आर्थिक दण्ड देना होता था।[20] आपसी व्यापारिक मित्रता और विश्वास को मजबूत बनाए रखने हेतु मुख्यतः चार व्यापारिक प्रथाऐं मौजूद थी जिनका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता था। वे प्रथाऐं इस प्रकार थी—

(क) **सुलजी—मुलजी प्रथाः**—दोनों ओर के व्यापारियों के मध्य मित्रता होने पर दोनों मित्र एक ही कटोरे से छंग (अनाज का मदिरा) या ज्या (नमकीन चाय) में सुल (सोना) और मुल (चाँदी) के टुकड़े डालकर एक—दूसरे का जूठा पीते थे और साथ ही भोटिया व्यापारी अपने मित्र को सफेद कपड़ा भेंट देता था।[21] यह प्रथा सुलजी—मुलजी प्रथा कहलती थी।

(ख) **सिगंच्याद/दुवाछयोक्त प्रथाः**— सिंग (लकड़ी) तथा च्याद (तोड़ना) या दुवा (पत्थर) तथा छयोक्त (तोड़ना) अर्थात किसी लकड़ी या पत्थर को दो भागों में तोड़ना और अपनी मित्रता के प्रमाण के तौर पर अपने पास रखने की प्रथा सिंगच्याद/दुवाछयोक्त कहलाता था। आपसी मित्रता पर अविश्वास होने की स्थिति में दोनों मित्र अपने टुकड़ों का मिलान कर अपनी मित्रता को प्रमाणित करते थे।[22]

(ग) **गमग्या प्रथाः**— इस प्रथानुसार भोटिया व तिब्बती मित्र मिलकर तिब्बती भाषा में एक करारनामा लिखते थे जिससे तिब्बत में 'डालिम डाठिम' कहा जाता था।[23] इस करारनामें में दोनों मित्रों का नाम, पत्ता एवं मित्रता के नियम लिखे जाते थे और जोंगफुन के हस्ताक्षर के पश्चात यह करारनामा पीढ़ी दर पीढ़ी तक चलता था। भोटिया व्यापारी को अधिकार था कि वह बीमारी या आर्थिक रूप से दुर्बल होने की स्थिति में अपने करारनामें को अन्य व्यापारी को बेच सकता था।[24]

(घ) **कुंडाखारः**— इस प्रथा के नियमानुसार दोनों व्यापारी किसी देवी या देवता की मूर्ति अपने सिर पर रखकर प्रतिज्ञा लेते थे कि वे व्यापार में एक—दूसरे के प्रति ईमानदार रहेंगे।[25]

भोटिया एवं तिब्बती व्यापारियों के मध्य प्रचलित इन व्यापारिक पद्धतियों व नियमों ने

आपसी व्यापारिक संबधों को मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया और यही प्रथाऐं भोटियों को तिब्बत के साथ व्यापार में एकाधिकार प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई। जिस प्रकार तिब्बत में व्यापार हेतु व्यापारिक प्रथाओं का महत्व था उसी प्रकार व्यापार हेतु उपयोग किए जाने वाले गिरिद्वार भी महत्वपूर्ण थे। विभिन्न घाटियों में रहने वाले भोटिया तिब्बत से व्यापार करने हेतु विभिन्न दर्रों का उपयोग कर तिब्बत की अलग–अलग व्यापारिक मंडियों में पहुँचकर आयात–निर्यात करते थे।

जौहारी भोटिया व्यापार करने हेतु ऊँटाधुरा दर्रे का प्रयोग करते थे। यह दर्रा मिलम गाँव से $30^0.35'.0''$उत्तरी अक्षाशं और $80^0.12'.20''$पूर्वी देशांतर में 17,800 फीट की ऊँचाई पर स्थित है।[26] व्यापार हेतु यह दर्रा केवल जून से अगस्त तक खुला रहता था। ऊँटाधुरा दर्रा पार कर व्यापारियों को आगे आने वाले जयंतीधुरा व किगंरी–बिगंरी दर्रे को एक दिन के अंतराल में पार करना पड़ता था क्योंकि इन दर्रों के बीच पशुओं के लिए चारागाह व शिविर लगाने हेतु उपयुक्त स्थानों का अभाव था।[27] जौहारी भोटिया मुख्यतः तिब्बत की ज्ञानिमा या खरेका मंड़ी में अपना व्यापार करते थे।[28] अस्कोट और तल्ला व मल्ला दरमा घाटी के भोटिया व्यापारी दारमा दर्रे का उपयोग कर तिब्बत तक पहुंचते थे। यह दर्रा जून, जुलाई और अगस्त माह में ही व्यापार के लिए खुला रहता।[29] दारमा घाटी के व्यापारियों की मुख्य मंड़ी छाकरा में स्थिति थी। लेकिन 20वीं शताब्दी में केवल मल्ला दारमा के लोगों को ही इस दर्रे से तिब्बत में व्यापार की अनुमति प्राप्त थी।[30]

ब्यांन के भोटिया व्यापारी लड़पया लेख एवं लिपुलेख दर्रों के माध्यम से तिब्बत पहुंचते थे। लड़पया लेख जून से सितम्बर तक 4 माह व्यापार के लिए खुला रहता जबकि लिपुलेख दर्रा दिसम्बर एवं जनवरी में व्यापार के लिए बंद रहता शेष वर्ष भर यह दर्रा व्यापार हेतु खुला रहता था। यह दर्रा व्यापारियों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले दर्रों में सबसे सरल था। इस दर्रे का प्रयोग कर ब्यान और चौदांसी भोटिया व्यापारी तकलाकोट और दारचान मंड़ी में व्यापार करते थे।[31] माणा दर्रा चमोली जिले में 18,650 फीट की ऊँचाई पर स्थित है और माणा घाटी में रहने वाले मारछा इस दर्रे का प्रयोग कर तिब्बत तक पहुंचते थे, वहीं नीति घाटी के तोल्छा होती और चोरहोती दर्रे से, उत्तरकाशी के निलंग घाटी में रहने वाले जाड़ व्यापारी रैठल, शांग चोकला और थांगला दर्रे से होकर तिब्बत से व्यापार करते थे। माणा, नीति एवं निलंग घाटी के सभी व्यापारी तिब्बत के ज्ञानिसी, शपरंग, थोलिगंमठ और गरतोक मंडियों में व्यापार करते है।[32]

तिब्बत के साथ चाय का व्यापारः–

भारत और तिब्बत के मध्य व्यापारिक संबध सदियों पुराने थे। तत्कालीन उपलब्ध स्त्रोतों और भोटिया व्यापारियों के निजी दस्तावेजों से इस व्यापार का विवरण मिलता है लेकिन व्यापार के पूर्ण आंकड़े प्राप्त नहीं होते है। 1815 ई. में अंग्रेजों द्वारा इस क्षेत्र को अपने साम्राज्य में शामिल करने के पश्चात भोटिया व्यापार से संबधित विस्तृत जानकारी मिलनी भुरू हुई। 1876.77 ई. में अंग्रेजों ने प्रथम बार भोटिया व्यापारियों द्वारा आयात.निर्यात की जानी वाली वस्तुओं के आंकडें रखने हेतु कई स्थानों पर व्यापारिक चौकियां जैसे. जौहारी भोटियों के लिए मिलम में, नीति दर्रे के लिए तपोवन में, ब्यांस व दारमा के लिए धारचूला में, माणा दर्रे के लिए पांडुकेश्वर

आदि स्थानों में स्थापित की गई।[33] इन चौकियों से प्राप्त आंकड़ों में 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण से चाय के आयात–निर्यात की विस्तृत जानकारी प्राप्त होने लगती है। लेकिन भोटिया व्यापारी अंग्रेजों के आगमन से पूर्व ही चाय से परिचित थे। इसका प्रमाण हमें विलियम मूरक्राफ्ट के यात्रा विवरण सहित कई अन्य यात्रा विवरणों में मिलता है। वर्ष 1812 ई. में विलियम मूरक्राफ्ट ने बिसेहर (हिमाचल प्रदेश) के भोटिया व्यापारियों द्वारा तिब्बत को ब्रिक टी का निर्यात किए जाने की जानकारी दी थी। वहीं 1867 में पड़ित नैन सिहं रावत ने अपनी ल्हासा की यात्रा विवरण में चपरांग जोपंन और बद्रीनाथ मंदिर के बीच होने वाले आदान–प्रदान में चाय का जिक्र किया था। जोपंन द्वारा 4 पोटलियों में भरकर चाह (चाय) मंदिर को प्रतिवर्ष भेंट की जाती थी।[34] इसी प्रकार जौहार के व्यापारियों के मुखिया को व्यापार के अंत में जोपंन से 8 रूपये की दर से 7 दम/डूमास चाय खरीदना होता था और बम्पाओं (गैर भोटिया व्यापारी) को प्रति परिवार एक दम चाय खरीदना अनिवार्य था।[35] इस प्रकार यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि तिब्बत की सीमा से लगे हुए क्षेत्रों के निवासी अंग्रेजों द्वारा भारत में चाय की खोज करने से पूर्व ही चाय से परिचित थे और तिब्बत से निकटता व व्यापारिक संबधों के चलते उनमें तिब्बत की भांति चाय पीने का प्रचलन था। लेकिन उत्तराखण्ड के भोटिया व्यापारियों व तिब्बत के मध्य चाय का व्यापार 1850 के दशक से शुरू हुआ। 9 अगस्त 1847 ई. में अल्मोड़ा में नीलामी में बेची गई चाय का 50ः भोटिया व्यापारियों ने 2 से 2 रूपये 4 आना में खरीदी थी[36] और वे इस चाय को तिब्बत में निर्यात के उद्देश्य से खरीद रहे थे। यह चाय कुमाऊँ संभाग के चाय बागानों में उगाई गई थी।

तिब्बत में चाय के व्यापार के लिए धारचूला, मिलम और झूलाघाट स्थित व्यापारिक चौकियों का प्रयोग किया जाता था। वर्ष 1899–1900 में उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त से तिब्बत में 32 मण (1,194कि.ग्रा.) और 1901 में 42 मण (1,568कि.ग्रा.) चाय का निर्यात हुआ।[37] यह निर्यात मुख्यतः भोटिया व्यापारियों द्वारा किया गया था। वर्ष 1911–12 में जहां मिलम चौकी से 6 मण (223.9कि.ग्रा.) और धारचूला चौकी से 100 मन (3,732कि.ग्रा.) चाय का निर्यात किया गया, वही वर्ष 1912–13 में मिलम से 42 मण (1,568कि.ग्रा.) और धारचूला चौकी से 28 मण (1,045कि.ग्रा.) चाय का निर्यात किया गया। वर्ष 1920–21 में मिलम से 11 मण (410.6 कि. ग्रा.) और धारचूला मार्ग से 99 मण (3,695कि.ग्रा.) चाय का निर्यात हुआ था।[38] लेकिन 1921 ई. तक आते–आते मिलम चौकी से होने वाले चाय के व्यापार में तेजी से गिरावट देखी गई इसके विपरीत धारचूला चौकी से होने वाले व्यापार में लगातार वृद्धि दर्ज की गई। मिलम चौकी से होने वाले व्यापार में गिरावट का कारण हमें सहायक कमीश्नर अल्मोड़ा द्वारा लिखे गए पत्र से ज्ञात होता है कि मिलम मार्ग क्षतिग्रस्त अवस्था में था लेकिन लोक निर्माण विभाग द्वारा समय पर इस मार्ग की मरम्मत नहीं की गई जबकि धारचूला मार्ग की स्थिति अच्छी थी और यहां पर दारमा एवं जौहारी भोटियों के मध्य व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा बहुत अधिक रहती थी। इस कारण भी यहां पर व्यापार में वृद्धि देखी गई।[39] झूलाघाट चौकी से चाय का व्यापार नाममात्र के लिए होता था, वर्ष 1919–20 में यहां से केवल 3 मण (112कि.ग्रा.) चाय का निर्यात किया गया।[40]

ब्रिटिश सरकार ने 1836 ई. में असम के साथ ही कुमाऊँ में भी चाय बागान लगाए थे और 19वीं शताब्दी के अंत तक सभी चाय बागान चाय का उत्पादन करने लगे थे। भोटिया व्यापारी निर्यात हेतु चाय कुमाऊँ के इन्हीं चाय बागानों से खरीदा करते थे। 1913 ई. में लाल

सिंह पाटिल नामक व्यापारी ने देवलधार टी एस्टेट से 671 पौण्ड (304.36कि.ग्रा.) कम गुणवत्तापूर्ण ग्रीन टी और 149 पौण्ड (67.58कि.ग्रा.) ब्लैक टी खरीदी थी। इसी वर्ष जौहारी भोटिया विजय सिंह पांगती ने इस एस्टेट से 1680 पौण्ड (762कि.ग्रा.) उच्च गुणवत्ता वाली ग्रीन टी खरीदी और तिब्बत को निर्यात किया। भोटिया व्यापारी सर्वाधिक ब्रिक टी बेरीनाग चाय बागान से खरीदते थे। व्यापारी स्वयं आकार 4 आना 6 पैसा प्रति पौण्ड की दर से चाय खरीदते और तिब्बत में 8 से 10 आना प्रति पौण्ड की दर से बेचते थे।[41] यद्यपि यह चाय चीन की ब्रिक टी की तुलना में आधा दाम पर बेची जाती थी क्योंकि यह गुणवत्ता में चीनी चाय से कम थी लेकिन तिब्बत के साधारण लोगों में इस चाय की मांग बहुत अधिक थी।

ट्रेड एजेंट गरतोक ने सुझाव दिया था कि तिब्बती धनी वर्ग के लोगों की मांग के अनुसार अच्छी ब्रिक टी के निर्माण को सरकार प्रोत्साहन प्रदान करे और भोटिया व्यापारियों को अधिकाधिक चाय खरीदने और निर्यात हेतु प्रोत्साहित किए जाए ताकि तिब्बत में चाय के व्यापार में तेजी से वृद्धि की जा सके।[42] लेकिन 20वीं शताब्दी के शुरूआती दशक में ही उत्तराखण्ड के चाय बागानों की उत्पादन क्षमता बुरी तरह से प्रभावित हुई थी और सरकार द्वारा चाय बागानों को बचाने हेतु विशेष प्रयास नहीं किए गए। भोटिया व्यापारी केवल तिब्बत को चाय का निर्यात ही नहीं बल्कि आयात भी करते थे। 1910 ई. में ज्ञानिमा मंडी से व्यापारियों ने 50 दम चाय 5 रूपये प्रति दम की दर से आयात किया था।[43] लेकिन आयात की जाने वाली चाय की मात्रा निर्यात की जाने वाली चाय से कम थी।

निष्कर्षः–

भोटिया जनजाति एवं तिब्बत के मध्य होने वाले ट्रांसहिमालय व्यापार उत्तराखण्ड के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हिमालय की तलहटी में निवास करने वाली यह जनजाति आर्थिक रूप से उत्तराखण्ड की सबसे समृद्ध समुदायों में से एक मानी जाती थी जो अति दुर्गम स्थानों पर निवास करती थी और यह समुदाय हिमालय के अति कठिन दर्रों से होने वाले व्यापार पर प्राचीन काल से 1962 ई. तक अपना एकाधिकार बनाए रखने में सफल रही। भोटिया व्यापारी न केवल तिब्बत में खाद्यानों की पूर्ति करते थे बल्कि भारत की ऊन, नमक सुहागा जैसी कई अन्य जरूरतों को भी पूरा करते थे। लेकिन आंकड़े स्पष्ट करते है कि भोटिया व्यापारी तिब्बत में चाय के व्यापार पर एकाधिकार नहीं कर सके क्योंकि उनके द्वारा निर्यात की जाने वाली चाय चीन से आने वाली चाय को चुनौती नहीं दे सकी। यद्यपि यह भोटिया व्यापारियों की असफलता नहीं थी बल्कि इसे ब्रिटिश सरकार की असफलता कहना उचित होगा। 20वीं शताब्दी में चाय उद्योग भारत में पूर्णतः सफल हो चुका था परन्तु कुमाऊँ संभाग के प्रशासनिक अधिकारी चाय के उत्पादन व निर्यात हेतु अधिक गंभीर नहीं थे। वर्ष 1880 के पश्चात उत्तराखण्ड में लगाए गए चाय बागानों के उत्पादन में तेजी से गिरावट आई क्योंकि मध्य एशिया के साथ व्यापार करना कठिन हो गया था। इसके पश्चात भी अधिकारियों ने बागानों को उनके हाल पर छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों द्वारा तिब्बत पर किए गए आक्रमण ने भी तिब्बती प्रशासन एवं व्यापारियों के मन में घृणा पैदा की जिसके कारण भोटिया व्यापारियों को नुकासान उठाना पड़ा। अंग्रेजों व्यापारियों ने व्यापारिक मार्ग की कठिनाईयों के चलते कभी भी स्वयं तिब्बत के साथ व्यापार करने की दिशा में प्रयास नहीं किया जिसका परिणाम यह हुआ कि

व्यापार पूर्णतः भोटिया व्यापारियों पर ही निर्भर रहा और अंग्रेजों द्वारा बलपूर्वक थोपी गई व्यापारिक संधि का परिणाम नकारात्मक साबित हुआ। समय बीतने के साथ निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में बहुत अधिक गिरावट दर्ज की गई जिसमें चाय भी शामिल थी।

❒

सन्दर्भ –

1. *जोशी, अवनीन्द्र कुमार (1983), भोटान्तिक जनजाति, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ. 01*
2. *http://documents.worldbank.org/SFG1891Revised.*
3- *http://documents.worldbank.org/ SFG1891Revised.*
4. *शर्मा, निर्मेश (2020), फेस्ड बाई द भोटिया फॉर देयर लिवलीहुड एण्ड प्रिजर्वेशन ऑफ कल्चर, इंटरनेशनल जॅर्नल ऑफ सोशियोलॉजी एण्ड एंथ्रोपोलॉजी, पृ. 51*
5. *एटकिंसन, एडविन टी (1886), हिमालयन गजेटियर, खण्ड तीन, भाग एक, कॉस्मो प्रकाशन, नई दिल्ली 1973, पृ.83*
6. *शेरिंग, चार्ल्स (1906), वैस्टर्न तिब्बत एण्ड द ब्रिटिश बार्डरलैण्ड, लंदन, पृ. 69*
7. *वही, पृ. 76*
8. *वही, पृ. 63*
9. *जोशी, अवनीन्द्र, पूर्वोक्त पृ. 02*
10. *रतूड़ी, हरिकृष्ण (2020), गढ़वाल का इतिहास, तृतीय संस्करण, भागीरथी प्रकाशन, नई टिहरी उत्तराखण्ड, पृ.50–52*
11. *जोशी, अवनीन्द्र, पूर्वोक्त पृ. 79*
12. *मित्तल, ए.के. (1986), ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेशन इन कुमाऊँ हिमालय, मित्तल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 211*
13. *पाण्डे, बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास, पृ. 284*
14. *मित्तल, ए.के., पूर्वोक्त पृ. 211*
15. *भट्ट, उमा, शेखर पाठक (2006), एशिया की पीठ पर पण्डित नैनसिंह रावत, जीवन अन्वेषण तथा लेखन, नैनीताल पहाड़, पृ. 113*
16. *जोशी, अवनीन्द्र, पूर्वोक्त पृ. 80*
17. *रतूड़ी, हरिकृष्ण, पूर्वोक्त पृ. 53*
18. *जोशी, एम.पी., ब्राउन, फेंगर (1992), हिमालयन पास्ट एण्ड प्रजेंट, खण्ड दो, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, पृ.51*
19. *सिंह, बच्चन (2013), नीति घाटी की मारछा एवं तोल्छा जनजाति की परम्परा तथा परिवर्तन के परिपेक्ष्य में ऐतिहासिक तथा मानवशास्त्रीय अध्ययन, अ.प्र.शो.ग्र.हे.न.ब.ग.बि., उत्तराखण्ड, पृ. 83।*
20. *वही, पृ. 85*
21. *पांगती, एस.एस. (1992), मध्य हिमालय के भोटिया जनजाति, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 50*
22. *डबराल, शिव प्रसाद (1961), उत्तराखण्ड के भोटान्तिक, दुगड्डा प्रकाशन, पौड़ी गढ़वाल, पृ. 104*
23. *वही, पृ. 104*
24. *मित्तल, ए.के., पूर्वोक्त पृ. 216*
25. *वही, पृ. 216*
26. *एटकिंसन, एडविन टी. (1886), हिमालयन डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, खण्ड 3, भाग 2, कॉस्मो प्रकाशन नई दिल्ली 1981, पृ. 698*
27. *वॉल्टन, एच.टी. (1911), द गजेटियर ऑफ अल्मोड़ा, नटराज प्रकाशन, देहरादून 2016, पृ. 65*
28. *जोशी, अवनीन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 84*
29. *वॉल्टन, एच.टी., पूर्वोक्त, पृ. 65*
30. *वही, पृ. 65*
31. *वही, पृ. 65*
32. *रतूड़ी, हरिकृष्ण, पूर्वोक्त, पृ. 50–52*
33. *एटकिंसन, एडविन टी., हिमालयन डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, खण्ड 3 भाग 1, पृ. 135*
34. *भट्ट, उमा, शेखर पाठक, पूर्वोक्त, पृ. 297*
35. *वॉल्टन, एच.टी. (1910), द गजेटियर ऑफ गढ़वाल हिमालय, नटराज प्रकाशन, देहरादून 2016, पृ. 42*

36. रॉयले, जे. फोर्ब्स (1950), रिपोर्ट ऑन द प्रोग्रेस ऑफ द कल्चर ऑफ द चाइना टी प्लांट इन द हिमालय फ्रॉम 1835 टू 1847,द जॅर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन,खण्ड 12,पृ. 148–152
37. एनुअल रिर्पोट ऑफ द फॉरेन ट्रेड ऑफ द यूनाइटेड प्रोविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध फॉर द ईयर 1902, अल्मोड़ा रिकार्डस्, बॉक्स न. 17, क्षेत्रीय अभिलेखागार नैनीताल
38. टी ट्रेड विद् तिब्बत, अल्मोड़ा रिकार्डस्, बॉक्स न. 17, क्षेत्रीय अभिलेखागार नैनीताल।
39. लेटर डेटड, 19 अप्रैल 1921, फ्रॉम डब्ल्यू सी. डिबल डिप्टी कमीश्नर अल्मोड़ा टू द डिप्टी डारेक्टर ऑफ द लैण्ड रिकॉर्ड, यूनाइटेड प्रोविन्स, वहीं अल्मोड़ा रिकोर्डस्
40. एनुअल रिर्पोट ऑफ द फॉरेन ट्रेड, पूर्वोक्त
41. लेटर डेटड 6 मई 1914, फ्रॉम मैनेजर देवलधार टी एण्ड फ्रूट गार्डन टू डिप्टी कमीश्नर अल्मोड़ा, पूर्वोक्त अल्मोड़ा रिकार्डस्
42. लेटर डेटड 4 नवम्बर 1913, फ्रॉम द ब्रिटिश ट्रेड एजेंट गरतोक टू डिप्टी कमीश्नर अल्मोड़ा, वही, अल्मोड़ा रिकार्डस्।
43. मित्तल, ए.के, पूर्वोक्त, पृ. 221

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 54–63

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

पाकिस्तान में जातीयता की राजनीति

डॉ. सुरेन्द्र सिंह
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, श्री राधेश्याम आर मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुंझुनू
डॉ. ममता डांगी
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, महारानी गर्ल्स कॉलेज, महेन्द्रा सेज, जयपुर
E-mail : Nyolasurendra@gmail.com

सारांश

पिछले कुछ दशकों में जातीयता एवं राष्ट्र निर्माण की समस्या ने विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। इस सम्बन्ध में दक्षिण एशियाई क्षेत्र जो कि बहुजातीय समाजों का समूह है एक चुनौतीपूर्ण अध्ययन क्षेत्र है। दक्षिण एशियाई राष्ट्र अलग–अलग कारणों से जातीय झगड़ों तथा जातीय संघर्षों का सामना कर रहे हैं जो आन्दोलन स्वायत्तता की मांग को लेकर शुरू किये गये थे वे अब पृथकता की मांग करने लगे हैं। आत्मनिर्णय के आधार पर वे अब राष्ट्र के रूप में मान्यता चाहते हैं। कुछ बागी समूहों ने केन्द्र के खिलाफ दीर्घकालिक गौरिल्ला युद्ध की नीति भी अपना रखी है। इस प्रकार दक्षिण एशिया अप्रकट, प्रकट एवं विस्फोटक जातीयता का बहुमूर्तिदर्शी बन गया है।

मुख्य शब्दः– पूर्वी पाकिस्तान, मोहाजिर, अकबर बुगति, अब्दुज गफार खान, ग्वादरद्वीप।

परिचय

हेरोल्ड आर. इसाक के द्वारा लगभग पचास वर्ष पूर्व बताया गया था कि वैश्वीकरण के युग में विश्व प्रोद्यौगिकी, पूंजीवाद, बाजारवाद तथा संचार के आधार पर अपकेन्द्रीय प्रक्रिया से गुजरेगा।[1] इसाक की यह धरणा सत्य सिद्ध हुई तथा वर्तमान समय में यह अपकेन्द्रीय प्रक्रिया और तीव्र हुई है। जातीय तथा सम्प्रदायवादी संघर्ष न केवल पूर्व सोवियत गणराज्य तथा पूर्वी यूरोप बल्कि त तीय विश्व के भी अनेक राष्ट्रों को प्रभावित कर रहा है। पाकिस्तान अपने इतिहास के सबसे गंभीर जातीय एवं सम्प्रदायवाद के संकट से गुजर रहा है। पंजाब तथा सिन्ध में जातीय आधार पर ध्रुवीकरण हो चुका है और बलूचिस्तान तथा सरहदी प्रान्तों में इतने वर्षों पुरानी जातीय भ्रातृत्व की भावना को नष्ट कर दिया है।

सैद्धान्तिक अवधारणा

नागरिक समाज में बहु–जातीयता एक सामाजिक, राजनीतिक अवधारणा है तथा इक्कीसवीं सदी में अन्तर जातीय मतभेद, स्पर्धा एवं संघर्ष निरन्तर तीव्रता के साथ बढ़ रहे हैं। जातीय एकजुटता ने अनेक विकसित तथा विकासशील देशों को चुनौती प्रदान की है।[2] जातीय एकजुटता की रचना अत्यधिक जटिल है। जातीय एकजुटता के आधार पर भेदभाव का विरोध किया जाता हैं। अधिक स्वायत्तता की मांग की जाती है एवं अन्तिम लक्ष्य के रूप में पृथकता के लिए संघर्ष किया जाता है। पहली तथा दूसरी प्रकार की मांग का समाधान बातचीत, विचार–विमर्श एवं सौदेबाजी के द्वारा किया जा सकता है, लेकिन पृथकता की मांग पर कोई बातचीत नहीं की जा सकती, क्योंकि यह राष्ट्र की क्षेत्रीय एकता को नष्ट करने वाली मांग है। स्वायत्तता एवं पृथकता की मांग आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को अपना मार्गदर्शक साध्य मानती है।[3] जहाँ स्वायत्ततावादी अपना आधार जातीयता को बनाते हैं वहीं पृथकतावादी, जातीय एकरूपता के आधार पर राष्ट्रवाद की भावना पैदा करते हैं।

जातीय समूह एवं जातीयता

जातीय शब्द ग्रीक शब्द एथनीकोज से लिया गया है, जिसका तात्पर्य है –

(1) वे राष्ट्र जो ईसायत में परिवर्तित नहीं हुए हैं।

(2) समान नस्ल अथवा समान विशेषता एवं प्रथा वाले लोगों का बड़ा समूह।

(3) विदेशज आदिम संस्कृति वाले समूह।[4]

जातीयता एक अवधारणा के रूप में ग्रीक शब्द एथनोज से लिया गया है, जिसका अर्थ राष्ट्र, जनता, जाति, जनजाति आदि है।[5] अतः जातीयता का तात्पर्य एक समूह की जातीय विशेषता एवं सम्बद्धता से है। एक जातीय समूह के सदस्य किन्हीं समान मनोवैज्ञानिक–सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर दूसरे जातीय समूह से अन्तर स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार नस्ल, जनजाति, जाति, वर्ग, भाषा, बोली, धर्म, सम्प्रदाय, प्रादेशिकता, राष्ट्रीयता, अभिजन वर्ग की अवस्था, तकनीकी सांस्कृतिक कुशलता, आदि के अकेले अथवा सम्मिश्रण के आधार पर जातीयता को अभिव्यक्त किया जा सकता है।[6]

मुख्यतः चार उपागमों के आधार पर जातीयता का अध्ययन किया जा सकता है :

(1) आदिकालीन

(2) सांस्कृतिक–बहुलवादी

(3) आधुनिकीकरण और विकासवादी,

(4) मार्क्सवादी तथा नव मार्क्सवादी

(अ) आदिकालीन उपागम

आदिकालीन उपागम में संस्कृति को प्रमुख आधार बनाया जाता है। इसके अन्तर्गत जातीय पहचान पसन्द नहीं की जाती बल्कि थोपी जाती है। आदिकालीन उपागम के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति जीवनभर जन्म स्थान, वंश, सम्बन्ध, धर्म, भाषा तथा सामाजिक मान्यताओं के प्रति मोह रखता है। यह उसके लिए प्राकृतिक तथा आत्मिक है एवं वैसी ही पृष्ठभूमि वाले लोगों

के लिए आपस में लगाव का आधार है।[7] आदिकालीन भावनाएँ समय के साथ बदलती रहती हैं तथा सौहार्दपूर्ण अन्तरजातीय सम्बन्धों को प्रभावित करती रहती है। आदिकालीन सम्बन्धों का आधार विशिष्टता होने के कारण उन्हें राष्ट्रीय एकता में सम्भावित बाधा के रूप में देखा जाता है।

(ब) सांस्कृतिक बहुलवादी उपागम

सांस्कृतिक बहुलवादी उपागम को जे.एस. फर्नीवाल के द्वारा विकसित किया गया तथा इसमें एम.जी. स्मिथ के द्वारा संशोधन किया गया। यह आदिमकालीन उपागम से विकसित अवस्था है। यह न केवल एक समूह की जातीय विशिष्टता बल्कि जातीय समूहों के अन्दर प्रभावशाली एवं अधीनस्थ के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों पर भी बल देता है। समूहों के मध्य जितना अधिक सांस्कृतिक अन्तर होगा उतना ही अधिक संघर्ष होगा। फर्नीवाल के बहुल समाज के तत्वों में सांस्कृतिक भिन्नता, अन्तर सांस्कृतिक लगाव एवं आर्थिक सम्बन्धों पर नियन्त्रण, समान मूल्यों में कमी तथा समान इच्छा का अभाव शामिल है। स्मिथ के अनुसार सांस्कृतिक बहुलवाद का आधार परस्पर विरोधी संस्थागत व्यवस्थाओं के विभिन्न समूहों का एकल समाज में सह अस्तित्व है। स्मिथ का मानना है कि बहुल समाज संघर्ष से परिपूर्ण है क्योंकि इसका आधार प्रभावशाली समूह का अस्तित्व तथा सर्वसम्मति का अभाव होता है।[8]

(स) आधुनिकीकरण और विकासवादी उपागम

यह माना जाता है कि जातीय संघर्ष आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है। कार्ल डब्ल्यू. डायच ने सर्वप्रथम यह विचार दिया कि सामाजिक एकजुटता का सम्बन्ध जातीय संघर्ष से है। उनके अनुसार सामाजिक एकजुटता एक सम्पूर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया है जो उन देशों की जनसंख्या के महत्त्वपूर्ण भाग के साथ घटित होती है जिनका जीवन स्तर परम्परागत से आधुनिक की ओर बढ़ रहा है। डायस के अनुसार एक जाति या राष्ट्र को व्यक्तियों के मध्य संचार की सापेक्ष कुशलता के आधर पर परिभाषित किया जा सकता है।[9]

आधुनिकीकरण उपागम के विद्वानों का मानना है कि आधुनिकीकरण का लाभ समाज के जातीय समूहों को समान रूप से नहीं मिल रहा है तथा असमानता के कारण जातीय समूहों में प्रतिरोध की भावना पैदा हो रही है। आधुनिकीकरण उपागम जातीयता के सम्बन्ध में कुछ सवालों के उत्तर नहीं बताता जैसे पूर्व आधुनिक काल में जातीय संघर्ष का स्वरूप कैसा था? तथा इस प्रश्न का उत्तर भी नहीं देता कि अभिजन वर्ग के द्वारा जातीय एकजुटता के आह्वान पर गैर अभिजन वर्ग क्यों तुरन्त एकजुट हो जाता है।

मार्क्सवादी तथा नव मार्क्सवादी उपागम

यह उपागम जातीय संघर्ष को निम्न आधारों पर प्रकट करता है :–

1. सामान्यतः जातीयता को वर्गहितों की चेतना को घटाने वाले उपाय के रूप में देखा गया तथा राजनीतिक नेतृत्व एवं निहित स्वार्थ द्वारा चालाकीपूर्वक काम में लिया गया।
2. ऐसी स्थिति जहाँ सांस्कृतिक आधार पर श्रम विभाजन हो तथा राज्य में एक जातीय समूह के सदस्यों को अधीनस्थ स्थिति में रखा जाए। (आन्तरिक उपनिवेशवाद)[10]

मार्क्सवादियो के अनुसार जातीय आधार पर एकजुटता, झूठी चेतना का आह्वान है। अरनेस्ट गेलनर के अनुसार प्रमुख रूप में आर्थिक कारण ही राष्ट्रवाद का आधार हैं।[11] बैन्डिक्ट एन्डरसन के अनुसार राष्ट्रवाद का आधार मनोवैज्ञानिक आग्रह है।[12] नवमार्क्सवादियों के अनुसार जातीयता कमोबेश एक विचारधारा या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है। जातीयता एक राजनीतिक प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध उत्पादन के साधनों से है।[13]

मार्क्सवादी राष्ट्रों को दो भागों में विभाजित करते हैं– शोषित राष्ट्रीयताएँ तथा शोषक राष्ट्रीयताएँ। इसे आधार मानकर पाकिस्तान को भी शोषक एवं शोषित में बांटा जा सकता है जहाँ पंजाबी शोषक हैं वहीं सिन्धी, बलूच तथा पश्तून शोषित हैं।

पाकिस्तान में जातीयता की समस्या

पाकिस्तान में जातीयता की समस्या पर विचार करते हुए तारिक अली,[14] सेलिग हैरिसन,[15] इनआयातुल्लाह बलूच[16] तथा लारेन्स जायरिंग[17] ने पाकिस्तान के सम्भावित विघटन की भविष्यवाणी की है। हमजा अलवी का मानना है कि पाकिस्तान का संकट यह है कि यहाँ अन्य उत्तर–उपनिवेशी देशों द्वारा अपनाई गई देश से पहले राष्ट्र निर्माण की सामान्य प्रक्रिया को उलटा कर दिया गया है।[18] अनवर सईद[19] तथा अकबर अहमद[20] के अनुसार जातीयता समाज में ही निहित है। वहीं ताहीर अमीन[21] व मुमताज़ अहमद[22] का मानना है कि इसका अध्ययन पाकिस्तानी राज्य के स्वरूप, धर्म तथा विदेशी हस्तक्षेप के आधार पर किया जाना चाहिए।

बंगाली जातीय एवं भाषायी आन्दोलन

पाकिस्तान निर्माण के एक वर्ष पश्चात् इसकी केन्द्रीय सरकार को 1948 में बंगाली भाषा आन्दोलन के आधार पर बंगाली जातीय समूह द्वारा चुनौती दी गई। पाकिस्तान के निर्माण के बाद उर्दू भाषा तथा इस्लामिक संस्कृति के आधार पर पाकिस्तानी राष्ट्र का गठन किया गया। पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली भाषाइयों का बहुमत था तथा वे किसी भी कीमत पर अपनी बंगाली पहचान को समाप्त नहीं करना चाहते थे। पश्चिमी पाकिस्तान का पंजाबी मोहाजिर अभिजात्य शासक वर्ग सेना की सहायता से बंगाली संस्कृति की उपेक्षा करने लगा। यहाँ तक कि पाकिस्तान रेडियो पर गुरू रविन्द्रनाथ टैगोर के गीतों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, जिसका बंगालियों ने विरोध किया।

बंगाली भाषा तथा संस्कृति की उपेक्षा के साथ–साथ पूर्वी पाकिस्तान का पश्चिमी पाकिस्तान के द्वारा आर्थिक रूप से भी शोषण किया जाने लगा। सन् 1966 में शेख मुजीब के नेतृत्व में अवामी लीग के द्वारा बंगालियों की क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग को लेकर आन्दोलन किया गया। पाकिस्तान में 1970 के आम चुनाव में शेख मुजीब की अवामी लीग को 300 में से 160 सीटों के साथ पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। ज़ुल्फीकार अली भुट्टो की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी को 81 सीटें प्राप्त हुई। शेख मुजीब की इस जीत को पश्चिमी पाकिस्तान के अभिजात्य शासक वर्ग ने स्वीकार नहीं किया। जेड. ए. भुट्टो ने सैनिक शासक जनरल याह्य खाँ के साथ मिलकर सेना की सहायता से पूर्वी पाकिस्तान में बंगालियो का दमन करना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप, बंगालियो की स्वायत्तता की मांग, पृथक राष्ट्र की मांग में परिवर्तित हो गई तथा अन्ततः भारत की सहायता से 16 दिसम्बर 1971 को स्वतन्त्र 'बांग्लादेश' का निर्माण हुआ।

इस प्रकार जब हम पाकिस्तान की 1947–71 तक के काल की राजनीति को देखते हैं तो पाते हैं कि पूर्वी पाकिस्तान तथा पश्चिमी पाकिस्तान के मध्य संरक्षक व आश्रित का सम्बन्ध रहा। पूर्वी पाकिस्तान थोपी गई धर्म आधरित राष्ट्रीय पहचान के स्थान पर अपनी उप–राष्ट्रीय तथा पृथक जातीय–सांस्कृतिक पहचान पर बल देता रहा। 1970 के आम चुनाव ने यह भी सिद्ध कर दिया कि पाकिस्तान में किसी भी राजनीतिक दल को राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रियता प्राप्त नहीं थी।

सिन्धी जातीय आन्दोलन

अवशिष्ट पाकिस्तान में सिन्ध प्रान्त की स्थिति भी पूर्वी पाकिस्तान के समान है। बांग्लादेशी नेता शेख मुजीब के पद चिन्हों पर चलते हुए सिन्ध के राष्ट्रवादी नेता जी. एम. सैयद[23] भी जीवनभर स्वतन्त्र **'सिन्धु देश'** की स्थापना की वकालत करते रहे। पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली भाषा की तरह ही सिन्ध प्रांत में भी सिन्धी भाषा सरकारी स्कूलों में अध्ययन का माध्यम होने के साथ–साथ न्यायपालिका और प्रशासन की भाषा रही है। सिन्धी भाषी 'धरतीपुत्र' पाकिस्तान के अभिजात्य शासक वर्ग द्वारा उर्दू भाषा को प्रधानता देने का कड़ा विरोध करते रहे हैं। सिन्धियों के द्वारा उर्दू भाषा का इस आधार पर भी विरोध किया जाता रहा कि यह मोहाजिरों की मातृभाषा है, जो स्वतन्त्रता के समय भारत से पाकिस्तान आये थे। मोहाजिर सिन्ध प्रान्त के शहरों में बहुसंख्यक हैं। सन् 1970 में जब सिन्ध विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा सिन्धी भाषा को अनिवार्य कर दिया गया तब मोहाजिरों ने इसका विरोध किया तथा सिन्ध के शहरी क्षेत्रों में दंगे भड़क गए। सन् 1984 में मोहाजिरो के द्वारा मोहाजिर कौमी मूवमेन्ट (एम.क्यू.एम.) की स्थापना अलताफ हुसैन के नेतृत्व में की गई। अब सिन्ध में जातीय आधार पर सिन्धी तथा मोहाजिर दोनों समूह शासन में अपनी पृथक पहचान के आधार पर हिस्सेदारी की मांग करने लगे।

इस प्रकार सिन्ध प्रान्त आज भी जातीय आधार पर विभाजित है। सिन्धी तथा मोहाजिरों के जातीय विभाजन के कारण गैर सिन्धी–गैर मोहाजिर, पंजाबी एवं पश्तून समूह को फायदा हो रहा है। एमक्यूएम ने पृथक मोहाजिर संस्कृति तथा उर्दू भाषा के आधार पर पांचवी राष्ट्रीयता की मांग करनी शुरू कर दी है। अब सवाल यह है कि सिन्ध प्रान्त पर शासन कौन करेगा सिन्धी या मौहाजिर? यह सवाल सिन्ध को द्वेषपूर्ण गृहयुद्ध का सम्भावित रणक्षेत्र बनाता है।[24]

बलूची जातीय आन्दोलन

बलूचितस्तान एक बहु–संस्कृति एवं बहु–भाषायी प्रान्त है। पाकिस्तान में बलूची राष्ट्रवाद सबसे गम्भीर है तथा पाकिस्तान निर्माण के 75 वर्षों के दौरान अब तक यहाँ चार बार वर्ष 1948, 1958, 1963–68, 1973–77 में विद्रोह हो चुका है तथा पांचवा विद्रोह सीमित मात्रा में वर्ष 2005 से जारी है। बलूचितस्तान पाकिस्तान का सबसे कम विकसित प्रान्त है, लेकिन यहाँ तेल, गैस, कोयला तथा खनिज संसाधन भरपूर हैं। पाकिस्तान की केन्द्रीय सरकार द्वारा लगातार की जा रही उपेक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों के शोषण ने बलूच अलगाववाद को जन्म दिया। वर्ष 1970 में एक इकाई योजना की समाप्ति के बाद बलूचिस्तान को प्रान्त का दर्जा प्राप्त हुआ। बलूचिस्तान में स्वायत्तता की मांग को लेकर अनेक विद्रोह हुए जिसमें गौस बक्श बिज़ेन्जो,

अताउल्लाह मेंगल तथा खैर बक्श मारी जैसे बलूची नेताओं ने पंजाबी शासक वर्ग को चुनौती प्रदान की।[25] वर्ष 1990 का दशक पाकिस्तान में प्रजातन्त्र की स्थापना का रहा तथा वर्ष 1989 में नवाब अकबर बुगति बलूचितस्तान के मुख्यमंत्री बने। मुशर्रफ के सैनिक शासन में जातीय महत्त्वाकांक्षाओं को दबाने की नीति अपनाई गई तथा 26 अगस्त 2006 को नवाब बुगति सेना की कार्यवाही में मारे गये।

बलूचिस्तान में चीन की सहायता से बन रहा ग्वादरद्वीप समुद्री बन्दरगाह का भी स्थानीय निवासियों के द्वारा विरोध किया जा रहा है, क्योंकि उनका मानना है कि इस बन्दरगाह का लाभ अन्य प्रान्तों को ही प्राप्त होगा। बलूचिस्तान में लगभग दस लाख अफगान शरणार्थी हैं, जिससे बलूचियों को स्वयं के प्रान्त में ही जातीय हाशिये पर जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। बलूची अपनी बलूच तथा ब्रोही भाषा की पहचान बनाये रखना चाहते हैं। साथ ही साथ वंश परम्परा के आधार पर बलूची राष्ट्रवाद की स्थापना भी करना चाहते हैं। इस प्रकार बलूचिस्तान शक्तिशाली केन्द्र तथा पिछड़े प्रान्त का उदाहरण प्रस्तुत करता है एवं केन्द्र के द्वारा बलूच राष्ट्रीयता तथा जातीय चेतना का दमनचक्र जारी है।

खैबर पख्तूनख्वा में जातीय आन्दोलन

उत्तर पश्चिमी खैबर पख्तूनख्वा अफगानिस्तान की सीमा से सटा हुआ प्रान्त है। पाकिस्तान के निर्माण के समय सीमान्त प्रान्त के नेता खान अब्दुल गफार खान के द्वारा स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान राष्ट्र की मांग की गई।[26] पश्तून राष्ट्रवादियों को यह भय था कि पाकिस्तान में पंजाबियों का प्रभुत्व रहेगा तथा अफगानिस्तान में शामिल होने से उन्हें पश्तून राष्ट्रवाद की मांग छोड़नी होगी। सभी मांगों को दरकिनार कर ब्रिटिश राज ने खैबर पख्तूनख्वा हो पाकिस्तान का अंग बना दिया। बदले हुए परिदृश्य में पश्तून नेता अब्दुल गफार खान तथा उनके पुत्र वली खान ने पृथक पख्तुनिस्तान की मांग को अब पाकिस्तानी राष्ट्र में ही प्रान्तीय स्वायत्तता की मांग में परिवर्तित कर दिया था। लेकिन जब सन् 1975 में अब्दुल गफार खान से एक पंजाबी पत्रकार ने पूछा कि वे पहले एक मुसलमान हैं, या पाकिस्तानी हैं, या पश्तून हैं तब उनका जवाब था कि वे 6 हजार वर्ष पुराने पश्तून हैं, एक हजार साल पुराने मुसलमान है तथा 27 वर्ष पुराने पाकिस्तानी हैं।[27]

पख्तूनिस्तान की मांग को शहरी मध्यम तथा निम्न मध्यम वर्ग का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों के पश्तून सैनिक पाकिस्तानी सेना में बहुसंख्यक हैं तथा अनेक पश्तून जनरल सेना से सेवानिवृत हो चुके हैं। इसके अलावा खैबर पख्तूनख्वा की अर्थव्यवस्था पंजाब प्रान्त के साथ घनिष्ठता से जुड़ी हुई है, कराची पश्तूनों का पसंदीदा गन्तव्य स्थल है एवं पाकिस्तान के परिवहन व्यवसाय व ट्रक उद्योग पर पश्तूनों का आधिपत्य है।

सन् 1979 में सोवियत संघ के अफगानिस्तान पर आक्रमण ने पख्तुनिस्तान की मांग को कमजोर कर दिया। पाकिस्तान ने तालिबान के सहयोग से पख्तुनिस्तान की मांग सदा के लिए समाप्त कर दी थी। तालिबान पाकिस्तानी मदरसों में प्रशिक्षित तथा आई.एस.आई. द्वारा सहायता प्राप्त लड़ाके हैं जिनका अफगानिस्तान के शासन पर कुछ समय के लिए नियन्त्रण रहा था।

अमेरिका में 9/11 के धमाकों के बाद अफगानिस्तान में तालिबानी शासन का अमेरिकी सेना द्वारा अंत कर दिया गया। वर्तमान समय में खैबर पख्तूनख्वा में अमीर हैदर खान हैती के नेतृत्व वाली अवामी नेशनल पार्टी (ए. एन. पी.) प्रान्तीय स्वायत्तता की समर्थक रही है तथा समय–समय पर इसने पंजाबी प्रभुत्व वाली केन्द्र सरकार के विरूद्ध आन्दोलन किये हैं। अतः संभावना इसकी अधिक है कि अगर केन्द्र के द्वारा क्षेत्रीय स्वायत्तता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रखा गया तो पश्तू भाषा व संस्कृति के आधार पर **पख्तूनिस्तान** की मांग पुनः उभर सकती है।

पंजाबी जातीय आन्दोलन

बांग्लादेश के निर्माण के पश्चात् पंजाब पाकिस्तान का सबसे बड़ा प्रान्त बन गया। पाकिस्तान में पंजाबी प्रभुत्व को सब जगह देखा जा सकता है। पाकिस्तान में पंजाब बनाम समस्त अथवा दूसरे शब्दों में सभी एक के खिलाफ तथा एक सभी के खिलाफ की स्थिति है। समस्त प्रशासन में महत्त्वपूर्ण पदों पर पंजाबी अधिकारियों का आधिपत्य है। ये शासकीय अधिकारी, राजनीतिज्ञ एवं सैन्य अधिकारी पंजाब में प्राथमिक स्कूलों में पंजाबी भाषा के प्रयोग का विरोध करते हैं। यह अभिजात्य पंजाबी वर्ग उर्दू तथा अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में शिक्षित होने के कारण पंजाबी भाषा को प्रशासन के सामान्य कामकाज के लिए अनुपयुक्त समझता है। इस वर्ग की यह भी सोच है कि अगर पंजाब प्रान्त में सरकारी कामकाज तथा स्कूलों में पंजाबी भाषा का इस्तेमाल होने लगेगा तो अन्य प्रान्त भी अपनी प्रान्तीय भाषा के प्रयोग के लिए दबाव बनाने लग जाएंगे। इससे जातीय संघर्ष में बढ़ोत्तरी होगी तथा केन्द्र कमजोर होगा।

इस प्रकार की सोच तथा मान्यता पंजाबी भाषा आन्दोलन का कारण है। लोगों को मानना है कि पंजाबी जातीय पहचान के परित्याग की कीमत पर ही पाकिस्तान में पंजाबी प्रभुत्व विद्यमान है। पंजाबी अभिजन वर्ग द्वारा केवल उर्दू व अंग्रेजी शिक्षा के प्रति लगाव के कारण ही पंजाबी भाषा व संस्कृति निरुद्ध हुई है। पंजाबियों को सांस्कृतिक शर्मिन्दगी को छोड़ना होगा तथा पंजाबी संस्कृति पर गर्व करना होगा। यह तभी संभव है जब सत्ता के केन्द्र में पंजाबी भाषा को स्थान प्राप्त हो, परन्तु यह कदम अन्य जातीय राष्ट्रवादी मांगों को मजबूती प्रदान करने वाला होगा, अतः पंजाब में यथापूर्व स्थिति विद्यमान है।

निष्कर्ष

इस प्रकार पिछले साठ वर्षों से पाकिस्तान में केन्द्रीय समस्या विषम आकार तथा विषम शक्तियों के मध्य सकारात्मक सह–सम्बन्धों की है। पंजाब जो कि पाकिस्तान का सबसे बड़ा तथा प्रभावशाली प्रान्त है, सिन्ध व बलूचिस्तान के संसाधनों कृषि भूमि, खनिज, बन्दरगाह, उद्योग, व्यापार एवं रोजगार के अवसर जैसे संशोधनों पर आधियपत्य रखता है। इन्हीं सब कारणों से पाकिस्तान में जातीयता, राष्ट्र तथा प्रान्तों के रिश्तों को प्रभावित कर रही है। जातीय संघर्ष कोई नवीन अभिक्रिया नहीं है, तथा इसका प्रभाव भी उन देशों तक ही सीमित नहीं है जहाँ इसका आरम्भ होता है, बल्कि यह तो विश्वव्यापी है। निकट भविष्य में ऐसी कोई संभावना नहीं दिखाई देती कि पाकिस्तान में जातीय संघर्ष में कोई परिवर्तन आयेगा तथा न ही ऐसा कोई आश्वासन है कि भविष्य में जातीय संघर्ष पूर्व के संघर्षों से कम विध्वसंक होगें या जातीय संघर्ष को रोका जा सकेगा।

सारणी–1

जातीय राष्ट्रीयता आन्दोलन : संघर्ष के प्रतिमान

समूह	अवधि	स्थान	विवरण
बंगाली	1960–70	पूर्वी पाकिस्तान	भाषाई दंगे, 1952 : निर्वाचित सरकार सरकार की बर्खास्गी, क्षेत्रीय विषमता, सेना का व्यवहार, भारत का हस्तक्षेप, 1971
सिन्धी	1950–90	ग्रामीण सिन्ध	पंजाबी बसावट का विरोध 1940–1950 मोहाजिरों के खिलाफ धरतीपुत्र आन्दोलनः जनसांख्यिक राष्ट्रवाद, सिन्धी भाषा का दमन, भारतीय संरक्षण
मोहाजिर	1985–03	खैबर पख्तूनख्वा	राजनीति, नौकरशाही व उद्योग में वर्चस्व की कमीः सेना में गैर मौजूदगी, पाकिस्तान में प्रवजन के बाद पहचान की कमी : बिहारियों का परित्यागः केन्द्रिय सरकार का पंजाबीकरणः सेना तथा प्रशासकीय सेवा में भूमिका में कमी, भारतीय सहायोग
पश्तून	1947–58 1973–77	खैबर पख्तूनख्वा	1947 तथा 1973 की निर्वाचित सरकारों की सरकारों की बर्खास्तगी के खिलाफ प्रतिक्रियाः अफगान राष्ट्रीय आन्दोलन
बलूच	1947, 1958, 1965, 1973–77	बलूचिस्तान	प्रति सम्मेलन, 1947, पृथक प्रान्तवाद का दावा, 1973, 1988 की निर्वाचित सरकारों की बर्खास्तगीः सोवियत व अफगान मदद

सदंर्भ : मोहम्मद वसीम, द पॉलिटिकल एथनीसिटी एण्ड द स्टेट ऑफ पाकिस्तान, अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेस नेशन–स्टेट एण्ड ट्रांसनेशनल फोर्सेज इन साउथ एशिया, क्योटो, 9–10 दिसम्बर, 2000, में प्रस्तुत किया गया शोध–पत्र : रूपान्तरित स्टीफन कोहेन **द आइडिया ऑफ पाकिस्तान**, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005

सारणी–2

पाकिस्तान के मुख्य जिलों में भाषा वितरण समस्त के प्रतिशत में

	जिला	भाषा प्रतिशत
उत्तरी पश्चिमी खैबर पख्तूनख्वा	पेशवतर	हिन्डको (6.85)
		पश्तो (87.54)
	अबोदाबा	हिन्डको (92.32)
		पश्तो (3.68)
	स्वात	कोहिस्तानी (8.67)
		पश्तो (90.28)
	मरदान	पश्तो (97.17)

पंजाब	लाहौर	पंजाबी (84.0) उर्दू (13.4)
	रावलपिण्डी	पंजाबी (98.2) उर्दू (13.4)
	फैसलाबाद	पंजाबी (98.2)
	मुल्तान	पंजाबी (43.8) सिरायकी (44.7) उर्दू (10.5)
	गुजरांवाला	पंजाबी (97.6)
	झेलम	पंजाबी (97.5)
	झांग	पंजाबी (96.5)
सिन्ध	कराची	पश्तो (8.7) पंजाबी (13.6) उर्दू (54.3)
	हैदराबाद	सिन्धी (56.48) उर्दू (28.10)
	लरकाना	ब्लूची (6.98) ब्रोही (5.92) सिन्धी (78.43) सिरायकी (5.04)
	जकोबाबाद	बलूची (21.34) सिन्ध (69.13)
	सुकूर	पंजाबी (6.37) सिन्धी (73.54) उर्दू (12.66)
बलुचिस्तान	क्वेटा	ब्रोही (17.13) पश्तू (36.47) पंजाबी (18.85) उर्दू (11.17)
	छागी	बलूची (57.08) ब्रोही (34.80)
	सिबी	बलूची (15.09) पश्तू (49.77) सिन्धी (20.12)
	ग्वादर	बलूची (98.25)

समस्त डाटा 1981 की जनगणना पर आधारित हैं।

संदर्भ : तारिक रहमान, **लेंग्वेज एण्ड पॉलिटिक्स इन पाकिस्तान**, कराची, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996, अपेन्डेक्स एफ. पृ. 265–66, रूपान्तरित स्टीफन कोहेन, द आइडिया ऑफ पाकिस्तान, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005.

❐

सन्दर्भ –

1. *हेराल्ड आर. इसाक, बेसिक ग्रुप आइडेन्टिटी : द आइडल्स ऑफ द ट्राईब इन नाथन गलेजर एण्ड डेनियल माईनिहान ;सं.द्ध, **इथनिसिटी : थ्योरी एण्ड इक्सपिरियन्स**, कैम्ब्रिज, हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975, पृ. 29.*
2. *उर्मिला फड़नीस, **एथनिसिटी एण्ड नेशन बिल्डिंग इन साउथ एशिया**, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन, 1990, पृ. 11.*
3. *उपरोक्त,*
4. ***वेबस्टर्स थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी ऑफ द इंग्लिश लेंग्वेज**, स्प्रिंगफिल्ड, मास जी एण्ड सी मैरियम कं., 1978, पृ. 781.*
5. *अजीत कु ढण्ढ, **एथनीसिटी इन इंडिया**, नई दिल्ली, इंटर इंडिया पब्लिकेशन्स, 1991, पृ. 51.*
6. *प्रेफडरिक बर्थ, इन्ट्रोडक्शन, इन अजीत कु. ढण्ढ, **उपरोक्त**, प . 51.*
7. *पॉल आर. ब्राश, **एथनिसिटी एण्ड नेशनलिज्म : थ्योरी एण्ड कम्पेरीजन**, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन, 1991, पृ.69.*
8. *प्रशांत सेन गुप्ता, टुवर्ड अन्डरस्टेनडिंग एथनिसिटी, एथनिक ग्रुप एण्ड एथनिक कॉनफ्रलिक्ट : ए लिबरल प्रेसपेक्टिव, इन अरूण घोष एण्ड राधरमन चक्रव्रति ;सं.द्ध, **एथनोनेशनलिज्म, इण्डियन एक्सपिरियन्स**, कोलकाता, चटर्जी पब्लिशर्स, 1991, पृ. 21.*
9. *कार्ल डब्ल्यू डायच, **नेशनलिज्म एण्ड सोशल कम्युनिकेशन : एन एन्क्वायरी इन टू द फफाउन्डेशन्स ऑफ नेशनलिटी**, कैम्ब्रिज, एमआईटी प्रेस, 1966, पृ. 188.*
10. *सिन्धिया, एच. एनलोए, **एथनिक कॉनफ्रिलक्ट एण्ड पॉलिटिकल डवलपमेन्ट**, बोस्टन, लिटल ब्राउन एण्ड कं., 1973, पृ. 27–34, उद्धृत उर्मिला फड़नीस, उपरोक्त, पृ. 18.*
11. *एरनेस्ट गेलनर, **नेशन्स एण्ड नेशनलिज्म**, ऑक्सफोर्ड, ब्लैकवेल, 1983, पृ. 56.*
12. *बेन्डिक्ट एनडरसन, **इमेजिन्ड कम्यूनिटीज**, लंदन, वर्सो, 1983, पृ. 15.*
13. *अरूण घोष एवम आर. चक्रव ति, **उपरोक्त**, प . 29.*
14. *टी. अली., **कैन पाकिस्तान सरवाईव? द डेथ ऑफ ए स्टेट**, हरमन्डसवर्थ, पेंग्विन, 1983.*
15. *सेलिग हैरिसन, **इन अफगानिस्तान शडो : बलूच नेशनलिज्म एण्ड सोवियत टेम्पटेशनस**, न्यूयॉर्क, कार्नेगी, 1981.*
16. *इनआयातुल्लाह बलूच, **ग्रेटर बलुचिस्तान : ए स्टडी ऑफ बलूच नेशनलिज्म**, स्टुटगार्ड, स्टेनर, 1987.*
17. *लारेन्स जायरिंग, **पाकिस्तान : द इनिगमा ऑफ पॉलिटिकल डवलपमेन्ट,**फोकस्टोन, डाउसन, 1980.*
18. *हमजा अलवी, नेशनहुड एण्ड नेशनलिटीज इन पाकिस्तान, **इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली**, 8 जुलाई 1989.*
19. *अनवर सईद, पालिटिकल पार्टीज एण्ड द नेशनलिटीज क्यूशन इन पाकिस्तान, **जर्नल ऑफ साउथ एशियन एण्ड मिडिल ईस्टर्न स्ट्डीज**, 12, 1, 1988, पृ. 42–75.*
20. *अकबर एस. अहमद, **पाकिस्तान सोसाइटी : इस्लाम, एथनिसिटी एण्ड लीडरशिप इन साउथ एशिया**, कराची, ऑक्सपफोर्ड, यूर्निवसिटी प्रेस, 1986.*
21. *ताहीर अमीन, **एथनो–नेशनल मूवमेन्ट्स ऑफ पाकिस्तान : डोमेस्टिक एण्ड इन्टरनेशनल फेक्टर्स**, इस्लामाबाद, इन्स्टीट्यूट ऑफ पॉलिसी स्ट्डीज, 1988.*
22. *मुमताज अहमद, क्लास रीलिजन एण्ड पावर : सम आस्पेक्टस ऑफ इस्लामिक रीवाइवलिज्म इन पाकिस्तान **पी. एच. डी. थिसीस**, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, 1990.*
23. *गुलाम मुर्तजा सैयद ; 17 जनवरी 1904– 25 अप्रेल 1996द्ध स्वायत्त सिन्धु देश के स्वप्नदर्शी तथा भारत, पाक, बांग्लादेश के महासंघ के प्रखर प्रवक्ता रहे हैं।*
24. *तारीक रहमान, लेंगवेज एण्ड एथनीसिटी इन पाकिस्तान, **एशियन सर्वे**, 37ए 9 सितंबर 1997, पृ. 833–839.*
25. *सेलिग एस. हैरीसन, एथनीसिटी एण्ड द पॉलिटिकल स्टेलमेट इन पाकिस्तान इन अली बानुजीजी एण्ड माइनर वीनर ;सं.द्ध **स्टेट रीलिजन एण्ड एथनिक पॉलिटिक्स**, लाहौर, वैनगार्ड, 1987, पृ. 267–298.*
26. *खान अब्दुल गफार खान ;1890–1988द्ध ने खुदाई खिदमतगार के नाम से सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए सुधारवादी आंदोलन चलाया। गफार खान गांधी जी के सहयोगी थे तथा पाकिस्तान के निर्माण के खिलाफ थे। इनके अनुयायियों को लाल कुरती के नाम से जाना जाता है।*
27. *सेलिग एस. हैरिसन, उपरोक्त।*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 64–71

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

रंवाई घाटी के दलित समुदाय का प्रमुख लोकोत्सव खोदाई एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. सपना रावत
इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड
E-mail : sapu.rawat10@gmail.com Mob. 8476921516, 7817993932

सारांश

मनुष्य समाज का एक अभिन्न अंग होने के कारण सामाजिकता उसकी प्रमुख आवश्यकता रही है। अपने सम्पूर्ण जीवन काल में उसे विभिन्न प्रकार के कर्तव्यों एवं दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है। प्रायः अपने दैनिक कार्यों में वह इतना अधिक उलझा रहता है कि स्वयं के लिए समय निकालना कठिन हो जाता है। इन परिस्थितियों में लोकोत्सव उनके जीवन में सुखद परिवर्तन लाने के साथ–साथ नवीनता का संचार करते हैं। ऐतिहासिक विरासत एवं जीवंत संस्कृति के द्योतक ये लोकोत्सव हमारे समृद्ध सांस्कृतिक वैभव को प्रदर्शित करते हुए हमें गौरान्वित होने का अवसर प्रदान करने के साथ ही लोगों के मध्य परस्पर जुड़ाव, प्रेम, एकता तथा सद्भाव स्थापित करने का कार्य करते हैं। उत्तराखण्ड राज्य के सीमांत जनपद उत्तरकाशी की रंवाई घाटी अपने अनुपम सौन्दर्य एवं अनूठी सांस्कृतिक विविधताओं के कारण अनादि काल से ही जनमानस के आर्कषण का केन्द्र रही है। यहां के ग्रामीण समाज में प्रचलित एवं पल्लवित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियां इस समाज की ऐतिहासिक विरासत तथा विशेषताओं के अभिन्न मापदण्ड को निरूपित करती है। यहां आयोजित होने वाले लोकोत्सव अनूठे रहे हैं तथा लोगों द्वारा उन्हें मनाने के तरीके राज्य के अन्य जनपदों से भिन्न रहे हैं। वैसे तो यहां अनेकों मेले–उत्सव आयोजित होते रहते हैं जिसमें सभी वर्ग के लोगों की सहभागिता रहती है किन्तु लोक संस्कृति के संवाहक माने जाने वाले दलित समुदाय के अपने कुछ विशेष लोकोत्सव हैं जिसमें खोदाईं की अनोखी परम्परा विद्यमान रही है। घर की सुख–समृद्धि हेतु गुसाईं देवता के नाम से आयोजित किए जाने वाले खोदाईं लोकोत्सव के अवसर पर रात्रि जागरण का आयोजन किया जाता है, जिसमें जगरेई की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहती है। इस शोध पत्र में शोध सामग्री के रूप में मौखिक स्रोतों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। लिखित साक्ष्यों का अभाव होने के कारण इस शोध पत्र में खोदाईं लोकोत्सव को

आयोजित करने के उद्देश्य, लोकदेवता की भूमिका, जगरेई की भूमिका, आदि समस्त क्रियाकलापों तथा इसके पूर्वगामी एवं परिवर्तित स्वरूप को क्षेत्रीय भ्रमण के माध्यम से संकलित साक्षात्कारों, लोकगाथाओं, मान्यताओं एवं वयोवृद्धों की स्मृति इत्यादि का विश्लेषणात्मक प्रयोग किया गया है।

उत्तराखण्ड राज्य के सीमांत जनपद उत्तरकाशी में अवस्थित रंवाई घाटी के अंतर्गत मोरी, पुरोला, नौगांव विकासखण्ड का समृद्ध क्षेत्र आता है। आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न यह घाटी सदियों से अपने गौरवशाली लोक परम्पराओं के लिए विख्यात रही है। इस क्षेत्र के अनुपम सौन्दर्य, लोगों की सादगी, अतिथि देवो भवः की भावना, लोकोत्सवों को मनाने की अनोखी परम्पराऐं, मंदिर एवं भवन निर्माण शैली, बोली एवं परम्परागत परिधानों में भिन्नता होने के बाबजूद विविधता में एकता की भावना इत्यादि विशेषताओं के कारण रंवाई जनमानस के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ के समाज में ऋतु विशेष एवं देव यात्रा के अवसर पर त्योहार एवं उत्सव मनाए जाने की समृद्ध परम्परा विद्यमान रही है, जिससे सामाजिक एकता एवं वर्ग विशेष के मध्य आपसी सौहार्द की भावना परिलक्षित होती है।

लोकोत्सव मानवीय जीवन को परस्पर जोड़ने व समझने का वह माध्यम होता है, जिसमें समाज के किसी एक वर्ग विशेष की नहीं अपितु प्रत्येक वर्ग के लोगों की भागीदारी रहती है। मनुष्य ने जब समूह में रहना आरम्भ किया तभी से उसके अन्दर अनेक सामाजिक भावनाऐं विकसित होने लगी, जिसने लोकोत्सवों की प्रेरणा को जन्म दिया। समाज द्वारा इन लोकोत्सवों का सृजन मनोरंजन, भौगोलिक परिस्थितियों के कारण की गई होगी, किन्तु इन लोकोत्सवों के सृजन का मूल उद्देश्य समाज को संगठित एवं व्यवस्थित बनाये रखने हेतु किया गया था।[1]

यहां के ग्रामीण अंचल में प्रचलित लोकपरम्पराऐं, लोक विश्वास, लोकोत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य आदि उस समाज विशेष की सामाजिक एकता एवं सांस्कृतिक पहचान से साक्षात्कार कराती है। ये सांस्कृतिक आयाम क्षेत्र विशेष की विशिष्टता एवं सांस्कृतिक चेतना को प्रदर्शित करती है। रंवाईं घाटी मुख्यतः कृषि आधारित समाज का प्रतिनिधित्व करती है, कृषकों के जीवन में उमंग एवं उत्साह का संचार करने का कार्य ये लोकोत्सव करते हैं। कृषि आधारित लोकोत्सव मुख्यतः फसल बुवाई, गुड़ाई, कटाई के पश्चात् आयोजित किये जाते हैं जो आर्थिक सम्पन्नता व खुशहाली के प्रतीक माने जाते हैं।

वैसे तो लोकोत्सवों के अवसर पर सभी वर्गों की भागीदारी रहती है किन्तु इस क्षेत्र में दलित समुदाय के अपने कुछ विशेष लोकोत्सव जैसे– खोदाईं, स्यूड़िया जातर, भोज आदि मनाने की परम्परा विद्यमान रही है जिनमें इसी वर्ग के लोग देवता के पुजारी, बजीर, माली होते हैं। देवकार्य से सम्बंधित समस्त कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पादित किए जाते हैं। यहां पर विशेष रूप से खोदाईं का उल्लेख किया जा रहा है। वास्तव में यह एक विचारणीय प्रश्न है कि समाज में लोकोत्सवों, मेले, त्योहारों के अवसर पर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने के पश्चात् भी उपेक्षित समझे जाने वाले दलित समुदाय को पृथक रूप से अपने देवी–देवता रखने व पूजने की स्वतंत्रता प्राप्त थी तथा उनके इन उत्सवों के आयोजन पर सवर्ण जाति के लोग भी उत्सुकता के साथ अपनी सहभागिता व्यक्त करते थे। अन्य लोकोत्सवों, मेलों के अवसर पर जहां सभी जातियों के लोग सम्मिलित होते थे वहीं इन लोकोत्सवों के लोकदेवता सभी के लिए समान

तो थे किन्तु इन अवसरों पर वर्चस्व समाज के उच्च वर्ग का रहता था। यद्यपि लोकदेवता से संबंधित जितने भी महत्वपूर्ण कार्य जैसे–परम्परागत वाद्ययंत्रों को बजाने से लेकर लोकोत्सवों से संबंधित जितने भी जोखिम भरे कार्य होते थे इनके द्वारा ही सम्पन्न किए जाते थे। फिर चाहे वह जागरा हो या फिर देवलांग पर्व के लिए जंगल से वृक्ष लाने, हिण्डोड़ा मेले हेतु गेंद बनाने, मौण के लिए टिमरू चूर्ण एकत्रित करने, बलराज के अवसर पर रस्सा–कस्सी खेल हेतु रस्सा बनाने का कार्य, दीपावली के अवसर पर मशाल बनाने हेतु प्रत्येक घर जाकर छीलके देने का कार्य, ओण्ड जलाने हेतु लकड़ी एकत्रित करने का कार्य आदि इन्हीं की जिम्मेदारी होती थी। इतने महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन करने के बावजूद भी उन्हें न तो मंदिर प्रवेश की अनुमति और न ही देवडोली को नचाने अधिकार होता है। यद्यपि आज भी कई क्षेत्रों में यह परम्परा पूर्ववत्त बनी हुई है। सम्भवतः इन्हीं उपेक्षाओं के कारण इस समुदाय द्वारा अपने अलग देवी–देवता रखकर उन्हें पूजने की परम्परा भ्रारू की गई होगी। जहां स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छानुसार बिना किसी हिचकिचाहट के वह अपने लोकदेवताओं की पूजा कर उनके नाम से मेले–उत्सवों का आयोजन कर समस्त दैवीय अनुश्ठान स्वयं सम्पादित कर सकें। जिस प्रकार से सवर्ण वर्ग भी उत्सुकता के साथ दलित समुदाय द्वारा आयोजित किए जाने वाले खोदाईं, स्यूड़िया जातर आदि में भ्ाामिल होकर अपनी सहभागिता व्यक्त करते हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि दलित समुदाय द्वारा पृथक रूप से अपने लोकदेवता पूजने पर समाज के उच्च वर्ग को किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं रही होगी।

खोदाईं का तात्पर्य यहां घर की छत को खोलने से है जिस कारण इस उत्सव को खोदाईं नाम दिया गया। खोदाईं मनाने की परम्परा मुख्यतः रंवाई क्षेत्र के नौगाँव तथा पुरोला विकासखण्ड के नेत्री, हुडोली, आराकोट, कुरूड़ा, कंसोला, हिरालनी, लमकोटी, कूड़, जाबुला, कोटी, डेल्डा आदि अनुसूचित बाहुल्य गांवों में विद्यमान रही हैं। घर की सुख, समृद्धि एवं खुशहाली हेतु इस धार्मिक उत्सव का आयोजन मुख्यतः 4, 5 या 7 वर्षो के अंतराल में मंगसीर (नवम्बर–दिसम्बर) माह में किया जाता है।[2] जिसमें खोदाईं हेतु दिन का निर्धारण **जगरेई** (*जगरेई एक प्रकार से गाथा वाचक को कहा जाता है जिसकी भूमिका महत्वपूर्ण रहती है क्योंकि जब तक वह गाथा का वाचन नहीं करेगा तब तक गुसाईं अवतरित नही होंगे।*) द्वारा किया जाता है।[3] रंवाई में इस संदर्भ में एक कहावत प्रचलित है *"डूम कू जागरू खसिया अनिन्द्रु"* अर्थात दलित समुदाय का जागरा और खसिया (राजपूत) जागे। यह कहावत यूं ही प्रचलित नहीं है बल्कि इस क्षेत्र के दलित समुदाय में ऐसे जागर की परंपरा विद्यमान रही है।[4] जहां इस अवसर पर घर की उखाड़ी गई छत के चारों ओर सवर्ण जाति के लोग बैठकर सम्पूर्ण रात्रि जागर देखते थे।[5] जो सम्भवतः समाज में सवर्ण वर्ग के वर्चस्व को प्रदर्शित करता है।

जागरा शुद्ध संस्कृत का शब्द है, जो जागृ के साथ घल प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ जागरण होता है। कालिदास के रघुवंश एवं महाभारत के जागरण पर्व में जागर शब्द का उल्लेख आया है। रात्रि के समय जागरण कर अथवा किसी व्यक्ति विशेष पर दैवी शक्ति को अवतरित या जागृत करने हेतु किए जाने वाले अनुष्ठान तथा गीतों को जागर कहा जाता है।[6] क्षेत्र में प्रचलित लोकमान्यताओं, लोकपरंपराओं, जागर गाथा के अनुसार खोदाईं का ईष्ट गुसाईं है किन्तु लोकदेवता होने के कारण इसकी कोई प्रतिमा या मंदिर स्थापित न होने से प्रतिकात्मक

रूप में क्षेत्रवासी इन्हें सत्यनारायण, इन्द्र का पुत्र, सूर्य का भाई आदि का स्वरूप मानकर पूजते हैं। यद्यपि निरंकार की जागर में गोसाईं शब्द नाथों के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है, जिसे सृष्टि का आदिकर्ता माना गया है।[7]

जागर *(जागर गाथा के रूप में मिलते हैं। ये आकार में दीर्घ होती और प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसे स्मरण रख कर गाना संभव नहीं होता है। जागर का गायन अनुसूचित जाति के लोगों विशेष रूप से बाजगी समुदाय तक सीमित है, जो अपनी आजीविका के लिए गायन–वादन का कार्य करते थे।)* गाथा के अनुसार खोदाईं के ईष्ट गुसाईं तनबुट ऋशि की कन्या से उत्पन्न हुए, जो ईश्वर की दृष्टि मात्र से गर्भवती होती है। गर्भावस्था के 12 वें माह में जब गुसाईं पैदा होने वाले होते हैं, तो वह अपनी माता से संसार में आने का मार्ग पूछते हैं।

बता माता मानुवा कु पैंडु, आ बेटा खाबुड़िया बाटी
तांई माता भलू बोलितू, मुईले खाबुड़िया बोलल
बता माता मानुवा कु पैंडु, आ बेटा नाक क चुरा
तांई माता भलू बोलितु, मुईले नाकुड़िया बोलल
बता माता मानुवा कु पैंडु, आ पुत सिर फोड़ी
तांई माता भलू बोलितू, मुइले माता सिरवा बोलल
मुख धरी दूध कु थाल, छुटी बाल दूध क धार।[8]

अर्थात हे माता मुझे मानव लोक में आने का मार्ग बताओ। तब माता उन्हें मुंह, नाक, सिर के मार्ग से बाहर आने को कहती है, जिस पर शिशु कहता है कि माता तुमने ठीक कहा किन्तु लोग मुझे खबुड़िया, नाकुड़िया, सिरवा कहकर पुकारेंगे। अन्ततः वह माता के दुग्ध की धार से पैदा होते हैं। पैदा होने पर वह सूर्य के समान तेजस्वी था। एक दिन ऋशि कन्या अपने पुत्र को ऋशि के पास छोड़कर घर से बाहर जाती है, शिशु के रोने पर ऋशि उसे चुप करवाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे ही ऋषि शिशु को स्पर्श करने का प्रयत्न करता है वैसे ही उसका शरीर झुलसने लगता है। अन्ततः ऋषि क्रोधित होकर शिशु को पत्थर की शिला पर पटक देता है।

थीड़ी बाल पत्थर शिला, तेईकी बाजी चौदह तरंगा
सीली लाई पाटा गोबली, बेड़ी बाल पाटा गोबली
धरी देणी तांब कोठारिया, धरी बाल रैणी मंजेली
लाई गाड़ी अबींडी ताई, पहुंची बाली ऋशियों क बार।[9]

पत्थर पर पटकते ही उसके चौदह टुकड़े हो जाते हैं। वह उन चौदह टुकड़ों को पोटली में समेटकर बक्से में बंद कर देता है। दुखी होकर माता बक्से से पोटली को बाहर निकाल कर चिड़िया का रूप धारण कर ईश्वर की सभा में उपस्थित होकर उन्हें सारा वृतान्त सुनाती है, जिसे सुनकर ईश्वर पोटली में भरे सारे टुकड़ों में प्राण भर देते हैं। इन चौदह टुकड़ों से तेरह भाई व एक बहिन उत्पन्न हुई। बालिग होने पर ये सभी अपना हिस्सा मांगने लगते हैं तब ईश्वर की सभा बैठती है जहां 12 भाईयों को 12 महीने व बहिन जूना को रात का हिस्सा दिया जाता है। किन्तु गुसाईं को कोई हिस्सा नहीं दिया जाता क्योंकि हिस्सों के बंटवारे के समय गुसाईं सो रहे थे वह 6 महीने सोते व 6 महीने जागते थे।

गुसाईं सुत बैल फुंकार, माता मन ज्ञान गाड़
कै बुद्धि न निन्दर बिजियाउनु, पैरू धरी थायुं कु कंसाऊ।
मुख धरी नौ गरिया शांख, आपु कर गुगुतिया कु शेष
बजी नई नौ गरिया शांख, पाछु साहिब पैर पसार
ढ़ई नई थायुं कु कंसाऊ, गुसाईं की निन्दर गोइ बीजी।[10]

गुसाईं को हिस्सा न मिलने पर माता दुखी मन से सोचने लगती है कि किस तरीके से गुसाईं को जगाया जाय। वह उसके पैरों में कांसे की थालियों का ढेर तथा मुख पर शंख रख देती है तथा स्वयं चिड़िया का रूप धारण कर लेती है। जैसे ही गुसाईं श्वांस छोड़ते हैं शंख बज जाता है तथा पैर फैलाते ही थालियों का ढेर नीचे गिरने से गुसाईं गुस्से से जागते हुए कहता है कि खाते पीते किसका काल आ गया है जिसने मुझे जगाने का प्रयत्न किया। इस पर माता उसे सारा वृतान्त सुनाती है कि तेरे 12 भाईयों को हिस्सा मिल गया है और तुझे हिस्सा ही नहीं दिया गया। गुस्से से जब गुसाईं पंचो की सभा में उपस्थित होकर अपना हिस्सा मांगने लगता है तब उसे मानव लोक का हिस्सा दिया जाता है जहाँ पहुंचना उसके लिए सुगम न था।

धपाई घोड़ी पुरबा दिशा, तेख मिली सुनार कु छोरा
द रा भाई सुत दे गाड़ी, तेन गाड़ी सुन कु सुत
सु सुत मानवाई ना पहुंच, धपाई घोड़ी दक्षिण दिशा
तेख मिली टमटु कु छोरा, द रा भाई सुत दे गाड़ी
तेनी गाड़ी तांब कु सुत, सु सुत मानवाई ना पहुंच
धपाई घोड़ी पश्चिम दिशा, तेख मिली लुवार कु छोरा
तेनी गाड़ी लोखर कु सुत, सु सुत मानवाई ना पहुंच
धपाई घोड़ी उत्तर दिशा, तेख मिली सिद्वा पालस
तेनी गाड़ी ऊन कु सुत, सु सुत मानवा गोई पहुंची। [11]

गुसाईं घोड़े पर सवार होकर पूरब दिशा की ओर जाते हैं जहाँ उन्हें सुनार, दक्षिण दिशा में तमोटा (तांबे का कार्य करने वाला), पश्चिम दिशा में लुहार मिलते हैं किन्तु उनके द्वारा दिया गया कोई भी सूत मानव लोक तक नहीं पहुँच पाता। अंततः उत्तर दिशा में जाने पर उसे **सिदुवा** *(सिदुवा रमोलीगढ़ के सरदार गंगू रमोला के पुत्र थे। गढ़वाली लोकगाथा में सिदुवा–बिदुवा का उल्लेख कृष्ण के सहायक के रूप में मिलता है। सिदुवा को गुरू गोरखनाथ का शिष्य और तांत्रिक माना जाता है।)* मिलता है जो उसे ऊन का धागा देता है जिसकी सहायता से वह मानव लोक पहुंचता है। मृत्यु लोक पहुंचते ही वह सबसे पहले सवर्ण के घर पहुंचता है जहाँ बकरे की बलि देकर उसकी पूजा की जाती है। ब्राह्मण के घर पहुंचने पर फूल–प्रसाद से पूजा जाता है किन्तु उसके मन को सन्तुष्टि नहीं मिलती। जब वह भ्रमण कर ही रहा था उस समय उसकी दृष्टि एक दलित महिला पर पड़ती है जो खेत में मौलू नामक व्यक्ति के लिए खारी का रोट तथा इण्डा ले कर जा रही थी। उसके पीछे शुनु (सुअर) की जोड़ी चल रही थी उस पर गुसाईं का लालच पड़ता है। वह ब्राह्मण रूप में मौलू के पास जाकर कहता है कि तुम्हारे घर अतिथि आने वाला है घर की साफ–सफाई करके रखना।[12]

वह घर जाकर अपनी माता से गुसाईं द्वारा कही गई बात बोलता है किन्तु वह उसे अपशब्द कहकर भगा देती है जिससे उस पर गुसाईं का दोष (कुपित) लग जाता है, जिस कारण मौलू का पुत्र घर से गायब हो जाता है। काफी खोजने के पश्चात् भी जब वह कहीं नहीं मिलता तब मौलू की माता मौलू से उस ब्राह्मण से गणत करने को कहती है। मार्ग में उसे गुसाईं मिलते हैं मौलू उन्हें सारा वृतांत सुनाते हुए उपाय पूछता है, तब गुसाईं उससे कहता है कि तू घर जाकर घर की साफ–सफाई कर, पूजा रविवार या बुद्धवार को देना, पूजा हेतु खारी का रोट, खारी का इण्डा और सुअर की बलि देना।[13]

इस प्रकार गुसाईं की पूजा हेतु 20 किलो चावल का ढ़ेर जमीन पर रखा जाता है जिसे 'बार' कहा जाता है। बार के मध्य में आधा किलो ऊन कात कर सूत को एक कण्डी (टोकरी) से लटका दिया जाता है। यह कण्डी पैय्यां (prunus cerasoides) की लकड़ियों से निर्मित की जाती है, जिस पर आटे से बने फल लटकाये जाते हैं। बीच की लड़ी में नारंगी (Citrus tangerine) के बराबर में **ओसाघड़ी** *(ओसाघड़ी पीतल की बंटी (पानी का बर्तन) में भरे जल जिसके ऊपर एक सिक्का रखा जाता है)* रखी जाती है। ओसाघड़ी के ऊपर **इण्डा** *(इण्डा एक प्रकार का व्यंजन है जो कुलथ की दाल को पीसकर बंद का आकार देकर भाप में पकाया जाता है)* तथा उसके ऊपर गेंहू के आटे का बना रोट[14] जिस पर सांप की आकृति बनाई जाती है, आस–पास आटे से बने विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षी रखे जाते हैं।[15] नारंगी के बराबर में आटे का बना घोड़ा जिस पर गुसाईं सवार होता है घर के अंदर बीचों–बीच स्थापित किया जाता है। लोकमान्यता के अनुसार धागा इसलिए बांधा जाता है कि गुसाईं धागे की सहायता से स्वर्ग लोक से मृत्यु लोक पहुंचे थे। जैसे ही जगरेई गाथा गाना आरम्भ करता है गुसाईं अवतरित होकर दुग्ध से स्नान करता है। सम्भवतः दुग्ध धारा से उत्पन्न होने के कारण वह ऐसा करते हों। अवतरित होने पर वह स्वयं के कर्म को कोसते हुए कहते हैं– *"आई मेरू कर्म कु कारू, बासु पड़ी डूम क घर"* अर्थात यह मेरे बुरे कर्मों का नतीजा है कि मेरा निवास अनुसूचित के घर में पड़ा।[16]

मान्यता है कि इस पूजा हेतु जो धान कूटा जाता है वह पक्षियों द्वारा भी जूठा ना किया गया हो। महिलाऐं धान कूटते समय मुंह पर कपड़ा बांधती थी ताकि किसी भी प्रकार का जूठन ना हो। लोग उपवास रख कर घर पर पूजा हेतु हाथों से तिल का तेल लगाते थे।[17] इस प्रकार गुसाईं प्रथम रात्रि एक बार, दूसरी रात्रि दो बार व तीसरी रात्रि चार बार अवतरित होते हैं। यह खोदाईं की मुख्य रात्रि मानी जाती है।[18] लोक विश्वास है कि खोदाईं की अंतिम रात्रि यदि कोई संतानहीन स्त्री संतान प्राप्ति हेतु उस अखण्ड दीपक के समक्ष सम्पूर्ण रात्रि तप में बैठती है तो उसे संतान की प्राप्ति अवश्य होती है। इस प्रक्रिया को स्थानीय भाषा में "बअर" बैठना कहा जाता है।[19]

खोदाईं के अंतिम दिन जगरेई प्रातः काल गाथा के अंत में **माल्या फुलियारा** *(माल्या फुलियारा गुसाईं और उनके बारह भाईयों जिन्हें बारह माह की संज्ञा भी दी गई है के कुल पुरोहित हैं।)* को अवतरित करने हेतु *"बियुजी जा माल्या फुलियारा बियुजी जा बारह भाईयूं का बामिण"* का गायन करता है जिसे अन्य जागरिया दोहराते रहते हैं। तब माल्या फुलियारा अवतरित होकर आटे के बने फल प्रसाद रूप में लोगों के मध्य फेंकता है।[20] तत्पश्चात् शेष अखण्ड दीपक के तेल में चावल को पकाकर प्रसाद रूप में प्रातः काल गाँव में बांटा जाता था। इसी के साथ सुअर की बलि देकर सभी उपस्थित जनसमुदाय को भण्डारा देकर खोदाईं का समापन किया जाता था।[21] खोदाईं के समापन के पश्चात् बार का चावल तथा अन्य जितनी

भी चीजें पूजा की विधि हेतु रखी जाती थी उसे जगरेई, माली (देव प्रतिनिधि) तथा अन्य जागरियों के बीच बांट दिया जाता था। सिवाय आटे की बनी घोड़े पर सवार गुसाईं की प्रतिमा उस परिवार के लिए छोड़ दी जाती थी जिसने खोदाईं का आयोजन किया हो।[22]

इसके समान उत्तराखण्ड के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ के मुनस्यारी तहसील के कुछ गाँवों में मेहता जाति के लोगों द्वारा भी इसी प्रकार खुदा पूजा नामक धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन किया जाता है जिसमें न तो ईश्वर की कोई प्रतिमा होती है और न मंदिर।[23] खुदा पूजा के नाम से भगवान शिव के अलखनाथ रूप की पूजा की जाती है। जिस घर में अलखनाथ की पूजा होती है उसकी छत का एक हिस्सा खुला छोड़ा जाता है। मान्यता है कि छत के इसी खुले हिस्से से भगवान अलखनाथ पूजा में आते हैं।[24] किन्तु मुनस्यारी में आयोजित होने वाला यह अनुष्ठान उच्च जाति के लोगों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, जबकि रंवाई क्षेत्र में दलित समुदाय द्वारा। यद्यपि खोदाईं दलित समुदाय का धार्मिक उत्सव है किन्तु इस अवसर पर सवर्ण जाति के लोग पूर्ण निष्ठा और उत्साह के साथ स्वेच्छा से गुसाईं की पूजा हेतु इण्डा व रोट बनाकर अपनी सहभागिता व्यक्त करते थे[25] क्योंकि दोनों की सहयोगात्मक भावनाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई थी।

क्षेत्र सर्वेक्षण से इस बात की पुष्टि होती है कि आर्थिक कारणों, लोगो द्वारा पक्के छत वाले घरों के निर्माण, मनोरंजन, जनसंचार के साधनों की अतिशयता तथा बिखरती ग्रामीण परम्पराओं एवं रोजगार के अन्य संसाधन उपलब्ध होना एवं युवा पीढ़ी का इस कार्य के प्रति उदासीन रहना इत्यादि कारणों से खोदाईं की परंपरा लुप्त हो रही है।[26] इस प्रकार रंवाई में आयोजित होने वाला खोदाईं उत्सव जहां 3, 5, 7 वर्षों के अंतराल में आयोजित करने की परम्परा रही है वहीं अधिकांशतः आज यह उत्सव कई वर्षों के पश्चात् भी आयोजित नहीं हो रहा है तथा जहां आयोजित हो भी रहे हैं उसकी कोई निश्चित अवधि नहीं है।[27] तत्कालीन परिस्थितियों में आज की अपेक्षा आर्थिक संसाधनों की कमी, यातायात एवं संचार सुविधा का अभाव तथा इस समुदाय में निर्धनता अधिक होने के बावजूद भी लोग उत्सुकता के साथ समय–समय पर इस उत्सव को आयोजित करते थे। क्योंकि इस उत्सव का मूल प्रयोजन घर की सुख–समृद्धि से रहा है और लोगों में अपने ईष्ट के प्रति सर्मपण एवं धार्मिक जुड़ाव की भावना थी। आज इस समुदाय में शिक्षा के प्रति जागरूकता तथा संसाधनों की सुगमता से जहां खोदाईं का आयोजन करना पहले जितना कठिन नहीं रहा वहीं आज खोदाईं की यह परंपरा अपने मूल अस्तित्व को खो रही है। जिसका कारण सम्भवतः जगरेई का सुगमता से उपलब्ध न होना है क्योंकि खोदाईं उत्सव में जगरेई की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है, वह जब तक गाथा का गायन नहीं करेगा गुसाईं अवतरित नहीं होंगे। जागर गाथा विस्तृत होने के कारण इसका गायन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है तथा अधिकांशतः जो जगरेई हैं वह वृद्ध या फिर मृतप्राय हो चुके हैं। आर्थिक बोझ को इसका महत्वपूर्ण कारण नहीं माना जा सकता है क्योंकि तत्कालीन परिस्थिति में लोगों में निर्धनता आज की अपेक्षा अधिक थी। लोगों की आर्थिकी के मुख्य साधन कृषि–पशुपालन तक सीमित थे। आज के समान उनमें न तो शिक्षा के प्रति जागरूकता थी और न ही रोजगार के अन्य संसाधन उपलब्ध थे फिर भी अपनी संस्कृति के प्रति उनमें समर्पण व जागरूकता अवश्य थी। आज मानव भौतिकवादी हो चुका है आधुनिकता की दौड़ में वह इतना आगे निकल चुका है कि वहां से मुड़कर आना उसके लिए अत्यधिक कठिन हो गया है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य इस मौखिक परम्परा को लेखबद्ध करना मात्र नहीं है बल्कि इस अनूठी लोकपरम्परा के उद्देश्यों एवं महत्व को बतलाते हुए लोगों में चेतना का संचार कर भावी पीढ़ी को इस विशिष्ट परम्परा को संरक्षित करने हेतु प्रेरित करना है। क्योंकि इस क्षेत्र विशेष में लोकोत्सवों, मेलों की श्रेणी में कुछ ही लोकोत्सव ऐसे रहे हैं जो दलित समुदाय से संबंधित हैं। इस समुदाय विशेष द्वारा समाज में पृथक से सामाजिक परम्पराओं का निर्वहन करते हुए लोकोत्सवों की इस अनूठी परम्परा की विशिष्टता को परिलक्षित करती हैं। अतः दलित समुदाय की विशिष्ट परम्परा के विविध आयामों का संवर्धन एवं संरक्षण किया जाना चाहिए जिससे समाज में सौहार्द्ध एवं एकता की भावना बनी रहे।

❐

सन्दर्भ –

1. *रावत सपना– पश्चिमी गढ़वाल के लोकोत्सवों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति का ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबंध, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि. श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड, 2019, पृ. 23*
2. *साक्षात्कार हरिमोहन, 55 वर्ष, ग्राम मखना, पुरोला, उत्तरकाशी, 15.05.2016*
3. *साक्षात्कार– योगेन्द्र लाल, 56 वर्ष, ग्राम लमकोटी, पुरोला, उत्तरकाशी, 9.07.2022*
4. *रंवाल्टा महावीर– रंवाई का एक अनूठा लोकानुष्ठान खोदाईं, उत्तराखण्ड संस्कृति अंक–2, उत्तराखण्ड शोध संस्थान, 2002, पृ. 53*
5. *साक्षात्कार– युद्धवीर सिंह रावत, 84 वर्ष, ग्राम खलाड़ी, पुरोला, उत्तरकाशी, 13.07.2022*
6. *चातक गोविन्द– गढ़वाली लोकगाथाऐं, तक्षशीला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 19*
7. *कुकरेती विष्णुदत्त– नाथपंथः गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में, विद्या निकेतन प्रकाशन, चौरास श्रीनगर, द्वितीय संस्करण, सम्वत् 2060, पृ. 29*
8. *साक्षात्कार– कृपाल, 63 वर्ष, ग्राम कुड़, नौगाँव, उत्तरकाशी, 20.06.2016*
9. *साक्षात्कार– बर्फिया लाल, 72 वर्ष, ग्राम कंसोला, नौगाँव, उत्तरकाशी, 06.05.2016*
10. *साक्षात्कार– कृपाल, उपरोक्त*
11. *उपरोक्त*
12. *उपरोक्त*
13. *उपरोक्त*
14. *रंवाल्टा महावीर– पृ. 55, उपरोक्त*
15. *साक्षात्कार हरिमोहन, उपरोक्त*
16. *साक्षात्कार–सोबन देई, 47 वर्ष, ग्राम मेंहर गाँव, पुरोला, उत्तरकाशी, 08.05.2016*
17. *साक्षात्कार– बालमी देवी, 75 वर्ष, ग्राम आराकोट, पुरोला, उत्तरकाशी, 07.05.2016*
18. *रंवाल्टा महावीर, पृ. 53, उपरोक्त*
19. *साक्षात्कार– योगेन्द्र लाल, उपरोक्त*
20. *साक्षात्कार– युद्धवीर सिंह रावत, उपरोक्त*
21. *साक्षात्कार– कृपाल, उपरोक्त*
22. *साक्षात्कार– योगेन्द्र लाल, उपरोक्त*
23. *निवेदिता– मध्य हिमालय का लोकधर्म, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2005, पृ. 139*
24. *www.jagran.com, 27 Dec 2017*
25. *साक्षात्कार– राजेन्द्री देवी, 83 वर्ष, ग्राम खलाड़ी, पुरोला, उत्तरकाशी*
26. *साक्षात्कार हरिमोहन, उपरोक्त*
27. *साक्षात्कार– योगेन्द्र लाल, उपरोक्त*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 72–77

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

अभिमन्यु अनत की कहानियों में प्रवासी साहित्य : एक दृष्टि

डॉ. मीनू देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हर्ष विद्या मंदिर पी. जी. कॉलेज, रायसी, हरिद्वार
E-mail : drmeenusaini1989@gmail.com Mob. +91 8393994743

विश्व स्तर पर हिन्दी का दायरा बढ़ता जा रहा है मूलत : प्रवास शब्द का अर्थ है विदेश गमन, विदेश यात्रा या घर पर रहना/इस प्रकार प्रवासी साहित्य से सम्बन्ध प्रवासी लोगों द्वारा लिखा गया साहित्य जो अपनी धरती पर न निवास कर दूसरे की धरती पर निवास करते हैं। यह प्रश्न बार–बार उठता है कि प्रवासी लोग कौन ? जो भारतीय भारत छोड़कर अन्य देशों में निवास करते हैं उन्हें ही प्रवासी भारतीय कहा जाता है, जो भी भारतीय विदेश रहने लिए गया है वह मूलतः भौतिक रूप से सम्पन्न रहा है। भारत से बाहर रहने वाले भारतीयों के चार वर्ग माने जाते हैं जो ढाई हजार साल पहले धर्म प्रचारक के रूप में विदेश गये परंतु लौटकर नहीं आये। उस समय 'महात्मा बुद्ध ने महायान, हीनयान और बज्रयान सम्प्रदायों का गठन किया। ये लोग उस सम्प्रदाय वाहन के सूचक हैं जिससे धर्म को जानने के लिए व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। महान चकवर्ती राजा अशोक ने 'बौद्ध धर्म ग्रहण करने के पश्चात इस धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए भिन्न–भिन्न देशों में बौद्ध भिक्षुओं को भेजा था। 'स्वामी विवेकानंद' ने सन् 1902 में और 'स्वामी रामतीर्थ सन् 1904 में हिन्दू धर्म का प्रचार– प्रसार करने के लिए अमेरिका गए। हिन्दू धर्म का प्रचार कर वापस अपने देश लौट आये। द्वितीय वर्ग में वे भारतीय आते हैं जो गिरमिटियों के रूप में एग्रीमेंट या शर्त बंदी प्रथा के अन्तर्गत फिजी, मॉरीशस, लिपिडाड, गुयाना, सूरीनाम, ग्वटामाला, दक्षिण अफ्रीका, मार्टिनी, जमैका आदि देशों में गये वापस नहीं आये, वहीं तृतीय वर्ग में वे लोग आते हैं जो अपनी रोजी–रोटी के लिए अमेरिका, इंग्लैण्ड, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में निवास कर गये। चतुर्थ वर्ग में उन भारतीयों को रखा जाता है जो शिक्षा, प्रशिक्षण, भारतीय राजकीय सेवा या विदेशी उपक्रमों में सेवा हेतु जाते हैं और वर्तमान के मनुष्यों के लिए यह एक स्वभाव/प्रचलन सा बनता जा रहा है कि वे विदेश में रहने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील प्राणी बनते जा रहे हैं। हिन्दी का दायरा भी विश्व में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दी की उम्र दिनोंदिन सहस्त्र वर्ष तक बढ़ती जा रही है। भारतीय राज्यों की सीमा को तोड़कर हिन्दी 1834 ई. में बाहर की ओर

अर्थात विदेशों में गमन कर चुकी थी, 1834 में गिरमिटियों का एक दल भारत से मॉरीशस पंहुचा था। इससे पहले शायद ही कभी इतनी बड़ी संख्या में भारतीय प्रवासी बनकर देश से बाहर गए हो। उस समय से लेकर आज तक दुनिया भर के देशों में बहुत सारे कारणों से करोड़ों गए हों। उस समय से भारतीय विदेशों में जाकर रहने लगे है। अधिक संख्या में उत्तर भारतीयों की संख्या अन्य भारतीय लोगों की अपेक्षा विदेश जाकर बसने में अधिक रही है। इस तरह उन भारतीयों के साथ भारतीय भाषा हिन्दी परदेश निवास में उनके साथ रही है।

इन्हीं प्रवासी भारतीयों में अभिमन्यु अनत ऐसे लेखक हुए हैं, जिन्होंने मॉरीशस में हिन्दी की अस्मिता को बचाये रखा है। अभिमन्यु अनत भारतवंशी हैं और मॉरीशस की धरती के लेखक हैं। मॉरीशस के हिन्दी लेखकों में अभिमन्यु अनत एकमात्र ऐसे रचनाकार हैं जिनकी कृतियों मे मॉरीशस की संस्कृत, आधुनिक जीवन के तनावों, सघर्षों एवं आस्थाओ के साथ भारतीयता को भी समान रूप से अभिव्यक्त करती आयी है, अभिमन्यु अनंत ऐसे लेखक है वे जिनने मॉरीशस देश के मोरिस और भारत के बीच साहित्य–सेतु बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हिन्दी लेखकों का जो समुदाय भारत से अमेरिका, जापान, जर्मनी, इंग्लैण्ड, पोलैंड आदि देशों में है इन देशों में से सबसे अधिक लेखक माँ हिन्दी लेखक मॉरीशस में हुए हैं जिसमें हारुदत, ठाकुरदत्त पाण्डेय, दीपचन्द बिहारी, वासुदेव विष्णुदयाल, बिजेंद्र कुमार भगत, मधुकर आदि उल्लेखनीय हैं इनके साहित्य का मूलाधार मारिशस का भारतवंशी समाज है। अभिमन्यु अनत को भारत में हिन्दू संस्कृति अधिक प्रिय है, इसलिए वह हिन्दू संस्कृति के मूल्यों को जीवन यापन के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने हमेशा विसंस्कृतिकरण की समस्या को सर्वाधिक विकट समस्या माना है, उन्होंने हिन्दी लेखन और हिन्दी को अपना जीवन स्वीकार किया है। "अभिमन्यु अनत जन्म 9 अगस्त,1937 मॉरीशस के उत्तर प्रांत स्थित त्रियोले गाँव में हुआ। उन्होंने 18 वर्षों तक हिन्दी का अध्यापन किया और वे 3 सालों तक युवा मंत्रालय में नाट्य कला विभाग में प्रशिक्षक रहे।"[1] अभिमन्यु अनत के दादाजी आगरा के निवासी थे और इनकी दादी बंगाल प्रान्त की थी। दादा जी का नाम अनत सिंह और नानाजी का नाम जवाहर सिंह था। इनके दादाजी दलालों के बहकावे में आकर मॉरीशस आ गये थे, उन्हें बताया गया था कि मॉरीशस में पत्थर उठाने पर उसके नीचे सोना मिलता है। अभिमन्यु के पिता जी का नाम पत्तिसिंह और माता जी का नाम सुभागिया है। इनके दादाजी विद्रोही स्वभाव के व्यक्ति थे। गोरो के साथ उनकी कई बार लडाई हुई और इनके पिताजी हमेशा मजदूरों को संगठित करने और दास नियति को समाप्त करने के लिए प्रयास करते थे। इनके पिताजी मजदूर से खेतिहार बने, लेकिन इनके दानी स्वभाव के कारण ये अपने बेटे अभिमन्यु अनत के लिए एक बीघा जमीन भी बचा नहीं पाये। अभिमन्यु अनत के भाई–बहनों में से केवल चार जीवित हैं इनकी दो बड़ी बहनें और एक छोटा भाई। इनकी माता जी विशेषकर माँ दुर्गा की पूजा–पाठ में अधिक विश्वास रखती थी। लेखक के घर का वातावरण बहुत धार्मिक था क्योंकि इनके घर में हमेशा रामायण और महाभारत पढ़ी जाती थी। अभिमन्यु अनत का विवाह एक अनाथ लड़की से हुआ, जिनका नाम सरिता है। इनकी पत्नी एक भारतीय गृहणी है। इनकी पत्नी पढ़ी लिखी नहीं थी परन्तु विवाह के पश्चात इन्होंने अपनी पत्नी को पढ़ाया लिखाया। अभिमन्यु अनत की कोई सन्तान नहीं है। अभिमन्यु अनत की घर की दयनीय स्थिति के कारण औपचारिक शिक्षा से वंचित रह गये। इनकी पढ़ाई

कॉलेज के तीसरे वर्ष बंद हो गयी। लेखक की माँ मजदूरी कर बच्चों का गुजारा करती थी और मुर्गियों तथा बकरियों को पालती थी। लेखक की माँ उन अभाव ग्रस्त दिनों में लेखक से कह देती थी कि कोई नौकरी क्यों नहीं करते। अभिमन्यु अनंत ने अपनी पढ़ाई के लिए अपने आप कष्ट उठाये, टयूशन पढ़ाया, बस के कन्डक्टर बने या बस गराज में मैकेनिक की नौकरी की अभिमन्यु अनत की रचानाओं पर भारतीयता का गहरा प्रभाव पड़ा यह बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की है। "मेरी धमनियों में मॉरीशस दौड़ता है, क्योंकि बना तो मैं मॉरीशस की मिट्टी में ही हूँ लेकिन रोशनी भारत ने दी। इसलिए अंग–अंग में मॉरीशस के साथ–साथ भारत हर वक्त विद्यमान रहता है।"[2]

मॉरीशस देश अरब, फ्रांसीसी अंग्रेजों द्वारा प्रशासित रहा है। उस समय हिन्दी बोलने वाले व्यक्ति भारत के बिहार और उत्तर प्रदेश से श्रमिकों के तौर पर ले जाये गये थे। समय बीतने के साथ–साथ भारत से गये श्रमिकों का एक पूरा समाज बना, यह भारत के संस्कार, संस्कृति और भाषा के एक सम्पूर्ण समाज के रूप में वहाँ बस गये। आधुनिक युग आते–आते अनेक संस्थाओं के माध्यम से, गाँधी जी जैसे युग पुरुष के प्रभाव से जन्मी साहित्यक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना। मॉरीशस में साहित्य में काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी आदि सभी विधाओं पर लेखन हुआ, अभिमन्यु अनत कहानी के क्षेत्र में बड़ा नाम है। यह कहा जाता है कि अभिमन्यु अनत ने खुद ही कहानियाँ नहीं लिखी बल्कि हिन्दी लेखकों को भी कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने पत्रिका का प्रकाशन कर कहानियाँ प्रकाशित की। अभिमन्यु अनत मॉरीशस के कहानी साहित्य को क्षेत्र दिया और नई दिशा प्रदान की। अभिमन्यु मनत के प्रकाशित कहानी संग्रह है– (1) खामोशी के चीत्कार–1976, (2) इंसान और मशीन, (3)वह बीच का आदमी–1981, (4) एक थाली समंदर–1987, (5) बवंडर बाहर–भीतर 2002, (6) अब कल आएगा यमराज 2003, (7) मातम पुरसी–2007, डॉ.कमलकिशोर गोयनका द्वारा सम्पादित और प्रकाशित कहानी संग्रह 'बरसते लम्हे'

अभिमन्यु अनत के कहानी संग्रहों का अध्ययन करने के बाद यह बात बड़ी उभरकर आती है कि लेखक अपने समय की धड़कन को पहचानने में बहुत कुशल थे। उनकी कहानियों में भारतीय पात्र है, अंग्रेज पात्र हैं और क्रियोल कहे जाने वाले पात्र है। इनकी दृष्टि सम्पूर्ण मॉरीशस समाज को समेटे हुए है। इनके कहानी संग्रह में कुछ कहानियाँ राजनेताओं के कारनामों से जुड़ी हुई हैं और उन्हें भली–भाँति उजागर करती हैं, अपने लोग तो बैंक के फिक्स डिपाजिट हैं, हर हालात में अपने रहते हैं। जो अब तक हमारा नहीं था, अब खरीदा जा चुका है और आखिरी वोट तक हमारा रहेगा।''[3] उपरोक्त कथन व्यक्ति विशेष की चतुरता को स्पष्ट करता है। अभिमन्यु अनत ने इन शब्दों को अपनी कहानी में शब्दबद्ध किया है। एक व्यक्ति प्रधानमंत्री प्रयोग करने के लिए हमेशा फोन पर बोलता है– हेलो, मैं प्रधानमंत्री के दफ्तर से बोल रहा हूँ एक बार एक दोस्त उससे पूछता है कि तुम बार–बार यहीं क्यों लगाए रहते हो तब वह उसे समझाता है कि "रामायण में कहा गया है न कि राम से बड़ा राम का नाम। जो काम प्राइम मिनिस्टर से नहीं हो पाता उसे उसका नाम लेकर चुटकी में करवा लेता हूँ ! भूल गये बच्चू पिछले महीने जब तुम अपनी बेटी की शादी के लिए भारत से पाँच सूटकेसों में साडियाँ, गहने और एक दर्जन व्हिस्की की बोतल लेकर आये थे तो इस नाम की ही महिमा से ही मैनें कस्टमवालों को तुम्हारा सूटकेस छूने तक से रोक लिया था।"[4] उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित

हो जाता है कि जो काम आम व्यक्तियों के वश में नहीं होते ऐसे कामों को मंत्री के नाम से कैसे साध दिया जाता है । जिससे समूचे लोकतन्त्र का मतदाता भली भाँति परिचित है। अभिमन्यु अनत ने अपनी कहानियों के माध्यम से राजनीतिक स्थिति को उजागर किया है। "देखा नाम का कमाल जिस प्रोमोशन के लिए कुछ लोग तीन–चार वर्षों से जूझ रहे हैं उसे नाम की महिमा से मैने यू देखते–देखते करवा दिया।"[5] अनत की कहानियों में राजनीतिक पक्ष देखने को मिलते हैं जो समकालीन समाज में फैले हुए हैं। किस प्रकार एक शिक्षित पत्रकार को मंत्रीगण अपमानित करते हैं।

महिला दिवस पर भाषण के माध्यम से अभिमन्यु अनत सभी को संदेश देते हैं कि "स्त्रियाँ सृष्टि के आरम्भ से मानवता और संस्कृति की रक्षक रही हैं। अब समय आ गया है कि वे सभी मानवीय मूल्यों के साथ–साथ अपने अधिकारों की रक्षा करें और मर्दों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर" सत्ता की बागडोर अपने हाथों में ले।"[6] अभिमन्यु अनत ने जनतंत्र से जुड़े बहुत से सत्य अपनी कहानी के माध्यम से जनता के सामने रखे हैं। इन्होंने जनतंत्र से जुड़े एक कटु सत्य का वर्णन अपनी कहानी 'अपने लोग' में किया है। जनता की वोट लेने के लिए मंत्री कितने गिर जाते हैं और आम जनता को वोट के चक्कर में मूर्ख बनाते हैं। जब चुनाव में जीत प्राप्त हो जाती है उसके बाद उन्हें पहचानने से भी इनकार कर देते हैं। जिन्हें चुनाव से पहले ये मंत्री अपने लोग कहते हैं। 'अपने लोग' कहानी व्यंग्य है उन सभी मंत्रियों पर जो ऐसे कार्य करते हैं 'अपने लोग' लोगों को कोई भूल नहीं सकता परंतु काम निकलवाने के बाद ये अपने लोगों को पहचानने से भी इनकार कर देते हैं। 'अपने लोग' कहानी में नेताओं के चुनाव पूर्व वादे और जीतने के पश्चात उनके अमानवीय व्यवहार का चित्रण हुआ है। इस कहानी का पात्र मंगरू नामक व्यक्ति है, जो कि पिछले तीस वर्षों से अपनी बस्ती के मालिक की कोठी में काम करता था और कई वर्षों से बस्ती की 'बैठक' का प्रधान था। जब वहाँ चुनाव होते हैं तब वह मंगरू को अपने पास बुलाता है। उसका मालिक चाहता है कि वह बस्ती वालों से कहें कि वोट उसके मालिक की डाली जायें, मगरू पाँच दिन तक वोट के लिए प्रचार–प्रसार करता है, लेकिन जब चुनाव निश्चित हुआ होता है उससे एक दिन पहले दूसरी पार्टी के नेता उनकी बस्ती में आते हैं मंगरू के दोस्त लोचन के घर खाना खिलाया जाता है बस्ती वाले और मंगरु दूसरी पार्टी के नेता से प्रभावित होकर वोट उसे दे देते हैं और वह जीत कर मंत्री बन जाता है जिस कोठी में मंगरू काम करता है उस कोठी का कोठी मालिक उससे बहुत नाराज हो जाता है और अपने कारखाने में काम करने वाले तीस लोगों को नौकरी से निकाल देता है। साथ ही कोठी में काम करने वाले व्यक्तियों में से मंगरू सहित तीन लोगों को कोठी खाली करने का आदेश सूना देता है। इस तरह से मालिक के व्यवहार को देखकर मंगरू की पत्नी उसे कानून का सहारा लेने के लिए कहती है।

इसके बाद मंगरू के दोस्त गफूर और लोचन मंत्री से मिलने जाते हैं उनको मंत्री से मिलने के लिए भी रिश्वत देनी पड़ती है। इसके बाद मंत्री दो मिनट के लिए मिलता है और उन्हें बिना देखे उनसे पूछता है कि कहाँ से आये हो ? मंगरू बडी हिम्मत के साथ अपनी परेशानी उसे बताता परंतु मंत्री बिना सुने ही वहां से उठकर गलियारे में चला जाता हैं। जात–पात के भेद–भाव को नहीं मानते, उन्हें सिर्फ वोटों से मतलब होता है और वोट मिलने के बाद जब वह

जीत जाते हैं, तो उनका व्यवहार बदल जाता है। उनकी ऐसी स्थिति को देखकर कोठी का मालिक कहता है कि "उन बड़े लोगों को बनाने वाले तुम लोग हो। मैं चाहता हूँ कि देश की भलाई के लिए तुम लोग भेड़ों की तरह सिर झुकाए झुंड के पीछे मत चलो। अब बदलने का समय आ गया है। सजमा। तुम लोग बिना सोचे–समझे जिस पार्टी को वोट देते आ रहे हो वह पार्टी अब गलत लोगों के हाथों में चली गई है इसलिए तुम लोग साथ चलो अब दूसरी पार्टी के साथ चलो।"[7]

अभिमन्यु अनत द्वारा लिखी गयी यह कहानी सत्य पर आधारित है भारत में जो पिछले चुनाव हुए उन चुनावों में बड़े नेताओं ने निम्न वर्ग के गरीब लोगों के घर जाकर भोजन करने के प्रसंग कई अखबारों में छपे हैं। राजनीतिक कहानियों के साथ ही अभिमन्यु अनत ने पारिवारिक कहानियों की ओर दृष्टि डालते हुए, परिवार के प्रसंगों को भी अपने कहानी संग्रह में लेखबद्ध किया है। अभिमन्यु अनत ने समाज के बडे वर्गों पर नहीं अपितु छोटे वर्गों को अपने साहित्य में स्थान दिया है। आधुनिक युग में मानवीय सम्बंधों को भी अर्थतन्त्र ने बहुत हद तक प्रभावित किया है। यह युग वैज्ञानिक उपलब्धियों और बदलती अर्थ–व्यवस्था पर आधारित है, पहले की तरह स्नेह सूत्रों में बँधे पारिवारिक सम्बन्ध अर्थतंत्र से संचालित होते हैं, धन सम्बन्धों पर भारी पड़ जाता है। वर्तमान में युवक और युवती अपना जीवन स्वच्छंद रूप से जीना चाहते हैं। अपनी पुरानी पीढ़ी जैसे दादाजी, दादीजी, माता–पिता के साथ रहना अब उन्हें अच्छा नहीं लगता, इस स्थिति में अब वृद्धाश्रम की संख्या बढ़ती जा रही है। यूरोप के देशों में यह सभ्यता देखने को मिलती है लेकिन भारत में इसका प्रचलन अभी बहुत कम है। किन्तु मॉरीशस जैसे देश में भी यह स्थिति दिखलाई पड़ती है। आज बुजुर्गो की स्थिति भारत में भी बहुत अच्छी नहीं रही, आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग अपने जीवन को बचाये रखने के लिए बहुत संघर्ष करता है। इस विषय पर अभिमन्यु अनत ने अपनी कहानी 'अपना जहान' में इसी स्थिति का वर्णन किया है। इस कहानी का पात्र दाऊद सुलेमान है जो कि जीवनभर की कमाई और कारोबार अपने हाथों उजड़ता हुआ देखता हैं। दाऊद सुलेमान बच्चों को अच्छी तालीम दिलाने के लिए गाँव छोड़कर शहर आता हैं, उसकी पत्नी मरियम क्रियोल भाषा न जानने के कारण शहर नहीं आना चाहती लेकिन दाऊद के समझाने से वह शहर आने को तैयार हो जाती है, दाऊद नामक व्यक्ति के दो बेटे है जमाल और रोशन, जब वह शहर आये जमाल आठ साल का था रोशन दो साल का, दाऊद बहुत मेहनत से शहर में अपने लिए जमीन–जायदाद बना लेता है।

वह अपनी पत्नी के कहने पर 'मरियम टेक्सटाइल' फैक्ट्री का उद्घाटन करता है, जिसमें लगभग 700 मजदूर काम करते हैं। समय का चक्र चलता रहता है उसके दोनों बेटों की शादी हो जाती है और कुछ समय पश्चात ही मरियम की मृत्यु हो जाती है। दाऊद अपनी जायदाद दोनों बेटों में बाँट देता है। इसके बाद सात कमरों वाले घर (अपना जहान) में दाऊद को सबसे छोटा कमरा दिया जाता है, उसे उसकी वृद्ध आवस्था का अहसास कराया जाता है इसके बाद वह वृद्ध आश्रम जाकर रहने लगता है। चार साल में उसकी बड़ी बहु ओर बेटा दो बार मिलने जाते हैं उन्हीं से पता चलता है कि छोटे बेटे की वजह से फैकट्री बंद होने के कगार पर खड़ी है। दाऊद नहीं चाहता की फैक्ट्री बंद हो और उसमें काम करने वाले मजदूर बेरोजगार हो जाये वह अपने बेटे से जाकर कहता है कि "नहीं जमाल मरियम टेक्सटाइल महज एक फैक्ट्री

नहीं, वह तुम्हारी विरासत है। तुम्हारी माँ की रूह है उसमें।"[8] दाऊद फैकट्री को बचाने के लिए बीमा कम्पनी के मैनेजर से बात करता है और संतोषजनक उत्तर मिलने पर अपने दोस्त रोहित को बीमा के बारे में बताता है कि जीवन में दो बार ही अपनी जिद छोड़कर उसने अपनी बीवी की बात मानी थी। पहली मस्जिद की जगह फैक्ट्री, रकम बनाने और बीमा करवाने की रोहित उसे हिदायत देता है कि तुम जुए में रकम लगा रहे हो। वह बस स्टेण्ड पर खड़ा हुआ मन ही मन विचार करता है कि मरियम होती तो क्या कहती इतने में एक बस शहर की जाने वाली आ जाती है। अभिमन्यु अनत ने इसका उत्तर पाठकों पर छोड़ दिया कि दाऊद किस बस में जाता है। दाऊद वृद्धाश्रम ही गया होगा क्योंकि उसके दोस्त रोहित ने उसे बता दिया था कि यह रकम भी उसके बेटे बर्बाद कर देंगे । अभिमन्यु अनत की कहानियों में समसामयिक जीवन के यथार्थ एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सजीव रूप से चित्रण हुआ है। यह कहानियाँ यथार्थ का बोध कराती है उनकी कहानियों मे व्यंग्य कसती नजर आती हैं उनकी कहानियाँ समाज की प्रत्येक समस्या को दर्शाती हैं, सामान्य जीवन जीने वाले श्रमिक, राजनितिक व्यवस्था, विदेशी अधिकार सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा किया गया शोषण, स्त्रियों की स्थिति, दलालों का वर्णन, परिवार में बड़े–बूढों के प्रति युवा पीढ़ी का व्यवहार, पति–पत्नी के सम्बन्ध, अंध विश्वास, भारतीय रीति–रिवाज, वेश्यावृति आदि का विस्तार से वर्णन अभिमन्यु अनत ने अपनी कहानियों में किया है। उनके द्वारा लिखा गया साहित्य, हिन्दी साहित्य को एक देन है उनकी कहानियाँ मानव जीवन को मूल्यांकित करती हैं और मनुष्य जीवन के विविध पहलुओं को गहराई से देखने परखने की चेष्टा करती हैं। अभिमन्यु अनत एक आशावादी लेखक के रूप मे हमारे सामने उपस्थित हुए हैं।

❐

सन्दर्भ –

1. *https:// hi.m.wikipedia.org (wiki)*
2. *अभिमन्यु अनत : 'एक बात चीत', डॉ. कमलकिशोर गोयंका, दिल्ली ज्ञान भारती,1985, पृ. 42*
3. *अभिमन्यु अनत : 'अब कल आएगा यमराज', ज्ञान गंगा दिल्ली 2010 पृ. 55*
4. *वही, पृ. 56*
5. *वही, पृ. 58*
6. *वही, पृ. 111*
7. *वही, पृ. 22*
8. *वही, पृ. 151*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 78–85

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

जनजातीय महिलाओं के आर्थिक जीवन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव (गढवाल की बुक्सा जनजाति के सन्दर्भ में)

पूजा दरमोड़ा
शोध छात्रा, एस.जी.आर.आर.पी.जी.कालेज, देहरादून
E-mail : poojadarmora75@gmail.com Mob. 7830492964

सारांश

स्वभाव से सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य को अपने जीवन के अनेक क्षेत्रों से सम्बन्धित विविध प्रकार की क्रियाओं का संपादन करना पडता है। जिसमें आर्थिक क्रिया विषेश रूप से महत्वपूर्ण मानी जाती है। आर्थिक क्रियाशीलता मनुष्य की उन सभी क्रियाओं में से महत्वपूर्ण है, जिससे वह अपना शारीरिक जीवन व अस्तित्व बनाये रखता है। वर्तमान परिवेश मे आधुनिकता का मानव जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। समय के बदलते चक्र के साथ ही मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं में भी बदलाव किया है। यही बदलाव धीरे–धीरे आधुनिकता के रूप में उभर कर सामने आया है। जहां तक जनजातियों में आधुनिकता का प्रश्न है, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही प्रारम्भ हो गया था। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में तीव्र गति से सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन हुये। लोगों में जागरूकता बढी, शिक्षा के स्तर में बढोत्तरी हुई। आधुनिकीकरण का प्रभाव समाज के हर क्षेत्र पर पड़ा। जनजातीय समाज भी आधुनिकीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। प्रस्तुत भाोध पत्र गढवाल की बुक्सा जनजाति की महिलाओं पर आधुनिकीकरण के प्रभाव पर केन्द्रित है।

मुख्य शब्द– आधुनिकीकरण, जनजाति, बुक्सा, परिवेश, प्रौद्योगिकी

प्रस्तावना

वर्तमान में ऐसा कोई समाज नहीं है जिस के निर्माता उसे आधुनिक बनाने का प्रयास ना कर रहे हो। आधुनिकीकरण की अवधारणा नवीन नहीं है, *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज* में लिखा है कि आधुनिकीकरण हाल ही में विकसित कोई नवीन अवधारणा नहीं है, बल्कि यह तो सामाजिक परिवर्तन की पुरानी प्रक्रियाओं के लिए नवीन शब्द है। जहां कम विकसित देश उन विशेषताओं को अपनाते हैं, जो कि अच्छे विकसित देशों के लिए सामान्य हैं।

आधुनिकीकरण की अवधारणा मूलतः अंग्रेजी के आधुनिक शब्द से ही बनी है। आधुनिक का आशय है– गत्यात्मकता और गत्यात्मकता का आशय है, परंपरावादी विचारों, मान्यताओं, आदर्शों आदि को छोड़कर नवींन विचारों, मूल्यों, समानता, प्रजातांत्रिक, वैज्ञानिक, स्वतंत्रता वादी आदि आधुनिक मूल्यों को आत्मसात करना। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया विश्व संस्कृति का प्रसार है, जो उन्नत प्रविधि, शिक्षा, विज्ञान, जीवन के बारे में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण, सामाजिक संबंधों के बारे में अलौकिक विचारधारा, जन संबंधों के लिए न्याय की भावना के आधार पर, जिसका संबंध एक प्रकार के आधुनिक जीवन के लिए विकल्प के चयन एवं इच्छाओं को समझने से है। आधुनिकीकरण वर्तमान समय में समस्त क्षेत्रों में व्यापक रूप से जोर पकड़ता जा रहा है इसके क्रमिक विकास का सामाजिक, धार्मिक,राजनीतिक संस्थाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है जिसने परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन ला दिया है।[1]

भारत में आधुनिकीकरण की नींव ब्रिटिश शासन काल में पड़ी, जिससे यहां के परंपरागत मूल्य जो कि लंबे समय से चले आ रहे थे आधुनिकीकरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इसी प्रक्रिया में भारत के उत्तराखंड राज्य का गढ़वाल क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा और यहां की जनजातियां भोटिया, जौनसारी व बुक्सा भी आधुनिकीकरण का हिस्सा बनी।

आधुनिकता के इस दौर मे ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां महिलाओं ने अपनी भूमिका सिद्ध न की हो। चाहे वह तकनीकी व प्रौद्योगिकी का क्षेत्र हो या व्यावसायिक, सांस्कृतिक या राजनीतिक का क्षेत्र हो, शिक्षा, सामाजिक कार्य, डॉक्टरी इन प्रमुख व्यवसायों में महिलाओं का अनुपात अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है। महिलाओं ने नगण्यता की स्थिति से स्वयं को निकालकर वर्तमान स्थिति तक पहुंचाया है। आधुनिक युग में अनेक परिवर्तन हुये हैं, जिसके चलते सामाजिक व आर्थिक जीवन में अनेक परिवर्तन देखने को मिल रहे है, और परिवर्तन का यह स्वरूप निरन्तर रूप से विश्व स्तर पर आज भी विद्यमान है। इसी परिवर्तन को अभिव्यक्त करने के लिए समाजशास्त्रियों ने आधुनिकीकरण जैसी अवधारणा का प्रतिपादन किया है। जिसके बहुत से आयाम हैं–जैंसे व्यक्ति, समूह एवं समाज के रूप में। आधुनिकता का सम्बन्ध एक विशेष तरीके के अनुभव व एक विशेष प्रकार की संस्कृति से है। जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक गठबन्ध होता है, जो इसे एक अलग पहचान देता है, आधुनिकीकरण का समावेश मुख्यतः खान–पान, रहन–सहन, वेशभूषा सभी में देखा जा सकता है किन्तु आधुनिकीकरण एक प्रकार से औद्योगिक अर्थव्यवस्था का आईना है, जिसे आधुनिकता कहते हैं। वर्तमान में आधुनिकता की व्याख्या इण्टरनेट व प्रौद्योगिकी, मोबाइल फोन, रेस्टोरेण्ट के सन्दर्भ में भी की जाने लगी है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र तैयार करने के लिये वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया गया है, जिसके अन्तर्गत उद्देश्यपूर्ण निदर्शन अवलोकन पद्धति, साक्षात्कार अनुसूची पद्धति के माध्यम से अध्ययन किया गया है। अवलोकन द्वारा शोध क्षेत्र से विषय का अध्ययन किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से चयनित महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि, आधुनिकीकरण के माध्यम से ग्रामीण समाज पर क्या–क्या परिवर्तन देखने को मिले हैं या किन–किन क्षेत्रों पर इसका प्रभाव पडा है। उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के माध्यम से 60

उत्तरदाताओं का चयन किया गया। प्राप्त आंकडों को वर्गीकृत कर वि लेशित किया गया है। इसके साथ ही उन सभी इकाइयों का अध्ययन किया गया है, जो आधुनिकीकरण से प्रभावित हुई हैं।

शोध क्षेत्र का संक्षिप्त विवरण

प्रस्तुत शोध पत्र में चयनित अध्ययन क्षेत्र गढवाल की बुक्सा जनजाति है। बुक्सा जनजाति गढवाल क्षेत्र के देहरादून जिले में सहसपुर, डोईवाला, व विकासनगर, हरिद्वार के लालढांग व पौडी गढवाल के दुगड्डा क्षेत्र में छोटी–छोटी ग्रामीण बस्तियों में निवास करती है। बुक्साओं की आम धारणा है कि वे राजस्थान के किसी राजपूत राजा के वंशज थे तथा राजघराने की किसी रानी से उनके वंश की उत्पत्ति हुई थी। बुक्साओं के कथनानुसार उन्हें मुगलों के भय से राजस्थान को छोड़कर तराई पहुंचना पड़ा था। बुक्सा महिलाओं की मान्यता है कि वे राजपूताने की रानियों के वंशज हैं और वे स्वयं को उच्च पंवार राजपूत वंश का मानती हैं। जो मुस्लिम आक्रमण के समय राजपूताने, धारा नगरी अथवा दक्षिण की ओर मध्य प्रदेश से भागकर तराई के वनों में आकर छुप गई थीं। इस प्रकार बुक्सा जनजाति स्वयं को राजपूतों का वंशज मानती है।[2] देहरादून के बोक्साओं को 'मेहरा' के नाम से भी पुकारा जाता है, तथा वे स्वयं को 'कुषावंशीय राजपूत' बतलाते हैं।[3] बुक्सा जनजाति की जनसंख्या 2011 के जनगणना के अनुसार, गढवाल क्षेत्र में 22700 है जिसमें 11,979 पुरूष और 10,717 महिलाओं की संख्या है।[4]

गढ़वाल क्षेत्र की बुक्सा जनजाति प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से सम्पन्न है, यहां महिला श्रम का भी अभाव नहीं है, किन्तु संसाधनों के सही क्रियान्वयन के अभाव में आर्थिक विसंगतियां विद्यमान रहती हैं। महिलाओं का एक बहुत बडा वर्ग वन आधारित क्रियाओं पर अश्रित हैं। इस आधुनिक समय मे व्यवसायीकरण की तेजी में महिलायें परम्परागत कुटीर उद्योगों व स्वयं सहायता समूह से जुड़ रही है। किन्तु सरकारी योजनओं के तहत संचालित लघु कुटीर उद्योगों के लाभ से वह स्वयं को वंचित मानती है, जिसका कारण वह अपना निरक्षर होना बताती है।

आर्थिक महत्ता का यह समय महिलाओं को आर्थिक रूप से अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। महिलाओं में आज भी उनके परम्परागत उद्योगों को लेकर जिज्ञासा विद्यमान है, परम्परागत व्यवसायों का भी आधुनिकीकरण का चलते कायांतरण हो चुका है, जिससे उत्पादों की गुणवत्ता भी बढ़ गई है, और उनके मूल्यों में भी वृद्धि हुई। अपेक्षाकृत यदि हम बुक्सा समाज की महिलाओं की बात करें तो, यह गढवाल क्षेत्र की अन्य जनजातीय महिलाओं से कमतर स्थिति में है, किन्तु यदि बुक्सा समाज की निरक्षर महिलाओं का आंकलन करें तो यह स्पष्ट देखने को मिलता है कि इस स्थिति पर जीवन निर्वाह करने वाली महिला में भी आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। इनमें भी फैशन, पहनाव, रहन–सहन आदि पर काफी भिन्नता देखने को मिल रही है। आधुनिकीकरण ने प्रत्येक जनजातीय समुदाय को भिन्न–भिन्न तरीके से प्रभावित किया है, इसी क्रम में गढ़वाल की बुक्सा जनजाति की बात की जाए तो इस समुदाय में आधुनिकीकरण सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि क्षेत्रों में देखने को मिलता है। इस जनजातीय समुदाय की महिलाओं के आर्थिक जीवन को आधुनिकीकरण ने किस प्रकार प्रभावित किया है इसका विश्लेषण प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है तथा जिसे निम्न बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

शैक्षिक क्षेत्र में पर प्रभावः–शिक्षा एक ऐंसा माध्यम है जिससे मनुश्य का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है, वर्तमान में शिक्षा सभी सामाजिक प्राणियों की आवश्यकता बन गई है, जनजातियां आज शिक्षा के प्रभाव से उन्नति के मार्ग पर अग्रसर है, किन्तु उन्नति की इस दौड़ में बुक्सा जनजाति आज भी बहुत पीछे हैं। क्षेत्रीय भ्रमण के बुक्सा महिलाओं से लिए गये साक्षात्कारों के आधार पर यह कहा जा सकता है,कि यहां महिलायें आज भी शिक्षा के प्रति उदासीन है, 60 उत्तरदाताओं में से 40 महिलाओं की राय शिक्षा के प्रति उदासीन है। बाकी 30 महिलायें 18–22 वर्ष की छात्रा है, जो शिक्षा ले रही है। शासन स्तर पर जो शिक्षा के प्रति प्रचार–प्रसार किया जा रहा है, उसका यहां की महिलाओं पर खास फर्क नहीं पडा है।[5] निम्नलिखित तालिका इस बात को स्पष्ट करती है–

तालिका क्र.–1

क्र.	शिक्षा के प्रति जागरूकता	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	20	33.3
2	नहीं	40	66.6
	योग	**60**	**100**

स्रोत– शोध सर्वेक्षण

आर्थिकी के क्षेत्र में प्रभाव– बुक्साओं का जीवन कृषि व्यवस्था पर आधारित है। कृषि के सहायक पेशे के रूप में यह पशुपालन भी करते हैं। इसके साथ ही जानवरों का शिकार, लकड़ी काटकर बेचना, चटाई, डलिया (टोकरी) बनाना, खाट–चारपाई का निर्माण, रेशम कीट पालन करना अन्य इनके द्वितीयक पेशे हैं,जिन्हें करने में महिलाएं मुख्य भूमिका निभाती हैं।[6] शिक्षित बुक्सा महिलाएं राजकीय तथा गैर सरकारी सेवाओं में भी कार्यरत है।इनके द्वारा किए जाने वाले आर्थिक क्रियाकलाप निम्नलिखित हैं –

1. कृषि कार्य

बुक्सा जनजाति की मूल आर्थिक गतिविधि कृषि थी। परंतु वर्तमान में ग्राम सर्वेक्षण में यह बात उभर कर आती रही कि नशे की आदत के कारण गैर जनजाति समुदाय द्वारा इनसे जमीन का सौदा कर लिया जाता है। कुछ गैर जनजातीय समुदाय निरक्षर बुक्साओं का फायदा उठाकर उनकी जमीन पर कब्जा कर लेते हैं, जिसका परिणाम यह है कि यह बुक्सा समुदाय अपनी जमीन पर कृषि मजदूर के रूप में कार्य कर रहे हैं। कुछ ही बुक्सा परिवार ऐसे हैं जो भूमि के स्वामी हैं। कृषि का का कार्य प्रायः स्त्री व पुरुष दोनों ही करते हैं महिलाएं हल नहीं चलाती हैं, लेकिन बुवाई और निराई–गुड़ाई में उनकी प्रधानता है।[7]

2. पशुपालन

बुक्सा जनजाति कृषि के सहायक पेशे के रूप में पशुपालन करती है। यह पशुओं में गाय भैंस पालते हैं जिनकी देखभाल महिलाओं द्वारा ही की जाती है। इन जानवरों के लिए घास लाना, दूध दुहना आदि कार्य महिलाएं ही करती हैं।[8]

3. रेशम कीट पालन

बुक्सा जनजाति क्षेत्र में रेशम कीट पालन विभाग द्वारा रेशम कीट पालन योजना चलाई गई है इस योजना का आरंभ बुक्सा ग्रामों में तृतीय पंचवर्षीय योजना से किया गया था।[9] देहरादून जिले के ग्राम माजरी ग्रांट, बक्सर वाला,डोईवाला, शाहपुर तितरपुर, अथोवाला में निवास करने वाली बुक्सा जनजाति के परिवारों में रेशम कीट पालन किया जाता है। इसके अंतर्गत महिलाएं ही शहतूत के पत्ते लाती हैं तथा रेशम कीटों की साफ–सफाई आदि महिलाएं ही करती हैं। रेशम कीटों द्वारा निर्मित रेशम को रेशम विभाग में जमा किया जाता है। प्रति किलोग्राम के अनुसार रेशम की कीमत तय होती है, जिससे बुक्सा महिलाओं को आय प्राप्त होती है।[10]

4. परंपरागत कुटीर उद्योग–

S **मंदरा चटाई बनाना**– बुक्सा जनजाति के ग्राम उद्योग में मंदिरा बनाना प्रमुख कुटीर उद्योग है। इस कार्य को महिलाएं ही करती हैं। मंदरा यहां सर्दियों में बनाया जाता ह\ जिसको कि यह लोग धान की पराली से बनाते हैं जो कि इन्हें ठंड से बचाता है। बुक्सा सन को चारपाई की चौड़ाई के बराबर चौड़ा ही बनाते हैं। वर्तमान में ाोध सर्वेक्षण से निकलकर आया कि भोटो देवी, ग्राम तीपरपुर, देहरादून इस कार्य को करती हैं तथा चटाईयों को बाजारों में बेचती भी हैं जिससे इन्हें आय प्राप्त होती है।**11**

S **टोकरी बनाना**– बुक्सा स्त्रियां टोकरी बनाने का कार्य भी करती हैं। टोकरी बनाने हेतु शहतूत की पतली–पतली डंडियों तथा घास को उपयोग में लाया जाता है। इन टोकरियों को बाजारों में सब्जी के लिए बेचा जाता है। इनका प्रयोग यह स्वयं अपने लिए भी करते हैं।[12]

S **बान बनाना**– बुक्साओं का यह प्रमुख कुटीर उद्योग है। बुक्सा अपने खेतों में सन की खेती भी करते हैं, जिसके रेशे से पशुओं को बांधने के लिए रस्सियां, चारपाई बुनने हेतु बान तैयार किया जाता है। इसे भी महिलाओं द्वारा ही किया जाता है तथा स्थानीय बाजारों में बेचा जाता है।[13]

S **गुफलें बनाना**– बुक्सा महिलाएं गाय, भैंस के गोबर से गुफलें बनाती हैं। ये आकार में रोटी की तरह होते हैं, जिन्हें कच्चे गोबर से बना कर सुखा दिया जाता है। बाद में इनका प्रयोग आग जलाने हेतु किया जाता है। कुछ महिलाएं इन्हें बेच कर अपनी आजीविका भी चलाती हैं।[14]

बुक्सा जनजाति की महिलाओं का वर्तमान व्यावसायिक विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है–

तालिका क्र. –2

क्र.	व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
1	पारंपरिक	40	66.6
2	सरकारी	05	8.3
3	गैर–सरकारी	15	25
	कुल	**60**	**100**

स्रोत– शोध सर्वेक्षण[15]

तालिका के अनुसार 66.6 प्रतिशत् महिलायें आज भी अपने पारम्परिक व्यवसायों का अपनायें हुये हैं, जिसमें डालिया बनाना, टोकरी, रेशमकीट, खाट–चारपाई का निर्माण करना वही 85 प्रतिशत् महिलायें सरकारी सेवा तथा 85 प्रतिशत् महिलायें गैर–सरकारी पदों पर कार्यरत है।

तालिका क्रं–3

क्र.	आय के साधन	संख्या	प्रतिशत
1	मजदूरी	10	16.6
2	कृषि कार्य	25	41.6
3	कताई / बुनाई / व्यापार	15	25
4	राजकीय सेवा	05	8.3
5	गैर–सरकारी	05	8.3
	योग	**60**	**100**

स्रोत– शोध सर्वेक्षण[16]

उपरोक्त तालिका से यह ज्ञात होता है, कि वर्तमान में 25 प्रतिशत् महिलायें सरकारी सेवा 9.5 प्रतिशत् महिलायें गैर–सरकारी सेवाओं में अपनी सेवा प्रदान कर रही है, 10 प्रतिशत् महिलायें मजदूरी, 25 प्रतिशत् महिलायें कृषि कार्य कर रही है। 15 प्रतिशत् कताई / बुनाई कर अपनी वस्तुओं को बाजारों में बेचती है, जिससे वह अपने परिवार की आर्थिक कमी को पूरा करके तथा प्राप्त आय से परिवार को आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

महिलाओं की मासिक आय पर आधारित विवरणः– महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठाने में उसके द्वारा अर्जित आय का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बुक्सा महिलायें पारम्परिक व्यवसाय एवं प ुपालन से आय अर्जित करती है। बुक्सा महिलाओं की मासिक आय का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है –

तालिका क्रं–4

क्र.	मासिक आय वर्ग	संख्या	प्रतिशत
1	500–3000	38	63.33
2	3001–5500	22	36.66
3	5501 से ऊपर	00	0
	कुल	**60**	**100**

स्रोत– शोध सर्वेक्षण[17]

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत महिलाओं में वर्तमान समय की 633 प्रतिशत् महिलायें 500 से 3000 की आय वर्ग की है, तथा 22 प्रतिशत् महिलायें 3001–5500 के आय वर्ग के भीतर आती है। वर्तमान समय में महिलाओं की आय बढी है, किन्तु बढती हुई मंहगाई को देखते हुये उनकी आय बहुत कम तथा गरीबी और निर्धनता उसी स्तर की है। महिलाओं की आय कम होने तथा आवश्यकताओं के बढ जाने से बचत में कमी देखने

को मिलती है। जो भी बचत हो पाती है, उसके लिए महिलाओं को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जिस कारण उन्हें अन्य लोगों से समय–समय पर ऋण भी लेना पडता है। महिलाओं की बचत का विवरण निम्नलिखित है–

तालिका क्रं–5

क्र.	बचत का विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	बचत करती है	48	80
2	बचत नहीं करती है	12	20
	योग	**60**	**100**

स्रेात– शोध सर्वेक्षण[18]

उपरोक्त तालिका से स्पश्ट होता है कि वर्तमान में 80 प्रतिशत् महिलायें बचत करती है तथा 20 प्रतिशत् महिलायें बचत नहीं करती है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में महिलाओं में आर्थिक, सामाजिक, व राजनैतिक चेतना को लेकर वृद्धि हुई है। वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना चाहती है, उनमें आत्मविश्वास बढेगा और वह प्रगति की ओर अग्रसर होंगी। उपरोक्त आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आधुनिकता के इस युग में आज भी बुक्सा महिआयें शिक्षा के प्रति सजग नहीं हुई है। वे स्वयं को घर की चारदिवारी तक स्वयं ही सीमित रखना चाहती है। मात्र 20 प्रतिशत महिलाओं ने शिक्षा के प्रति रूचि दिखायी है। बुक्सा महिलायें आज भी कृषि–पशुपालन, बढाई–बुनाई, तक सिमट कर रह गई हैं, सरकारी व गैर सरकारी स्थानों पर उनकी उपस्थिति ना के बराबर है। अज्ञानता के कारण आज भी यहां की महिलायें सरकार द्वारा चलाई गई छात्रवृत्ति योजना, इंदिरा आवास योजना से अनभिज्ञ हैं। महिलाओं को समाज की धुरी माना जाता है, परिवर्तन के इस दौर में बुक्सा महिलाओं का मानना है कि आधुनिकीकरण के फलस्वरूप भी इनकी स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है, उत्तरदाता यह मानती हैं कि आधुनीकिकरण के फलस्वरूप भले ही खान–पान, परिधानों में परिवर्तन आया हो किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं आया है।

❐

सन्दर्भ –

1. *खालीकुज्ज़मा,(2011),मुस्लिम महिलाओं में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का समाजशास्त्रीय अध्ययन, शोध प्रबंध, वी.बी. एस. पूर्वांचल विश्वविद्यालय, पृ. 1*
2. *रावत, अजय,(1996), तराई के वन और वनवासी, नैनीताल, पृ. 73,171–173*
3. *टम्टा, अंकिता, आजादी के बाद उत्तराखण्ड की जनजाति महिलाओं का समग्र इतिहास, पृ.15*
4. *Source Ministry of Tribal Affairs.http://tribal.nic.in/ST/Statistics85.pdf*
5. *क्षेत्रीय भ्रमण, गांव तीपरपुर, देहरादून, 2022*
6. *पूर्वोक्त*
7. *पूर्वोक्त, पाण्डेय, सुभाश, (2007), पृ. 186*

8. साक्षात्कार,ममता देवी, उम्र 45 वर्ष, ग्राम माजरी ग्रांट देहरादून
9. पाण्डेय, सुभाष, (2007), उत्तराखण्ड़ की बोक्सा जनजातिः सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में एक ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबंध, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, पृ. 186
10. साक्षात्कार,रश्मि, उम्र 18 वर्ष, ग्राम बक्सरवाला (डोईवाला) देहरादून
11. साक्षात्कार,भोटो देवी, उम्र 82 वर्ष, ग्रम तीपरपुर, देहरादून
12. साक्षात्कार, रीना देवी, उम्र 25 वर्ष ग्राम भाहपुर/कल्याणपुर, देहरादून
13. साक्षात्कार,वीरवती देवी, उम्र 46 वर्ष, ग्रम आथोवाला, देहरादून
14. वही।
15. शोध सर्वेक्षण क्षेत्र देहरादून (ग्राम बक्सरवाला, तीपरपुर, कल्याणपुर, आथोवाला)।
16. वही
17. वही

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 86–100

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिला सशक्तिकरण

भावना
शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय कालेज बागेश्वर, उत्तराखण्ड
E-mail : manralbhawna5@gmail.com
डॉ फखरुद्दीन राही
सहायक प्राध्यापक, विभागध्यक्ष वाणिज्य, राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय कालेज बागेश्वर

सारांश

ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं शहरी क्षेत्र की महिलाओं की तुलना में सामाजिक और आर्थिक रुप से अपने अधिकारों से वंचित रही है जिससे अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं अपने कल्याण व समाज के कल्याण के लिए कोई भी योगदान नही दे पाई है इसलिए महिला सशक्तिकरण उत्थान के लिए स्वयं सहायता समूह उनके जीवन की बाधाओं और चुनौतियों पर नियंत्रण करने का एक माध्यम है। जिससे उनकी जीवनशैली में सुधार हो सकें। स्वयं सहायता समूह महिलाओं के जीवन में प्रभावी विकल्प बन सकता है जिससे जुडकर महिलाएं अपने जीवन में निर्णय लेने, जीवन की योजना बनाने और संसाधनों तक अधिक पहुंच बनाने में सफल हो सकेगी और साथ ही देश के विकास में महिलाएं आर्थिक–सामाजिक रुप से अपना योगदान देंगी। भारत सरकार एंव राज्य सरकार द्वारा महिलाओं व पुरुष में समानता के लिए स्वयं सहयता समूह के माध्यम से महिलाओं को प्रेरित किया जा रहा है। ताकि महिलाएं समूह के द्वारा एकजुट होकर अपनी आर्थिक–समाजिक स्थिति बेहतर बना सकें और अपने लिए स्वरोजगार उत्पन्न कर सकें। इस अध्ययन में महिलाओं को सशक्त बनानें में स्वयं सहायता समूह की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। देश की महिलाओं के आर्थिक–सामाजिक विकास पर चर्चा की गयी है।

मुख्य शब्द : महिला सशक्तिकरण, स्वयं सहायता समूह, उत्तराखण्ड।

परिचय

आम तौर पर देखा गया है कि अमीर या गरीब की परवाह किए बिना, शहरी या ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं प्राचीन काल से लेकर आज तक अपने दैनिक जीवन में अलग अलग पहलुओं में उनका शोषण होता है। विशेष रूप से गांव की गरीब महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। इसलिए उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के उत्थान के लिए उचित शिक्षा प्रदान करके और उन्हें अपने आन्तरिक छिपी शक्ति के बारे में जानने के लिए उन्हें

संवेदनशील बनाकर एक सर्वांगीण विकास की आवश्यकता है। एक कहावत है (संयुक्त हम खड़े हैं, विभाजित हम गिरते हैं)। प्राचीनकाल में शिकार के दिनों से ही लोग समूहों में रहते थे। अतः जीविका और सुरक्षा के लिए समूहों में रहना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृति है। एक साथ रहने की भावना और स्वयं को खतरों और असुरक्षाओं से बचाने की ललक 'मंत्र' है जो स्वयं सहायता समूह बनाने के मूल में निहित है। गरिमापूर्ण जीवन प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। सम्मानजनक जीवन में निरतंर आय प्राप्त करने और गरीबी की बेडियों को दूर करने के लिए स्वरोजगार एक महत्वपूर्ण कदम हैं। 1999 में भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा सर्वप्रथम प्रभावी रोजगार कार्यक्रम "स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना" के नाम से एक योजना चलायी गयी थी। जिसको बदलकर केन्द्रीय स्तर पर राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन और राज्य स्तर पर राज्य राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन शुरु किया गया है दीनदयाल अन्तोदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन ग्राम्य विकास विभाग–भारत सरकार की महत्वपूर्ण परियोजना है। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन का आरम्भ सर्वप्रथम वर्ष 2011 में किया गया था। तदुपरांत वर्ष 2016 में योजना में कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ दीनदयाल अन्तोदय योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के रुप में पुनरुद्घाटन किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य समर्थ संस्थाओं का निर्माण तथा सतत आजीविका कार्यक्रमों का क्रियान्वयन विशेषतः जिनमें ग्रामीण महिलाओं एंव संस्थाओं की विशेष भागीदारी हो सके और गरीबी उन्मूलन की दिशा में प्रयास करना है। राज्य में परियोजना के धरातल पर सफल क्रियान्वयन एंव देखरेख हेतु वर्ष 2013–2014 में राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन का गठन किया गया। प्रो राधाकृष्ण समिति ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा स्थापित एसजीएसवाई से संबंधित मुद्दे अप्रैल, 2008 में तदनुसार, प्रोफेसर राधाकृष्ण समिति की सिफारिशों के आधार पर, एसजीएसवाई को राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका 129 मिशन (एन.आर.एल.एम.) के रूप में पुनर्गठित किया गया है जिसे बाद में लागू करने के लिए "आजीविका" नाम दिया गया है। यह देश भर में एक मिशन मोड में है। यह कार्यक्रम औपचारिक रूप से 3 जून, 2011 को शुरू किया गया था।[1]

उत्तराखण्ड राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन अत्यधिक रुप से एक प्रक्रिया उन्मुखी कार्यक्रम है जिसमें ग्रामीण समुदायों के विकास हेतु मानवीय एंव भौतिक स्त्रोतों के बडे पैमाने पर लामबंध कर उनका विकासोन्मुखी कार्यक्रमों हेतु व्यावहारिक प्रयोग निहित है। जिस कारण कार्यक्रम का क्रियान्वयन चरणबद्ध रुप में किया गया, जिसके फलस्वरुप वर्ष 2014–15 में 10 विकासखण्ड, 2016–17 में 5 विकासखण्ड, 2017–18 में 15 विकासखण्डों एंव 2019–20 में 35 विकासखण्डों में योजना का क्रियान्वयन किया गया।

साहित्य अवलोकन :

साहित्य की समीक्षा शोधकर्ता को अध्ययन के क्षेत्र के बारे में पूरी तरह से समझने में मदद करती है और अध्ययन के विभिन्न पहलुओं का स्पष्ट चित्रण प्राप्त करने में सक्षम बनाती है। संबंधित पहलुओं पर दूसरे शोधकर्ताओं द्वारा कहीं और किए गए विभिन्न अध्ययनों की समीक्षा की जा सकती है और इससे शोधकर्ता को किए गए विशेष अध्ययन के विभिन्न आयामों को समझने में मदद मिलती है। यह अनुसंधान के एक विशेष क्षेत्र में अंतराल को भरने में भी मदद करता है और अध्ययन के विषय के संबंधित पहलुओं पर आगे के शोध की संभावनाओं का पता लगाने की सुविधा प्रदान करता है।

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

आचार्य और घिमिरे (2005) का मानना है कि सशक्तिकरण का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक आयामों के संदर्भ में विश्लेषण किया जा सकता है। उन्हें लगता है कि महिलाओं की पहुंच बढाने के लिए मौजूदा भेदभावपूर्ण विचारधारा और संस्कृति को बदलना, जो महिलाओं के अस्तित्व के लिए पर्यावरण को निर्धारित करती है।[2] **मीनाक्षी,(2004)** महिला सशक्तिकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में संदर्भित किया जाता है, जिसके द्वारा महिलाएं आत्मनिर्भरता बनाने, अपने स्वतंत्र अधिकार का दावा करने, चुनाव करने और संसाधनों को नियंत्रित करने के लिए स्वयं को संगठित करने में सक्षम हो जाती हैं जो चुनौतीपूर्ण और अपनी अधीनता को समाप्त करना।[3] **लीला मेनन, (2004)** उन्होंने यह बताया है कि जिस समाज में पुरुष और महिला दोनों का हिस्सा है वहां भी महिलाओं को सबसे कमजोर कड़ी माना जाता है, जिसे समाज को मजबूत करने के लिए मजबूत किया जाना चाहिए और यह उन्हें सशक्त बनाने से ही संभव है। नेहरू ने कहा, "महिलाओं का उत्थान होना चाहिए या राष्ट्र का उत्थान होना चाहिए, क्योंकि अगर एक महिला का उत्थान होता है, तो समाज और राष्ट्र का उत्थान होता है"।[4] **रासुरे (2002)** ने अपने अध्ययन में यह बताया है कि स्वंय सहायता समूह की महिलाओं के स्वीकार किया है कि सशक्तिकरण को बाहरी रुप से प्रेरित किया जाना चाहिए ताकि महिलाएं स्वायत्तता के स्तर का प्रयोग कर सके ताकि महिलाएं अपने जीवन को देख सकें। उन्होनें कहा है कि स्वंय सहायता और निर्भरता गरीबों के विकास के साथ–साथ जीवित रहने की रणनीतिंया है।[5]

स्वंय सहायता समूह की अवधारणा

बी. सुगुना (2006) ने अपनी पुस्तक एम्पावरमेंट ऑफ रूरल वीमेन थ्रू सेल्फ हेल्प ग्रुप्स 2006 में इस बात का विश्लेषण करने का प्रयास किया है कि गरीबी से निपटने, स्थिति में सुधार लाने के लिए महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण से न केवल व्यक्तिगत महिलाओं और महिला समूहों को बल्कि समग्र रूप से परिवारों और समुदाय को भी विकास के लिए सामूहिक कार्रवाई के माध्यम से लाभ मिलेगा।[6]

कृष्णा कोठाई (2000) ने बताया कि भारत में ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए उन्हें छोटे समूहों में संगठित करने की आवश्यकता है। महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण और प्रभावी उपकरण हैं। सरकारी व गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से, कई स्वयं सहायता समूहों की स्थापना की जा रही है और महिला विकास के क्षेत्र में काफी संतोषजनक ढंग से कार्य कर रहे हैं।[7] **सुंदर राज (2004)** ने अपने अध्ययन बताया है कि एस.एच.जी. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। एसएचजी ग्रामीण विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने और सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सामुदायिक भागीदारी प्राप्त करने के लिए वैकल्पिक उपलब्ध हैं।[8]

शोध प्रविधि और आंकडा संग्रहण

वर्तमान शोध को मूल रूप से तकनीक में 'सर्वेक्षण' के साथ 'वर्णनात्मक अध्ययन' के नमूने के रूप में किया गया है। मुख्य रूप से शोध की विश्लेषणात्मक और अनुभवजन्य पद्धति के संयोजन पर आधारित है। आंकडा संग्रह के उद्देश्य से प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों

को ध्यान में लिया गया है। प्राथमिक आंकडा के संग्रह के लिए शोधकर्ता द्वारा एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया है। और द्वितीयक आकंडा संग्रह के लिए सरकारी अभिलेखों, उपलब्ध प्रकाशित और अप्रकाशित साहित्य के दस्तावेजों से जानकारी एकत्र की गई है, जिसमें समितियों और आयोगों के प्रतिवेदन भी शामिल हैं।

वर्तमान अध्ययन के उद्देश्य

1. स्वंय सहायता समूह के माध्यम से लाभार्थी की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. स्वंय सहायता समूह के प्रति लाभार्थी की जागरुकता के स्तर का अध्ययन करना।
3. स्वंय सहायता समूह के माध्यम से सशक्तिरण प्राप्त लाभों का आकलन करना।

वर्तमान अध्ययन की परिकल्पना –

$H_0$1: **समूह में जुडने के बाद महिलाओं की आर्थिक–सामाजिक स्थिति में सकारात्मक प्रभाव पडा है।**

H_0a. वैवाहिक स्थिति के आधार पर महिला की आर्थिक–सामाजिक स्थिति में सकारात्मक प्रभाव पडा है।

H_0b. शैक्षिक योग्यता के आधार पर महिला की आर्थिक–सामाजिक स्थिति में सकारात्मक प्रभाव पडा है।

H_0c. परिवार की आय सन्तुष्टि के आधार पर महिला की आर्थिक–सामाजिक स्थिति में सकारात्मक प्रभाव पडा है।

$H_0$2: **समूह के प्रति महिलाओं में कोई जागरुकता नही है।**

H_0a. वैवाहिक स्थिति के आधार पर समूह के प्रति महिलाओं में कोई जागरुकता नही है।

H_0b. भौक्षिक योग्यता के आधार पर समूह के प्रति महिलाओं में कोई जागरुकता नही है।

H_0c. परिवार की आय सन्तुष्टि के आधार पर समूह के प्रति महिलाओं में कोई जागरुकता नही है।

$H_0$3: **समूह में भाामिल होने के बाद भी महिला सशक्तिरण के स्तर में कोई सुधार नही है।**

H_0a. वैवाहिक स्थिति के आधार पर महिला सशक्तिरण के स्तर में कोई सुधार नही है।

H_0b. शैक्षिक योग्यता के आधार पर महिला सशक्तिरण के स्तर में कोई सुधार नही है।

H_0c. परिवार की आय सन्तुष्टि के आधार पर महिला सशक्तिरण के स्तर में कोई सुधार नही है।

नमूने का चयन

इस चरण में विकासखण्ड भिकियासैंण जिसमें 99 ग्राम पंचायत है। जिसमें एन.आर. एल.एम. योजना के अन्तर्गत 52 ग्राम पंचायतों में समूह बनाए गये है। और एन.आर.एल.एम. योजना के तहत इसमें कुल स्वंय सहायता समूह की सख्या 191 है। अध्ययन के उद्देश्य से शोधकर्ता द्वारा 100 समूह से 100 महिलाओं का यादृच्छिक रुप से प्रत्येक समूह से एक सदस्य का चयन किया गया। जिसमें 100 लाभार्थियों में से 72 नमूना पूर्ण रुप से प्रशनावली भरी गयी है जिसमें चयनित आबादी में अध्ययन के लिए यादृच्छिक नमूनाकरण अपनाया गया है।

आंकडो के विश्लेषण में उपयोग की गयी तकनीक

अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार, प्राथमिक और द्वितीयक आंकडो दोनों को विभिन्न गुणात्मक और मात्रात्मक सांख्यिकीय उपकरणों के साथ व्यवहार किया गया है। सामाजिक विज्ञान के लिए सांख्यिकीय पैकेज (SPSS) का उपयोग मात्रात्मक आंकडा विश्ले ाण के लिए किया गया है जैसे– गैर पैरामीट्रिक–क्रसकोल वालिस), माध्य का उपयोग किया गया है।

आंकडो का विश्लेषण

एस.एच.जी. की रुपरेखा जिससे प्रतिवादी संबंधित है, जनसांख्यिकीय स्थिति के तहत शिक्षा की स्थिति, वैवाहिक स्थिति आदि को लिया गया है। ग्रामीण क्षेत्र में एसएचजी से महिला सशक्तिकरण के उत्थान का आकलन करने के लिए 72 समूह के नमूने को लिया गया है नीचे तालिका में इसका विवरण निम्न प्रकार है–

Demographic profile Analysis

तलिका सख्या–1.1

Demographic profile		Frequency	Percent
Marital Status	Married	55	76.4
	Unmarried	9	12.5
	Divorced	5	6.9
	Widow	3	4.2
	Total	72	100.0
Education	Illiteracy	5	6.9
	Literacy	18	25.0
	Highschool	20	27.8
	Iintermediate	21	29.2
	Graduation	8	11.1
Family income v/s satisfied	Satisfied	33	45.83
	Dissatisfied	39	54.17
	Total	72	100.0

प्रतिवादी वैवाहिक स्थिति के आधार पर

तालिका 1.1 प्रतिवादी की वैवाहिक स्थिति को दर्शाती है विवाहित 76.4%, अविवाहित 12.5%,तलाकशुदा 6.9%,विधवा 4.2% है आंकडो से पता चलता है अविवाहित, तलाकशुदा, विधवा की अपेक्षा विवाहित अधिक है।

प्रतिवादी की शैक्षिक स्थिति के आधार पर

तालिका 1.1 प्रतिवादी की शिक्षा की स्थिति को दर्शाती है, प्रतिवादी के निरक्षर 6.9%, साक्षरता 25%, हाईस्कूल 27.8%, इन्टरमिडिट 29.2%,स्नातक 11.1%, है। आंकडो से पता चलता है कि अधिकांश प्रतिवादी इन्टरमिडिट है।

परिवार की आय से सन्तुष्ट

तलिका 1.1 में प्रतिवादी की परिवार की आय से सन्तुष्टि को दर्शाया गया है। जिसमें सन्तुष्ट 45.83%, असन्तुष्ट 54.17%, है। आंकडो से पता चलता है प्रतिवादी परिवार की आय से असन्तुष्ट है।

एस.एच.जी. को प्रभावित करने वाले कारको का माध्य मापन

प्रतिवादी के बयान के अनुसार सामाजिक–अर्थिक स्थिति, महिलाओं की जागरुकता, एस.एच.जी. में जुडने के बाद सशक्तिकरण को माध्य द्वारा दर्शाया गया है शोधकर्ता द्वारा माध्य का मापन का स्तरः यदि माध्य मान 3 से 5 के बीच है तो इसका मतलब है कि सहमत है यदि माध्य मान 1 से 3 के बीच है तो इसका अर्थ है कि असहमत हैं।

a. सामाजिक–आर्थिक स्थिति

Descriptive Statistics

तालिका सख्या–1.2

No.	**Statement**	N	Min.	Max.	Mean	Std. Deviation
1	मुझमें जोखिम लेने की क्षमता उत्पन्न हुई है।	72	4.00	5.00	4.5139	0.50331
2	मुझे परिवार के सदस्यों द्वारा समय–समय पर मदद और समर्थन प्राप्त हुआ है।	72	4.00	5.00	4.5417	0.50176
3	मैं अपने समय का सदुपयोग करती हूं।	72	4.00	5.00	4.4583	0.50176
4	मैं काम से होने वाली आय से सन्तुष्ट हूं।	72	2.00	5.00	3.4583	1.03376
5	मेरी वित्तीय जरुरतें पर्याप्त रुप से पूरी होती है।	72	2.00	5.00	3.4722	0.96374
6	मुझे निर्णय लेने और उन्हें लागू करने की स्वतंत्रता है।	72	4.00	5.00	4.3056	0.46387
7	समूह में जुडने से मेरे जीवन की गुणवत्ता स्तर में बदलाव आया है।	72	4.00	5.00	4.4306	0.49863
	Valid N (listwise)	72			4.1687	

तालिका सख्या 1.2 यह सामाजिक–आर्थिक स्थिति को दर्शाती है। कुल माध्य मान **4.1687** है जिससे यह ज्ञात होता है कि सभी कथनों में उत्तरदाताओं द्वारा सहमती दी गयी

है। प्रथम कथन जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा क्र.स.–02 मुझे परिवार के सदस्यों द्वारा समय–समय पर मदद और समर्थन प्राप्त हुआ है। इसमें सार्वधिक माध्य ज्ञात **4.5417** हुआ है इस कथन पर सार्वधिक सहमती जतायी है। शोधकर्ता द्वारा यह अध्ययन किया गया है कि प्रतिवादी को उनके परिवार द्वारा पूर्ण समर्थन दिया जाता है दूसरा कथन जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा क0स0–01 मुझमें जोखिम लेने की क्षमता उत्पन्न हुई है। इसमें दूसरा कथन जिसमें सार्वधिक माध्य ज्ञात **4.5139** हुआ है। इस कथन में दूसरे स्थान पर सार्वधिक सहमती जतायी है जिससे यह पता चलता है कि समूह में जुडने से महिलाओं में जोखिम लेने की क्षमता उत्पन्न हुई है।

b. समूह के प्रति जागरुकता–

Descriptive Statistics

तालिका सख्या–1.3

No	**Statement**	N	Min.	Max.	Mean	Std. Deviation
1	क्या आप स्वंय सहायता समूह से होने वाले लाभों को जानते है।	72	4.00	5.00	4.5556	0.50039
2	क्या आपको लगता है कि समूह में होने वाली वसूली बोज महसूस होती है ।	72	2.00	5.00	3.3194	0.97614
3	क्या आप समूह में को बढावा देने के लिए सरकारी कार्यक्रमों में अपनी भागदारी सुनिश्चित करते है।	72	4.00	5.00	4.5139	0.50331
4	क्या समूह के बारे में जानकारी प्रशासनिक कर्मचारियों के सदस्य से उपलब्ध होनी चाहिए।	72	4.00	5.00	4.5417	0.50176
5	क्या समूह में प्रत्येक सदस्य की भागीदारी का होना अधिकार है।	72	4.00	5.00	4.4861	0.50331
6	समूह मेरे जीवन को आसान बना रहा है।	72	4.00	5.00	4.3889	0.49092
7	समूह द्वारा उद्यमशीलता प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान किये जाते हैं।	72	4.00	5.00	4.4861	0.50331
8	समूह द्वारा कौशल विकास प्रशिक्षण प्रदान किये जाते है।	72	4.00	5.00	4.4306	0.49863
9	क्या समूह में ब्याज,जुर्माना से समूह की आय में वृद्धि होती है।	72	4.00	5.00	4.5417	0.50176
	Valid N (listwise)	72			4.3627	

तालिका सख्या 1.3 यह समूह के प्रति महिलाओं की जागरुकता को दर्शाती है कुल माध्य मान **4.3627** है जिससे यह ज्ञात होता है कि सभी कथनों में उत्तरदाताओं द्वारा सहमती दी गयी है। प्रथम कथन जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा क्र.स.–01 क्या आप स्वंय सहायता समूह

से होने वाले लाभों को जानते है। इसमें सार्वधिक माध्य ज्ञात **4.5556** हुआ है इस कथन पर सार्वधिक सहमती जतायी है। इसे शोधकर्ता को यह प्रतीत होता है कि समूह के प्रति महिलाएं लाभों को जानती है उत्तरदाताओं द्वारा यह पता चला है कि समूह में जुडने से कई अन्य योजनाओं से लाभ हुए है। और उन्हें सर्वप्रथम प्राथमिकता दी जाती है। दूसरा कथन जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा क्र.स.–04,09 क्या समूह में जानकारी प्रशासनिक कर्मचारियों के सदस्य से उपलब्ध होनी चाहिए। क्या समूह में ब्याज,जुर्माना से समूह की आय में वृद्धि होती है। दूसरा कथन जिस पर सार्वधिक माध्य ज्ञात **4.5417, 4.5417** हुआ है। दो कथनों में प्रतिवादीयों द्वारा सहमती जतायी है।

ब. महिला सशक्तिकरण–

Descriptive Statistics

तालिका सख्या–1.4

No.	Statement	N	Min.	Max.	Mean	Std. Deviation
1	एसएचजी में एक सदस्य के रुप में मैंने रचनात्मकता और नवाचार में सुधार किया।	72	3.00	5.00	4.3194	0.52612
2	उद्यमिता के विभिन्न चरणों में वित्त की व्यवस्था करने में समस्याएं उत्पन्न हुई है।	72	2.00	5.00	3.0278	1.03423
3	मुझमें जोखिम लेने की क्षमता उत्पन्न हुई है।	72	3.00	5.00	4.2917	0.51560
4	मुझे परिवार के सदस्यों द्वारा समय–समय पर मदद और समर्थन प्राप्त हुआ है।	72	3.00	5.00	4.2917	0.48752
5	मैं अपने काम के साथ–साथ अपने वृद्ध माता पिता/ससुराल वालों का देखभाल भी पूर्ण रुप से रखती हूं।	72	4.00	5.00	4.4028	0.49390
6	अगर मेरे पास दूसरों का समर्थन है तो मेरे लिए महत्वपूर्ण निर्णय लेना आसान है।	72	4.00	5.00	4.3472	0.47943
7	मैं अपने समय का सदुपयोग करती हूं।	72	4.00	5.00	4.4583	0.50176
8	मैं अपने समय के अनुकूल कार्यो का चयन करती हूं।	72	4.00	5.00	4.4028	0.49390
9	मैं काम से होने वाली आय से सन्तुष्ट हूं।	72	2.00	5.00	3.4583	1.03376
10	मेरी वित्तीय जरुरतें पर्याप्त रुप से पूरी होती है।	72	2.00	5.00	3.4722	0.96374
11	मुझे निर्णय लेने और उन्हें लागू करने की स्वतंत्रता है।	72	4.00	5.00	4.3056	0.46387
12	समूहों के सदस्यों के साथ जाति,धर्म और जीवन शैली के आधार पर अन्य लोगों द्वारा भेदभाव नही किया जाता है।	72	2.00	5.00	4.2778	0.67599

13	मैं आसानी से जिम्मेदारी सौंप सकती हूं।	72	2.00	5.00	4.3889	0.57053
14	अपनी प्रसन्नता के लिए मैं स्वंय उत्तरदायी हूं।	72	4.00	5.00	4.4583	0.50176
15	दूसरों के विचारों को सुनती हूं और फिर सदस्यों को समूह में जवाबदेह होने का निर्देश देती हूं।	72	1.00	5.00	4.3611	0.65661
16	मैं पहचानती हूं परिभाषित करती हूं और विश्लेषण करती हूं समस्याओं और मुद्दे पर।	72	4.00	5.00	4.4722	0.50273
17	प्रभावी ढंग से नेटवर्क विकसित करती हूं और समूहों के साथ गठंबधन बनाती हूं।	72	4.00	5.00	4.4861	0.50331
18	समूह में जुडने से मेरे जीवन की गुणवत्ता स्तर में बदलाव आया है।	72	4.00	5.00	4.4306	0.49863
19	उद्यम शुरु करने के लिए समूह से प्रेरित हुईहूं।	72	4.00	5.00	4.5000	0.50351
	Valid N (listwise)	72			4.2186	

तालिका सख्या 1.4 यह महिला सशक्तिकरण की स्थिति को दर्शाती है कुल माध्य मान **4.2186** है जिससे यह ज्ञात होता है कि सभी कथनों में उत्तरदाताओं द्वारा सहमती दी गयी है। प्रथम कथन जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा क्र.स.–19 उद्यम शुरु करने के लिए समूह से प्रेरित हुई हूं। इसमें सार्वधिक माध्य ज्ञात **4.5000** हुआ है इस कथन पर सार्वधिक सहमती जतायी है। जिसे यह पता चलता है कि महिलाएं आर्थिक रुप से सशक्त हो रही है। दूसरा कथन जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा क्र.स.–17 प्रभावी ढंग से नेटवर्क विकसित करती हूं और समूहों के साथ गंठबंधन बनाती हू। इसमें दूसरा स्थान पर सार्वधिक माध्य ज्ञात **4.4861** हुआ है। इस कथन में दूसरे स्थान पर सार्वधिक सहमती जतायी है जिससे यह पता चलता है कि महिलाएं एक दूसरे से नेटवर्क विकसित कर रहे है।

जनसांख्यिकीय रुपरेखा के साथ एस.एच.जी. के प्रति लाभार्थियों को प्रभावित करने वाले कारकों के बीच संबंध

जनसांख्यिकीय रुपरेखा के साथ एसएचजी को प्रभावित करने वाले कारक सामाजिक–आर्थिक स्थिति, महिलाओं के प्रति एसएचजी की जागरुकता, महिला सशक्तिकरण के बीच संबध को दर्शाया गया है जिनका विवरण निम्नलिखित दिया गया है–

1. जनसांख्यिकीय रुपरेखा के आधार पर सामाजिक–आर्थिक स्थिति के बीच संबध–

इसमें जनसांख्यिकीय रुपरेखा के आधार वैवाहिक स्थिति, शैक्षिक योग्यता और परिवार की आय सन्तुष्टि के स्तर के आधार पर एससचजी में जुडने से महिलाओं की आर्थिक–सामाजिक स्थिति के बीच संबध ज्ञात किया गया है।

a. वैवाहिक स्थिति के आधार पर एसएचजी में जुडने से महिला की आर्थिक–सामाजिक स्थिति के बीच संबंध।

तालिका सख्या 1.5

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	5.386
Df	3
Asymp. Sig.	0.146

तालिका सख्या 1.5 यह इंगित करती है कि, एसएचजी में जुडने से महिला की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से वैवाहिक स्थिति के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p=.146>0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है, जिसे यह पता चलता है कि वैवाहिक स्थिति के आधार पर एसएचजी में जुडने से महिला की सामाजिक–आर्थिक स्थिति के विचारों में कोई भिन्नता नही पाई गयी है।

b. शैक्षिक योग्यता के आधार पर एसएचजी में जुडने से महिला की आर्थिक–सामाजिक स्थिति के बीच संबंध।

तालिका सख्या 1.6

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	6.167
Df	4
Asymp. sig.	0.187

तालिका सख्या 1.6 यह इंगित करती है कि, एसएचजी में जुडने से महिला की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से शैक्षिक योग्यता के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p=.187>0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है, जिससे यह पता चलता है कि शैक्षिक योग्यता के आधार पर एसएचजी में जुडने से महिला की सामाजिक–आर्थिक स्थिति के विचारों में कोई भिन्नता नही पाई गयी है।

c. परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर एसएचजी में जुडने से महिला की आर्थिक–सामाजिक स्थिति के बीच संबंध।

तालिका सख्या 1.7

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	31.013
Df	1
Asymp. sig.	.000

तालिका सख्या 1.7 यह इंगित करती है कि, एसएचजी में जुडने से सामाजिक–आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p= .000<0.05) अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है, जिसे यह पता चलता है कि परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर एसएचजी में जुडने से सामाजिक–आर्थिक स्थिति के विचारों में भिन्नता पाई गयी है।

2.जनसांख्यिकीय रुपरेखा के आधार पर महिला की जागरुकता के स्तर बीच संबध–

इसमें जनसांख्यिकीय रुपरेखा के आधार वैवाहिक स्थिति, शैक्षिक योग्यता और परिवार की आय सन्तुष्टि के स्तर के आधार पर एससचजी के प्रति जागरुकता के बीच संबध ज्ञात किया गया है।

a. वैवाहिक स्थिति के आधार पर एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता के बीच संबंध।

तालिका सख्या 1.8

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	.504
Df	2
Asymp. Sig.	0.777

तालिका सख्या 1.8 यह इंगित करती है कि, एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से वैवाहिक स्थिति के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p= .777>0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है, जिसे यह पता चलता है कि वैवाहिक स्थिति के आधार पर एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता के विचारों कोई भिन्नता नही है।

b. शैक्षिक योग्यता के आधार पर एसएचजी के प्रति महिलाआ की जागरुकता के बीच संबंध।

तालिका– 1.9

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	7.864
Df	4
Asymp. Sig.	0.097

तालिका सख्या 1.9 यह इंगित करती है कि, एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से शैक्षिक योग्यता के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p= .097>0.05)

अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है, जिसे यह पता चलता है कि शैक्षिक योग्यता के आधार पर एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता के विचारों कोई भिन्नता नही है।

c. परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर एसएचजी के प्रति महिलाआ की जागरुकता के बीच संबंध।

तलिका सख्या–4.10

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	1.870
Df	1
Asymp. Sig.	0.171

तालिका सख्या 1.10 यह इंगित करती है कि, एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p=.171>0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है, जिसे यह पता चलता है कि परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता के विचारों कोई भिन्नता नही है।

3. जनसांख्यिकीय रुपरेखा के आधार पर महिला सशक्तिकरण के स्तर बीच संबध–

इसमें जनसांख्यिकीय रुपरेखा के आधार वैवाहिक स्थिति, शैक्षिक योग्यता और परिवार की आय सन्तुष्टि के स्तर के आधार पर महिला सशक्तिरण के बीच संबध ज्ञात किया गया है।

a. वैवाहिक स्थिति के आधार पर एसएचजी के महिला सशक्तिकरण के बीच संबंध।

तालिका सख्या–1.11

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	8.947
Df	2
Asymp. Sig.	0.011

तालिका सख्या 1.11 यह इंगित करती है कि, एसएचजी के माध्यम से सशक्तिकरण को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से वैवाहिक स्थिति के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p=.011<0.05) अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है, जिसे यह पता चलता है कि वैवाहिक स्थिति के आधार पर एसएचजी के माध्यम से सशक्तिकरण के विचारों भिन्नता पाई गयी है।

b. शैक्षिक योग्यता के आधार पर एसएचजी के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के बीच संबंध।

तालिका सख्या– 1.12

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	1.081
Df	4
Asymp. Sig.	0.897

तालिका सख्या 1.12 यह इंगित करती है कि, एसएचजी के माध्यम से सशक्तिकरण को प्रभावित करने वाले अनुसंधान के उत्तरदाताओं से शैक्षिक योग्यता के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्वपूर्ण मान (p= .897 >0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है, जिसे यह पता चलता है कि शैक्षिक योग्यता के आधार पर एसएचजी के माध्यम से सशक्तिकरण के विचारों में कोई भिन्नता नही पाई गयी है।

c. परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर महिला सशक्तिकरण के बीच संबंध।

तालिका सख्या –1.13

Kruskal-Wallis Test	
N	72
Test Statistic	13.76
Df	1
Asymp. Sig.	.000

तालिका सख्या 4.13 यह इंगित करती है कि, एसएचजी के माध्यम से सशक्तिकरण को प्रभावित करने वाले शोध के उत्तरदाताओं से परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। जिसका महत्वपूर्ण मान (p= .000<0.05) अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है, जिसे यह पता चलता है कि परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर एसएचजी के माध्यम से सशक्तिकरण के विचारों भिन्नता पाई गयी है।

शोध निष्कर्ष

- अध्ययन में सामाजिक–आर्थिक स्थिति, एस.एच.जी. के प्रति महिलाओं की जागरुकता, महिला सशक्तिकरण को दर्शाया गया है। जिसमें शोधकर्ता के मापन के अनुसार सभी माध्य 3 से 5 के बीच है इसे यह प्रदर्शित होता है कि एस.एच.जी. की महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक प्रभाव पडा है।
- शोध के उत्तरदाताओं से वैवाहिक स्थिति के आधार पर विचरण परीक्षण के

विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। महत्पूर्ण मान (p= .146>0.05), (p= .777>0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है, जिसे यह पता चलता है कि वैवाहिक स्थिति के आधार पर क्रमशः एसएचजी में जुडने से महिला की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता के विचारों में कोई भिन्नता नही पाई गयी है। जबकि वैवाहिक स्थिति के आधार पर, एसएचजी के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के विचारों भिन्नता पाई गयी है। जिसका महत्वपूर्ण मान (p= .011<0.05) अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

- शोध के उत्तरदाताओं से शैक्षिक योग्यता के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेशण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। जिसका महत्वपूर्ण मान (p= .187>0.05) , (p= .097>0.05), (p= .897 >0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है, जिसे यह पता चलता है कि शैक्षिक योग्यता के आधार पर क्रमशः एसएचजी में जुडने से महिला की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता और एसएचजी के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के विचारों में कोई भिन्नता नही पाई गयी है।
- शोध उत्तरदाताओं से परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर विचरण परीक्षण के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है। जिसका महत्वपूर्ण मान (p= .000<0.05), (p= .171>0.05) अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है, जिसे यह पता चलता है कि परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर क्रमशः एसएचजी में जुडने से सामाजिक–आर्थिक स्थिति, एसएचजी के प्रति महिलाओं की जागरुकता के विचारों कोई भिन्नता नही है। जबकि परिवार की आय सन्तुष्टि स्तर के आधार पर एसएचजी के माध्यम से सशक्तिकरण के विचारों भिन्नता पाई गयी है। जिसका महत्वपूर्ण मान (p= .000<0.05) अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

उपसंहार

अध्ययन से यह स्पष्ट है कि एस.एच.जी. के माध्यम से आर्थिक–सामाजिक के आधार पर महिला सशक्त हो रही है और लाभार्थीयों के आत्मविश्वास के स्तर को बढाने में सहायक है अध्ययन क्षेत्र में यह भी पाया गया है कि एस.एच.जी. ने महिलाओं स्थिति में सुधार करने में मदद की है और गरीबों को उनकी आजीविका व आय के स्तर में सक्षम बनाया है। स्वंय सहायता समूह के माध्यम से वित्त पोषण से गरीबी उन्मूलन व विशेष रुप से महिलाओं के सशक्तिरण में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। एस.एच.जी. से महिलाएं साप्ताहिक बचत कर रहे है लगभग सभी प्रतिवादी बैंक से लेन–देन करने में सक्षम है महिलाएं अपने बच्चों की शिक्षा के लिए जागरुक हुई है। पंचायत चुनाव में भाग ले रही है। अब वे ब्याज पर ऋण की गणना करने में सक्षम है। कुल मिलाकर अध्ययन क्षेत्र में एस.एच.जी. के माध्यम से महिलाएं सशक्त हो रही है।

सुझाव–

शोध से पता चलता है कि स्वंय सहायता समूह प्रमुख कारकों में से एक है जो महिलाओं को सशक्त बनाने लिए के जिम्मेदार है। लाभार्थी सशक्त महसूस कर रहे है, वे आश्रित

से स्वतंत्र की ओर बढ रहे है, लाभार्थी कार्यक्रम को धन्यवाद दे रहे है। सुधार हमेशा संभव है, इस उद्धरण पर विचार करते हुए क्षेत्र में सुधार के साथ–साथ प्रतिभागी को और अधिक सशक्त बनाने के लिए दिए जा सकते है

- सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि एसएचजी सरकारी अधिकारियों द्वारा गठित और प्रचरित समूह, अधिकरियों की मूल रुपरेखा सरकार के विभिन्न विकास योजनाओं की निगरानी और कार्यान्वयन करना है लेकिन वे पोषण में अच्छी तरह से सुसज्जित नही है क्योंकि वे इन उद्देश्यों के लिए विशेष रुप से प्रशिक्षित नहीं है। "इसलिए समूह के प्रचार में सीधे तौर पर शामिल कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।"
- क्षेत्र में कई पिछडे गांवों में महिलाएं जागरुक नही है,उनके लिए जागरुकता कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए ताकि वह भी प्रतिभाग कर सकें।
- सरकार द्वारा दि जा रही सरकारी निधि पर महिलाओं को प्रशिक्षित करना चाहिए ताकि उसका सही उपयोग हो।
- एस.एच.जी. से महिलाएं अपने स्वरोजगार के लिए स्थानीय उत्पाद तैयार कर रही है लेकिन उन्हें एक बाजार व प्रशिक्षण की आवश्यकता जिससे और उभर कर आ सकती है जिसके लिए सरकार को विपणन के लिए योजना बननी चाहिए।

भविष्य में अध्ययन के लिए–

- इस अध्ययन में भोधकर्ता द्वारा केवल उत्तराखण्ड के अल्मोडा जिले को लिया गया है। आप उत्तराखण्ड के अन्य क्षेत्र अन्य राज्य को लिया जा सकते है।
- यह अध्ययन केवल एनआरएलएम की एसएचजी के लाभार्थियों को लिया गया है। आप अन्य योजनाओं के लाभार्थियों को भी ले सकते है।
- इस अध्ययन में केवल 100 आंकडों को लिया गया है आप अधिक आंकडे ले सकते है।

❒

सन्दर्भ –

1. *https://nrlm.gov.in*
2. *Acharya Meena and Ghimire Puspa (2005) "Gender Indicators pf Equality, Inclusion and poverty reduction: Measuring Programme/ Project effectiveness" – Economic and Political Weekly- 40 (44 & 45),pp.4719-4728.*
3. *Malhotra Meenakshi, "Empowerment of Women (In ThreeVolumes)", Delhi, Isha Books 2004, Volume 1, p.54.*
4. *Menon Leela, "Women and Social Attitude", Kerala Calling, March 2004, p.5.*
5. *Rasure Dr. K.A.,"Women Empowerment through Self Help Groups", The monthly journal Facts for you, November, 2002. pp. 42–46.*
6. *Suguna B. (2006), "Empowerment of Rural Women Through Self Help Groups"; New Delhi, Discovery Publishing House.*
7. *Kothai Krishna, "SHGs as an effective instrument 1 platform to organize rural poor women", 2000.*
8. *Raj, Sunder. D., (2004), "SHGs and Women's empowerment", Social Welfare, Vol. 50, No. 10, January, PP. 39-41.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 101–115

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

हिमालय क्षेत्र में शैव सम्प्रदाय

प्रो. प्रभात कुमार
प्रा.भा.इ.संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कॉंगड़ी समविश्वविद्यालय,हरिद्वार
रणवीर सिंह,
शोधार्थी, प्रा.भा.इ.संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कॉंगड़ी समविश्वविद्यालय,हरिद्वार
E-mail - sourabhkasanaji2016@gmail.com Mob.: 8979001577

सारांश

हिन्दू त्रिदेवों में शिव अति महत्वपूर्ण देव है। शिव के विविध स्वरूपों एवं आकारों के उपासक, शैव मत के अनुयायियों की संख्या अन्य किसी देवता के उपासकों की संख्या से अधिक है। भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य भागों के समान ही उत्तर भारत के हिमालय क्षेत्र में भी शैव मंदिर बहुतायत मिलते है। प्राचीन काल से ही कश्मीर से लेकर नेपाल तक का संपूर्ण क्षेत्र शैव भावना से ओतप्रोत रहा है। उदाहरणस्वरूप पश्चिमी हिमालय से पूर्वी हिमालय तक अमरनाथ हिमलिंग (कश्मीर), त्रिलोकनाथ (लाहौल), मणिमहेश (भरमौर), महासू (सिरमौर, जौनसार भाबर), केदारनाथ (गढ़वाल), बैजनाथ एवं जागेश्वर (कुमाऊ), पशुपतिनाथ (नेपाल) तथा गुप्तकशी (प्रागज्योति ापुर) शैव संप्रदाय के आस्था के केंद्रों के रूप में विख्यात रहे है। शैवधर्म भारत एवं सम्भवतः सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम और प्रागैतिहासिक धर्म है। शैवधर्म का अत्यधिक महत्व केवल इसलिए नहीं है कि वह विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से है बल्कि इसलिए भी कि आज भी इसे बहुसंख्यक जनता द्वारा माना अथवा पालन किया जाता है। यह धर्म शिव को परम सत्ता के रूप में मानता है। कुछ विद्वान इसके उद्भव के सूत्र पूर्व वैदिक काल तक पाते हैं। इसके संदर्भ में सर जॉन मार्शल के अनुसार मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में एक देवता प्रतीत होते है जिसे ऐतिहासिक शिव के मूल रूप में पहचाना जा सकता है। ये आगे कहते हैं कि शैव धर्म का इतिहास कैलोलिथिक काल तक जाता है।[1] यह दुनिया की सबसे प्राचीन जीवित आस्था है। इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति के उषःकाल से शिव पूजा के प्रचलन के साक्ष्य प्राप्त होने लगते है।[2] इस बात पर विद्वानों में मतभेद है कि शैवधर्म वैदिक है अथवा अवैदिक कुछ विद्वानो के अनुसार शैवधर्म आर्यों और वेदों से पहले का है। ये इसकी उत्पत्ति वैदिक परम्परा से विपरीत द्रविड़ परंपरा से मानते हैं। के.ए.नीलकंठ शास्त्री जैसे विद्वान इससे अलग विचार रखते हैं, ये शैवधर्म की उत्पत्ति वैदिक परंपरा से मानते हैं।

कुंजी शब्द : शैवधर्म, रुद्र, शिव, संप्रदाय, वैदिक परम्परा

शैवधर्म का उद्‌भव एवं विकास

श्रुतियों के अनुसार सृष्टि के पूर्व न तो सत् न ही असत् होने, केवल शिव होने का उल्लेख मिलता है। प्राचीन जन समुदाय किरात, किन्नर, नाग, खस, एवं यक्ष आदि हिमालय क्षेत्र के मूल निवासी माने जाते है, जिनकी प्रकृति से सीधे जुड़े होने एवं बिना आकार के देवी देवताओं की उपासना किए जाने की मान्यताएं रही है। कालांतर में हिमालय क्षेत्र में वैदिक आर्यों के आगमन के फलस्वरूप वैदिक एवं पौराणिक देवताओं की स्थापना एवं उपासना प्रारम्भ हुई।[3] वैदिक कालीन देवताओं में रूद्र को शिव से सम्बद्ध माना गया है। यहाँ रुद्र की जो विशेषताएँ दी गई हैं उसके अनुसार ये एक वायुमण्डलीय देवता हैं जो काफी प्रचंड एवं संहारक है। ये आकाश में चमकने वाली बिजली, तूफान, वर्षा एवं जंगल की आग जैसी प्रकृति की विध्वंसक शक्तियों के साथ संबंद्ध हैं तथा वे मनुष्य एवं अन्य पशुओं के संहार में समर्थ पशुबलियों के देवता हैं। इस प्रकार आद्य ऐतिहासिक शिव की विशेषताएं वैदिक साहित्य में वर्णित रूद्र से पर्याप्त साम्यता रखती है जो कालान्तर में शिव महादेव के रूप में परिणित हो गए।[4] शिव का उद्‌भव यजुर्वेद में मिलता है जिसमें उनके सौ नाम हैं। इन नामों में से पशुपति, नीलग्रीय, शितिकंठ जैसे नाम ध्यान देने योग्य हैं। यहां शिव के सर्वशक्तिमान और अन्य पक्षों का भी वर्णन किया गया है। इससे आगे श्वेताश्वतर उपनिषद में शिव को हर, महादेव, ईश, महेश्वर और भगवत् जैसे नामों से पुकारा गया है। उन्हें पर्वतवासीम, पर्वतपति, सहस्त्र नेत्रवाला और जो अकेले स्थिर खड़ा रहता है, जैसे रूपों में वर्णित किया गया है।

" यो योनिं योनिमधितिश्ठत्येको
यस्मिन्निदं स च वि चौति सर्वम
तमीशानं वरदं देवमीडयम
निचाय्येमां शांतिमत्यंतमेति ।।"[5]

इस उल्लेख में सृष्टि के सृजनात्मक तत्वों में से पुरुष तत्व ईशान स्त्री तत्व प्रतीक अर्ध्य से समबद्ध होकर वर्णित है जो शैव सम्प्रदाय के प्रतीक का पूर्ण रूप है। बाद के पौराणिक साहित्य– जैसे शिव, लिंग, पद्‌म पुराण में शिव का वर्णन अर्द्‌धनारीश्वर के रूप में किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में महादेव, गौरीशंकर, उमा महेश्वर, तथा भैरव महाकाल आदि का उल्लेख मिलता है। स्कंद पुराण अंतर्गत केदारखंड में संपूर्ण हिमालय क्षेत्र को शिव क्षेत्र के नाम से अभिहित किया गया है। शिव को महायोगी, महातपस्वी, यति, तपोनित्या, योगीश्वर के नामों से भी जाना जाता है, साथ ही इन्हे ध्यानरत योगी के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण की ओर मुख करके ध्यान करने के कारण उन्हें दक्षिणमूर्ति के रूप में जाना जाता है। पौराणिक साहित्य में शिव के कुछ अन्य उपनामों के प्रसंग हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में उपमन्यु प्रतीक रूप में शिव की पूजा का उल्लेख करता है,[6] साथ ही महाभारत में उनका वर्णन पशु–चर्म (बाघ या हिरन का) पहने, जटाओं वाले और माथे पर भस्म लगाए हुए सांप गले में धारण किए हुए, त्रिशूल लिए हुए बैल की सवारी करने वाले, बुद्धिमत्ता की प्रतीक मस्तक पर तीसरी आंख वाले भगवान के रूप में भी किया गया है। उनके हाथों में अग्नि, कुल्हाड़ी और डमरू होता है। श्मशान उनका निवास स्थल है और उनका पूरा शरीर भस्म से पुता होता है।

शिव दूसरे शक्तिशाली रूप में नटराज हैं। तमिल साहित्य में शिव का व्यापक वर्णन है। इस क्षेत्र में शिव की लोकप्रियता का साक्ष्य प्राचीन संगम साहित्य से लेकर वर्तमान तक का साहित्य प्रस्तुत करता है। तमिल भक्ति साहित्य में शिव की चौंसठ कलाओं का वर्णन मिलता है। विविध उपनाम, रूप, कर्म, संपत्ति, शस्त्र, आभूषण, वृत्तांत, रूपक उनके व्यक्तित्व और गुणों का वर्णन करते हैं। जिन्हें भक्ति साहित्य में अच्छी तरह से देखा जा सकता है। शिव का तात्पर्य सिंधु घाटी से माना जाता है परन्तु महत्व पूर्ण मिश्रण तब हुआ जब इन्हे वैदिक रुद्र के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। श्वेताश्वतर उपनिषद् के समय में शिव वैदिक परंपरा में विलीन हो गये और महादेव के रूप में एक उत्कृष्ट पदवी से विभूषित किये गये। विदेशियों में सबसे पहले मेगस्थनीज ने शिव का वर्णन किया है।[7] गुप्त काल में शिव पूजा का प्रचलन और अधिक हो गया ।

हिमालय क्षेत्र में शैवधर्म एवं उनका दर्शन

हिन्दु सनातन धर्म एवं जैन धर्म में अत्यन्त पवित्र माने जाने वाले ट्रांस हिमालय में स्थित कैलाश पर्वत को शिव का आवास तथा सम्पूर्ण हिमालय को शिव की लीलाभूमि माना जाता है। लोक कथाओं में हिमालय को पर्वतराज की पुत्री भगवती (पार्वती) का मायका एवं शिव की ससुराल माने जाने की प्रथाएं विद्यमान है।[8] मध्य हिमालय की गोद बसे उत्तराखण्ड में पंचकेदार स्वरूप में शिव की उपासना की सर्वाधिक मान्यता है।[9] सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र में पूज्य अलग–अलग क्षेत्र के ग्राम देवता, कुल देवता एवं लोक देवताओं को शिव का अंश अथवा गण के रूप में स्वीकार किए जाने की आस्थाएं विद्यमान है, उदाहरण स्वरूप उत्तरकाशी जनपद (उत्तराखंड) में सोमेश्वर (जाखोल), कंडार (संग्राली) एवं महासू (ठड़ियार) देवता।[10] हिमांचल प्रदेश के किन्नौर जनपद में किन्नौरी महिलाओं के द्वारा महादेव की त्रिपुरासुर पर विजय के लोकगीत बड़े हर्ष से गाए जाते है।[11] हिमालय की गोद में बसे हिमांचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड को देवभूमि तथा नेपाल को योगभूमि मानने की मान्यताएं है।

सुदूर अतीत काल में आदिम जातियों के लोगों में शैव धर्म की उत्पत्ति होकर समय के साथ–साथ इसके अंदर कई परिवर्तन हो चुके है। इसके फलस्वरूप बहुत समय पहले ही इसमें कई सम्प्रदायों की सृष्टि हो गई जिनमे से बहुत से सम्प्रदाय विलुप्त हो गए है, शेष सम्प्रदायों में से एक अद्वैतवादी रूप त्रिक सम्प्रदाय जो त्रिकशास्त्र अथवा त्रिक शैववादी के नाम से जाना जाता है। त्रिक के प्राथमिक साहित्य हैं– सिद्धतंत्र, मालिनीतंत्र और वामतंत्र। ये साहित्य अपने चरित्र में रहस्योद्घाटक हैं, जिसमें धर्मशास्त्रीय विचार उल्लिखित हैं। वासुगुप्त पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिवसूत्र में त्रिक दर्शन को व्यवस्थित रूप में व्याख्यायित किया। बाद में इसे सोमानंद, उत्पलदेव, भाश्कराचार्य, अभिनवगुप्त और बेमराज और अन्यों द्वारा विकसित किया गया। शैवधर्म ईश्वर, आत्मा और द्रव्य के तीन सिद्धांतों के तहत परम सत्ता का वर्णन करता है।

अद्वैतवाद से प्रभावित होने के कारण शैवधर्म यह शिक्षा देता है कि शिव परम सत्य हैं जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है। धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से ये शिव और शक्ति दोनों हैं। परम सत्ता केवल ईश्वर नहीं है बल्कि देवत्व भी है। यद्यपि सत्य केवल एक है, फिर भी इसे दो दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है। त्रिक दर्शन को शैव व शाक्त पक्षों को मिलाते हुए अभिनवगुप्त ने जो दर्शन दिया यह अद्वैतवादी के साथ–साथ आस्तिकतावादी भी था। अद्वैत सत्य एकमात्र परम सत्य है। जो अलौकिक तथा मन, बुद्धि और वाक् (वाणी या भाषा) से परे

है। शिव सम्पूर्ण हैं जैसे स्थिर आकृति में शुद्ध चेतना होती है। गतिशील पक्ष से संपूर्ण सत्ता अपने को शक्ति से विश्व को व्यक्त करती है। व्यक्त संसार माया अथवा अविद्या के कारण नहीं है, बल्कि सत्य है, क्योंकि संपूर्ण सत्ता से अभिन्न है। ब्रह्मांड के रूप में अपने को अभिव्यक्त करते समय परम सत्ता किसी प्रकार के परिवर्तन, रूपांतरण अथवा विभाजन से नहीं गुजरती हैं। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया परम सत्ता की आत्म चेतना का अपने भीतर प्रतिबिम्बन के माध्यम से होती है। जैसे की दर्पण में होता है। ईश्वर स्वयं सीमित विश्व और सीमित व्यक्ति के रूप में अवतरित होता है।

हिमालयी शैवधर्म अद्वैत एकेश्वरवाद की तुलना में भौतिक द्रव्य पर अधिक जोर देने का प्रयास है यह विश्व में जीवन के नकारात्मक दृष्टिकोण को सिरे से नकारता है। तंत्रवाद में गहरी जड़ होने के कारण यह संसार को त्यागने में विश्वास नहीं करता है बल्कि सांसारिकता को दृढतापूर्वक स्वीकार करता है। बंधन ईश्वर की गतिविधि है, जिससे वह अपनी सारभूत प्रकृति को स्पष्ट करता है। मोक्ष कुछ नहीं है, यह ईश्वर के आवश्यक स्वभाव की अभिव्यक्ति है। मोक्ष यह बौद्धिक अनुभव है कि परम सत्ता और वैयक्तिक आत्मा एक समान है। संसार में जीवन का आनंद उठाते हुए मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। त्रिक शैवधर्म में व्यक्ति के स्वभाव के साथ–साथ उसकी बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए मुक्ति के अनेक ढंग निर्धारित किये गये हैं। इस शैवधर्म में भक्ति के लिए भी स्थान है। यह यौगिक दृष्टिकोण को निरस्त करता है जिसके अनुसार, व्यक्ति प्रयास से मोक्ष प्राप्त करता है। आत्म–प्रयास मोक्ष में उतनी ही भूमिका निभाता है, जितनी दैवीय कृपा। यह मानता है कि किसी भी तरह आत्म प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक ईश्वर कृपा नहीं प्राप्त हो जाती। शिव की कृपा परम सत्ता की अभिन्न आत्मानुभूति के लिए आवश्यक और पर्याप्त है। कृपा ईश्वर का निःशुल्क उपहार है और किसी के अच्छे कार्यों के परिणाम पर निर्भर करती है। कृपा बिन मांगा निष्काम उपहार है, जो ईश्वर की ओर से अबोध और स्वतः स्फूर्त प्रवाह है। वैयक्तिक आत्म–समर्पण और कृपा दोनों साथ–साथ चलती हैं। और एक दूसरे को सशक्त और दृढ़ बनाती हैं।

शैव सिद्धान्त

शैव सिद्धान्त शैव आगमों, उपनिषदों, 12 तिरुमुराइयों, 14 मीकांत शास्त्रों पर आधारित तमिल शैववादियों में विकसित दर्शन है। सिद्धान्त का अर्थ है स्थापित निष्कर्ष, शैव सिद्धान्त, शैव उपासकों के प्रति समावेशी दर्शन है। यह दर्शन दक्षिण भारत में बहुत लोकप्रिय है। शैव सिद्धान्त को आगमांत–आगमों का निष्कर्ष माना जाता है। यद्यपि यह आगम परम्परा से उत्पन्न है किन्तु यह वेदान्त परम्परा को कभी निरस्त नहीं करती है। इसमें वेदों को सामान्य स्रोत के रूप में लिया गया है। आगम इस दर्शन के विशिष्ट स्रोत हैं। शैव–सिद्धान्त आस्तिकतावादी दर्शन हैं, जिसमें दर्शन और धर्म का समावेश है बहुतलतावादी यथार्थवादी होने के कारण यह तीन आंतरिक यथार्थों को स्वीकार करता है किसी दर्शन की भांति इसमें भी ईश्वर द्रव्य और आत्मा के सम्बन्ध को निर्धारित किया गया है। इसने घोषणा की है कि ईश्वर की तरह द्रव्य और आत्मा भी नित्य हैं। परम सत्ता अपने करूणामय रूप के माध्यम से आत्माओं को द्रव्य जो उनकी पवित्रता को कलुषित करते हैं, से मुक्त कराने में निरन्तर रहती है। ईश्वर आत्मा अथवा ब्रह्माण्ड के समान नहीं है। यह उनका उपादान कारण भी नहीं है फिर भी वह उनमें निवास करता है और ये उनमें अद्वैत एकत्य नहीं है, बल्कि अपृथकता है। गुरू से ज्ञान आता है। यद्यपि शिव सभी प्रकार के ज्ञान के स्रोत, व सभी प्रकार की बुद्धिमत्ता और करूणा का मूर्त रूप हैं।

प्रमुख शैव संप्रदाय–

पाशुपत एवं कापालिक

पाशुपत उत्तर में सर्वाधिक प्राचीन शैववादी परम्परा है। उनमें तपस्वी प्रवृत्तियां अधिक हैं। यद्यपि उनके सिद्धान्त सांख्य और योग दर्शन के निकट प्रतीत होते हैं फिर भी वे उन्हें इन विचारधाराओं से अलग करते हैं और शेष एकेश्वरवाद पर बल देते हैं। उनके लिए शिव पूर्ण स्वतंत्र हैं और विश्व के निमित कारण हैं। प्रकृति और आत्माएं कार्य हैं। उनका मूल ईश्वर की इच्छा में है। मोक्ष प्राप्त आत्माएं शिव के साहचर्य में नित्य हो जाती हैं। उनके योगाभ्यास एकांत में शिव के निरंतर संपर्क में सम्पन्न होते हैं। इसी कारण से शैववादी श्मशान पर बारम्बार जाते हैं। उनके कर्मकांडीय व्यवहार प्रायः विद्रोही प्रवृत्ति के हैं। अधिक अतिवादी समूह, कापालिक सांसारिक वस्तुओं से आडंबरपूर्ण अभेद में विश्वास करते हैं। ये दृढतापूर्वक मानते हैं कि यह किसी व्यक्ति की भव सागर से मुक्ति का श्रेष्ठ तरीका है। ये मनुष्य की खोपड़ी और मदिरा का कटोरा साथ में रखते हैं। इस घटक के कारण उनकी कापालिक अथवा भैरव के रूप में पूजा की गई है।

वीरशैव अथवा लिंगायत

वीर शैवधर्म अथवा लिंगायतधर्म एक शैवधर्म के धार्मिक आन्दोलन के रूप में बारहवीं शताब्दी में कर्नाटक के पश्चिमोत्तर भागों में विस्तारित हुआ। लिंगायत धर्म भी 28 शैव आगमों पर आधारित हैं। यह परम्परा मानती है कि यह बहुत प्राचीनतम है और पांच तपस्वियों– एकोरामा, पंडिताराध्य देवना, मरूला और विश्वाराध्य द्वारा स्थापित की गई थी। ऐसा माना जाता है कि ये तपस्वी शंकर के मस्तक से उत्पन्न हुए थे। बहरहाल, श्री बसवेश्वर को इसका संस्थापक माना जाता है। उन्होंने अपने को परम्परागत हिंदुत्व से अलग कर लिया और पवित्र यज्ञोपवीत संस्कार से इंकार करके इसके निरर्थक कर्मकांडों का उग्रतम विरोध किया। उनके अनुयायी मानते हैं कि ये नंदी के अवतार हैं। यह परम्परा शिव को सर्वोपरि मानती है। इसके अनुसार केवल शिव की ही उपसना करनी चाहिए। वीर शिव पद का अर्थ है दिग्गज शिव एक छोटे से लिंग को धातु की डिविया में गले में पहनना लिंगायतों की भेदक पहचान है। सैद्धांतिक रूप से ये जाति के समस्त भेदों को नकारते हैं और स्त्रियों को पुरुषों के समान स्थान देते हैं। ये कट्टर शाकाहारी होते हैं। और जादू–रहस्य का विरोध करते हैं। लिंगायतों के लिए लिंग अनिवार्य रूप से लिंगोपासना का प्रतीक नहीं है बल्कि वह अग्नि और प्रकाश की एकाग्रता के रूप में माना जाता है, जो व्यक्ति के शरीर और मस्तिष्क को शुद्ध करता है। अग्नि को ये इतना पवित्र मानते हैं कि इसका उपयोग ये अंतिम संस्कार के लिए नहीं करते हैं। फलस्वरूप लिंगायत शवों को जलाने की बजाय दफनाते (मिट्टी में गाड़ना) हैं। शिव की आंतरिक शक्ति सभी जीवों में है, जो उसे दैवीय अभिव्यक्तियों को देखने में सक्षम बनाती है।

सारांश

उत्तर भारत में विशेषकर हिमालयी क्षेत्र में शैवधर्म लोकप्रिय धार्मिक एवं दार्शनिक परम्परा हैं जिसके अंकुर प्राचीनकाल में विकसित हुए तथा यह मध्य काल में अत्यधिक लोकप्रिय हुईं। शैवधर्म ने व्यावहारिक जीवन को दार्शनिक विचार के साथ जीने की परम्परा विकसित की।

पूरे भारत में फैले होने के नाते इसमें ईश्वर, आत्मा और जगत् सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक अवधारणाओं के साथ कई सम्प्रदाय हैं। फिर भी ये प्रेम और भक्ति के सूत्र में बंधे हुए हैं। हिमालय क्षेत्र के दुर्गम स्थानों में शिवालयों की संख्या बहुतायत है। शिव के आवास के रूप में उच्चतम पर्वत शिखरों को चिन्हांकित कर 'कैलाश' के रूप में मान्यता दिया जाना हिमालयी क्षेत्र में सामान्य अवधारणा है। सम्भवतः कैलाश शिखर के स्वरूप के आधार पर ही हिमालयी क्षेत्र में शिव लिंग पूजा का अत्यंत महत्व है। सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्र में कण–कण में शिव का निवास मानने वाले क्षेत्रवासियों द्वारा शिव को अपने ईष्ट के रूप में मान्यता दिया जाना स्वभाविक प्रतीत होता है। प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण एवं समृद्ध हिमालयी क्षेत्र में प्रकृति से जुड़े लोक देवताओं का वैदिक एवं पौराणिक देवताओं, मुख्य रूप से शिव से समन्वय इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत का अद्वितीय उदाहरण है।

❒

सन्दर्भ –

1. मार्शल – 1931, मोहनजोदड़ों एंड दी इंडस सिविलिजेशन, लंदन

2. वशिष्ठ, नीलिमा – 2001, राजस्थान की मूर्तिकला–राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 78

3. साक्षात्कार–कैप्टन रमेशचंद भट्ट, ग्राम– फुटशिल, गंगोलीहाट, पिथौरागढ़ जनपद, उत्तराखण्ड

4. वशिष्ठ, नीलिमा – 2001, राजस्थान की मूर्तिकला–राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 78

5. श्वेतश्वतर उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1938, IV, श्लोक 11

6. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 14, श्लोक 227.

7. चट्टोपाध्याय, सुधाकर इवॉल्यूशन ऑफ थीइस्टिक सेक्ट्स इन एनशेन्ट इन्डिया, पृ. 4

8. साक्षात्कार– श्री दीवान सिंह रावत, ग्राम– द्रोणागिरी, नीतिघाटी, चमौली जनपद, उत्तराखण्ड

9. साक्षात्कार– श्री शिव प्रसाद नैथानी– इतिहासकार, श्रीनगर, पौड़ी जनपद, उत्तराखण्ड

10. साक्षात्कार– श्री रणदेव राणा, ग्राम– ओसला, हर की दून घाटी, उत्तरकाशी जनपद, उत्तराखंड

11. साक्षात्कार– श्रीमती राकेश नेगी, ग्राम– बटसेरी, सांगला घाटी, किन्नौर जनपद, हिमाचल प्रदेश

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 107–115

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

जय प्रकाश नारायण- भारतीय लोकतंत्र के पुरोधा

हिमांशु कंवर इन्दा
शोधार्थी राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
डॉ. उम्मेद सिंह इन्दा
सह आचार्य राजनीति विज्ञान,राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बालेसर ,जोधपुर

सारांश

जयप्रकाश नारायण भारत के उन गिने–चुने दिग्गजों में से एक थे, जिनका जीवन स्वतंत्रता और न्याय के संघर्ष का संदेश था। स्वतंत्रता के बाद के युग में वह सत्ता के लिए बिना किसी कोलाहल के देश में संपूर्ण क्रांति शुरू करने वाले एकमात्र 'क्रूसेडर' थे।[1] वह एक राजनीतिक दार्शनिक की तुलना में अधिक राजनीतिक कार्यकर्ता थे। वे गांधीवादी–मार्क्सवादी थे। जयप्रकाश नारायण एक जन्मजात क्रांतिकारी थे जिनके जीवन का मिशन स्वतंत्रता और एक नई सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था दोनों के लिए लड़ना था। उन्होंने अपनी क्रांतिकारी भूमिका के लिए स्थायी छाप छोड़ी थी और समाजवाद, सर्वोदय, दलविहीन लोकतंत्र और पूर्ण क्रांति जैसे उनके लोकतांत्रिक मानवीय विचारों के लिए बहुत प्रशंसित थे।[2] वह 'प्रतिबद्ध समाजवादी' में से एक थे जिन्होंने भारत में शोषण की ताकतों यानी पूंजीवाद और जमींदारवाद के खिलाफ एक निर्भीक लड़ाई लड़ी। जयप्रकाश के सर्वोदय का तात्पर्य एक नई व्यवस्था से है जिसमें समाज वर्ग–विहीन और राज्यविहीन होगाय यह एक राजनीतिक व्यवस्था होगी जिसमें लोकनीति राजनीति की जगह लेगी यह 'जन समाजवाद' होगा, जो न केवल स्वतंत्रता और समानता, बल्कि शांति और अनंत काल भी सुनिश्चित करेगा।[3] वे एक निःस्वार्थ समर्पित क्रांतिकारी थे जिन्हें भारत माता ने जन्म दिया है। जयप्रकाश की मृत्यु के बाद विनोबा भावे ने कहा कि जयप्रकाश खुद को केवल ''लोक–सेवक''या लोगों का सेवक मानते थे।

जीवन और योगदानः

जय प्रकाश नारायण जिनके नाम का अर्थ है, ''प्रकाश की विजय'' का जन्म 11 अक्टूबर, 1902 को बिहार के सीताबदियारा गांव में हुआ था। वह ''संपूर्ण क्रांति'' के नेता थे, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महान योद्धाय मार्क्सवादी समाजवादी गांधीवादी बने, आजीवन अहिंसक विद्रोही लोकनायक। उनके पिता हरसू दयाल ने जेपी के बारे में डींग मारी है, ''मेरा बेटा एक

दिन एक महान व्यक्ति होगा।'' उनके पिता बिहार में नहर विभाग में एक छोटे अधिकारी थे और माता एक धार्मिक महिला थीं। उनके पिता चाहते थे कि वह एक सरकारी अधिकारी बनें। लेकिन गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रवाद, समाजवाद और जन आंदोलनों की ताकतों द्वारा निर्देशित समय की धाराओं ने उनके जीवन की दिशा बदल दी।[4]

उनका स्कूल और कॉलेज जीवनः

नौ साल की उम्र में जे.पी. ने गाँव से अपना पहला ब्रेक लिया और पटना के कॉलेजिएट स्कूल में 7 वीं कक्षा में भर्ती हुए। उन्होंने 1909 में माध्यमिक विद्यालय परीक्षा में छात्रवृत्ति प्राप्त कर खुद को एक मेधावी छात्र साबित किया। हाई स्कूल की शिक्षा पूरी करने के बाद, उन्होंने इंटरमीडिएट विज्ञान के छात्र के रूप में पटना कॉलेज में प्रवेश लिया। वे सेवानिवृत्त होते रहे और गहन अध्ययनशील रहे और 1918 तक वे अंतिम कक्षा में पहुँच चुके थे। वह 'राज्य सार्वजनिक मैट्रिक परीक्षा' के लिए बैठे और पटना कॉलेज को जिला योग्यता छात्रवृत्ति से सम्मानित किया गया।[5] अपने उच्च अध्ययन के दौरान वे गांधी के विचारों से अत्यधिक प्रभावित और प्रेरित थे। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के सत्याग्रह की सफल शुरुआत ने नवोदित जयप्रकाश के मन में सनसनी पैदा कर दी थी। लेकिन गांधीजी के राष्ट्रीय राजनीति में आने के बाद वर्ष 1915 में उन्होंने बिहार के चंपारण में सत्याग्रह की अपनी तकनीक को लागू किया। चंपारण में अंग्रेजों द्वारा नील किसानों का शोषण किया जाता था। चंपारण आंदोलन की सफलता ने युवा जयप्रकाश के देशभक्त मन को बहुत प्रभावित किया, जो मानसिक रूप से भविष्य के लिए तैयार हो गया था। उसके बाद जेपी स्वदेशी हो गए। उन्होंने खुद को एक कुर्ता, एक घर–काता, हाथ से बुने हुए कपड़े और एक तपस्वी छोटी धोती (ढीला वस्त्र) पहनाया। अठारह साल की उम्र में जेपी का विवाह ब्रज किशोर प्रसाद की बेटी प्रभावती से 14 अक्टूबर 1920 में हुआ था।[6]

चूंकि उनकी इच्छा विज्ञान में उच्च अध्ययन करने की थी और फिर उन्होंने अमेरिका जाने का फैसला किया। उन्होंने अपनी पत्नी को छोड़ दिया प्रभाती गांधी की एक महान शि या बन गईं। उनके अमेरिका प्रवास ने अलग–अलग अनुभव लाए और जब तक वे भारत वापस आए, तब तक वे गांधीजी के अनुयायी नहीं थे। वे कैलिफोर्निया, आयोवा, शिकागो और ओहियो के विश्वविद्यालयों में पढ़े है। आर्थिक तंगी के कारण उन्हें शूशाइन बॉय, होटल वेटर और कारखानों में काम करके पैसा कमाना पड़ा। वहां पढ़ते हुए वे कम्युनिस्ट मित्रों के संपर्क में आए, वे मार्क्स और उनके विचारों से प्रभावित थे और तदनुसार उन्होंने ओहियो विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और समाजशास्त्र में एम.ए. किया। वर्ष 1929 में वे भारत आए। जब तक वे भारत पहुंचे, तब तक वे गांधीवादी सिद्धांत के अनुयायी नहीं थे। गांधी के प्रति उनके मन में बहुत सम्मान था, लेकिन गांधीवाद में उनका विश्वास नहीं था। गांधीजी के निष्क्रिय प्रतिरोध से मार्क्स की हिंसक क्रांति तक की यात्रा, दृढ़ विश्वास से वे मार्क्सवादी बन गए थे।

सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था (समाजवाद)

जयप्रकाश नारायण एक जन्मजात क्रांतिकारी थे जिनके जीवन का मिशन स्वतंत्रता और एक नई सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था दोनों के लिए लड़ना था। इसलिए जब भारत को

स्वतंत्रता मिली, तो अन्य नेता सत्ता संघर्ष में शामिल हो गए, उन्होंने एक सामाजिक क्रांति की योजना बनाई ताकि वर्तमान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को एक नई समाजवादी व्यवस्था से बदल दिया जा सके। वह 'प्रतिबद्ध समाजवादी' में से एक थे जिन्होंने भारत में शोषण की ताकतों यानी पूंजीवाद और जमींदारवाद के खिलाफ एक निर्भीक लड़ाई लड़ी।[7]

अपने राजनीतिक दिमाग की नवोदित अवस्था में, वह 'मार्क्सवाद समाजवाद' के नशे में धुत थे। वे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग युद्ध की आवश्यकता के प्रति आश्वस्त थे। लेकिन जब वे भारत आए तो राष्ट्रवाद की धारा सबसे शक्तिशाली कम्युनिस्ट क्रांति की संभावना को कम कर रही थी, लेकिन उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होना पसंद किया। और 1934 में उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। उन्होंने गांधी के सामाजिक दर्शन का विरोध किया और तर्क दिया कि यह राजकुमारों को कंगालों का शोषण करने का अवसर देता है। उन्होंने गांधीवाद को 'डरपोक आर्थिक विश्लेषण' 'अप्रभावी नैतिकता' के रूप में खारिज कर दिया और मार्क्सवादी समाजवाद सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था के उनके विचारों का आधार है। लेकिन चालीस के दशक में राजस्थान के देवली में विशेष शिविर जेल में कैद होने के बाद, उन्होंने नैतिक मूल्यों के साथ एक लोकतांत्रिक राज्य की आवश्यकता को महसूस किया। प्रशासन में विकेन्द्रीकरण पर जोर देने और राजनीति में कुछ नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण उन्हें गांधीवाद की ओर आकर्षित किया गया था।[8]

सामाजिक–आर्थिक विकृतियों का विश्लेषण

अपनी पुस्तक 'व्हाई सोशलिज्म' में उन्होंने भारत में समाजवाद को अपनाने के अपने तर्कों को आगे बढ़ाया। उन्होंने भारत की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों का विश्लेषण किया जिसकी चर्चा नीचे की गई है।

समाज में असमानता के मुख्य कारण हैं–

1. रैंक, संस्कृति और अवसर की असमानता
2. संपत्ति और जीवन के लिए आवश्यक चीजों का सबसे असमान रूप से असमान वितरण।
3. धन का संचय और एकाग्रता।[9]

समाजवाद–सामाजिक–आर्थिक विकृतियों के लिए एकमात्र रामबाण इलाज

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा। उन्होंने देखा ''समाजवाद सामाजिक पुनर्निर्माण की एक प्रणाली है। समाजवाद व्यक्तिगत आचार संहिता नहीं है यह एक हॉट हाउस ग्रोथ है।'' इसका अर्थ है देश के सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक जीवन में बदलाव–जहां कब्जे में असमानता और शोषण नहीं होगा। यह सभी पक्षों से संतुलित विकास वाला समाज होगा। उन्होंने कहा कि समाजवाद सामाजिक संगठन की एक प्रणाली है जिसके कुछ उद्देश्य हैं जो इस प्रकार हैं–

- शोषण और गरीबी का उन्मूलन।
- स्व–विकास के लिए सभी को समान अवसरों का प्रावधान।
- समाज के भौतिक और नैतिक संसाधनों का पूर्ण विकास।
- राष्ट्रीय धन का समान वितरण।[10]

सामाजिक–आर्थिक निर्माण

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद को सामाजिक–आर्थिक निर्माण का एक पूर्ण सिद्धांत माना। उन्होंने कहा कि समाज में असमानता उत्पादन के साधनों के अनुपातहीन नियंत्रण के कारण है। उन्होंने राजस्व में कमी, व्यय की सीमा और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की वकालत की। 1940 में कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में उन्होंने बड़े पैमाने पर उत्पादन के सामूहिक स्वामित्व और नियंत्रण, और भारी उद्योगों, भारी परिवहन, शिपिंग और खनन के राष्ट्रीयकरण की वकालत की। उन्होंने गांधीवाद को अपने समाजवाद का आधार बनाया। गांव को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर इकाई बनाया जाए। उन्होंने जोतने वाले को भूमि के वितरण, सहकारी खेती और कृषि ऋण को रद्द करने का समर्थन किया।

नई सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने का कोई भी प्रयास उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व के उन्मूलन और सामाजिक स्वामित्व की स्थापना के साथ शुरू होना चाहिए। इससे कुछ हाथों में धन संचय की समस्या का समाधान होगा और समाज से शोषण का उन्मूलन होगा। उन्होंने कृषि और उद्योग दोनों में समाजवाद को लागू करने की प्रक्रिया का वर्णन किया। 'समाजवादी उद्योग' की स्थापना के क्षेत्र में, उन्होंने कहा, बड़े और छोटे दोनों उद्योगों को लोकतांत्रिक रूप से प्रबंधित और नियंत्रित किया जाना चाहिए और इसका स्वामित्व सरकार के पास होना चाहिए। इसलिए आर्थिक क्षेत्र में जयप्रकाश के समाजवाद में शामिल हैं–

- जमींदारीवाद और पूंजीवाद का उन्मूलन।
- निजी संपत्ति के अधिकारों को समाप्त करके उत्पादन के साधनों का समाजीकरण।
- ग्राम पंचायतों द्वारा चलाई जा रही सहकारी खेती।
- सामूहिक खेती।
- श्रमिकों की भागीदारी वाले राज्यों के स्वामित्व वाले बड़े पैमाने के उद्योग और उत्पादक सहकारी समितियों में संगठित लघु उद्योग।

सर्वोदय की अवधारणा

जयप्रकाश ने पचास के दशक में समाजवाद से सर्वोदय की यात्रा की। सर्वोदय आंदोलन स्वतंत्रता पूर्व भारत में गांधी द्वारा शुरू किया गया था और स्वतंत्रता के बाद के युग में विनोबा भावे द्वारा नेतृत्व किया गया था। जयप्रकाश के सर्वोदय का तात्पर्य एक नई व्यवस्था से है जिसमें समाज वर्ग–विहीन और राज्यविहीन होगाय यह एक राजनीतिक व्यवस्था होगी जिसमें लोकनीति राजनीति का स्थान लेगी यह 'जन समाजवाद' होगा, जो न केवल स्वतंत्रता और समानता, बल्कि शांति और अनंत काल भी सुनिश्चित करेगा।

सर्वोदय का अर्थ

सर्वोदय का उद्देश्य सत्य, प्रेम और अहिंसा के आधार पर एक नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है। यह राज्य और उसकी सरकार की अत्यधिक आलोचनात्मक है, क्योंकि दोनों बल और जबरदस्ती पर आधारित हैं। जैसे, सर्वोदय का उद्देश्य हर प्रकार के अधिकार से मुक्त एक सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है। इसका अंतिम उद्देश्य एक राज्यविहीन समाज की स्थापना करना है जहां ''शासक और शासित व्यक्ति का विलय हो जाएगा''।

सर्वोदय सामाजिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं: –

समाज में कोई शक्ति हावी नहीं होनी चाहिएय उत्तम विचार का अनुशासन होना चाहिए। समाज को समर्पित व्यक्ति की सभी सुविधाएं जो व्यक्ति को वृद्धि और विकास के लिए प्रदान करनी चाहिएय तथा ईमानदारी से की जाने वाली सभी कॉलिंग के नैतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्य समान होने चाहिए।

सर्वोदय आंदोलन में शामिल होने के कारण:

1954 में, जयप्रकाश एक जीवनदानी के रूप में सर्वोदय आंदोलन में शामिल हो गए और भूदान और सर्वोदय आंदोलन को अपना जीवन समर्पित करने के दृढ़ संकल्प के साथ सत्ता–राजनीति छोड़ दी। उन्होंने देखा कि जब तक समाजवाद को सर्वोदय में नहीं बदला जाता, तब तक जीवन के उदात्त लक्ष्य जैसे स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा और शांति समाज द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

भारत जैसे गरीब देशों में लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य है। लेकिन यह काम नहीं करेगा यदि भौतिक वस्तुओं की अतृप्त भूख जीवन का लक्ष्य बन जाए। मनुष्य के मन और हृदय में शांति नहीं हो सकती, यदि यह भूख उन पर लगातार बढ़ती रहे। यह अनिवार्य रूप से व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के बीच एक अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा स्थापित करेगा। ऐसे बेचौन समाज में हिंसा और युद्ध स्थानिक होगा। समानता, स्वतंत्रता, भाईचारा और शांति सभी भौतिकवाद की सार्वभौम बाढ़ में डूबे रहने के खतरे में होंगे। इसलिए नैतिक जीवन और मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए शारीरिक भूख को अनुशासित करना आवश्यक है। जीवन का समाजवादी तरीका आम अच्छाई साझा करने का तरीका है यह बंटवारा जितना स्वेच्छा से किया जाता है, समाज में तनाव और जबरदस्ती कम होती है और समाजवाद अधिक होता है।[11]

जयप्रकाश की सर्वोदय की व्याख्या:

सर्वोदय लोगों का समाजवाद है, जहां लोगों की स्वैच्छिक भागीदारी और समाजवाद का गैर–राज्य स्वरूप अधिक होगा। सर्वोदय का दर्शन मनुष्य की 'आंतरिक अच्छाई' में विश्वास करता है। लेकिन इसका उद्देश्य नैतिकता और नैतिकता के साथ एक छोटे से समाज की स्थापना करना है। उन्होंने कहा कि 'स्वशासन, स्व–प्रबंधन, परस्पर सहयोग और साझेदारी, समानता, स्वतंत्रता, भाईचारा सभी का अभ्यास और विकास किया जा सकता है यदि पुरुष छोटे समुदायों में रहते हैं।

इसलिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि ''सर्वोदय समाज का रूप ऐसा होगा कि लोग अपने मामलों को सहयोग, गैर संघर्ष, आत्म–अनुशासन और जिम्मेदारी की भावना के साथ प्रबंधित करेंगे''। जब तक मनुष्य सत्याग्रह और अहिंसा के महत्व को नहीं जानता, वर्ग–युद्ध समस्या का समाधान नहीं कर सकता। क्योंकि वर्ग–युद्ध से समाज में भाइयों में घृणा उत्पन्न होगी। आर्थिक क्षेत्र में, जयप्रकाश ने मार्क्सवाद के वर्ग–युद्ध, लोकतांत्रिक समाजवाद के राष्ट्रीयकरण से भूदान, ट्रस्टीशिप और सर्वोदय तक की यात्रा की। उन्हें यकीन था कि भूदान के आदर्श हैं–

1. भूमिहीनों को अतिरिक्त भूमि देना। (भूदान)।
2. भूमि का सांप्रदायिकरण। (ग्रामदान)।
3. संपत्ति को गांधीजी ने ट्रस्टीशिप में बदलना। (संपत्तिदान)।[12]

धन के संचय और एकाग्रता की समस्या का वास्तविक समाधान प्रदान करता है। उन्होंने देखा कि बाहरी सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के साथ आवक मानव परिवर्तन भी था। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि भूदान सर्वांगीण सामाजिक और मानव क्रांति की शुरुआत थी, मानव क्योंकि इसका उद्देश्य समाज के साथ–साथ मनुष्य को बदलना है। उन्होंने दलगत राजनीति और संसदीय लोकतंत्र को त्याग दिया और सर्वोदय के गांधीवादी तरीके से एक विकल्प खोजा जो सहभागी, अहिंसक और अ–शक्ति की राजनीति के लिए खड़ा था। सर्वोदय एक ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करता है जहां सत्ता के सभी केंद्रों को समाप्त कर दिया जाएगा। पूर्ण विकेंद्रीकरण, जनता की स्वैच्छिक भागीदारी के साथ ग्राम राज की व्यवस्था होगी और किसी भी दल या राज्य के हस्तक्षेप के बिना, लोकनीति राजनीति पर प्रबल होगी।

जयप्रकाश मानव स्वतंत्रता और लोकतंत्र के लिए अथक योद्धा थे। उन्होंने नई भारतीय राजनीति की खोज के लिए ईमानदारी से प्रयास किया था जहां सत्ता वास्तव में लोगों की होगी। उन्होंने भारत में वर्तमान राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं की दक्षता पर सवाल उठाए थे और लोकतंत्र को अधिक लोकतांत्रिक, कुशल, स्थायी और सार्थक बनाने के उपायों का सुझाव दिया था। जयप्रकाश का उद्देश्य एक स्टेटलेस और सहभागी लोकतंत्र बनाना और स्थापित करना है। सर्वोदय का उद्देश्य राज्य और सरकार पर कम महत्व देने वाले लोगों की सामूहिक भागीदारी और स्वैच्छिक भागीदारी के साथ स्वतंत्रता, समानता, शांति और बंधुत्व है।

जयप्रकाश की सहभागी लोकतंत्र की अवधारणा

उनकी भागीदारी और दलविहीन लोकतंत्र की अवधारणा को 1961 में प्रकाशित उनके पैम्फलेट 'लोगों के लिए स्वराज' में विस्तृत विवरण मिला। उन्होंने कहा कि भारतीयों ने पश्चिमी लोकतंत्र का पालन किया, जहां सरकार बिना किसी भागीदारी के लोगों की सहमति पर आधारित होती है। वह चाहते थे और राजनीति और शासन में लोगों की भागीदारी की वकालत करते थे, इसके लिए राजनीतिक और साथ ही आर्थिक विकेंद्रीकरण की एक संपूर्ण प्रणाली की आवश्यकता होगी। उन्होंने गांधी के इस विचार की वकालत की कि जैसे–जैसे आप नीचे के स्तर से ऊपर की ओर बढ़ते हैं, प्रत्येक उच्च स्तर पर कम से कम कार्य और शक्तियाँ होनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था में प्रत्येक स्तर के लोगों के पास सभी राजनीतिक मामलों को प्रबंधित करने का पूरा अवसर होगा। लोकतंत्र की ऐसी व्यवस्था लोगों को लोकतंत्र में हिस्सेदारी के साथ–साथ स्वराज की अनुभूति भी दिला सकती है।[13]

पंचायती राज व्यवस्था लोकतंत्र पर जयप्रकाश के विचारों की नींव है। क्योंकि यह सरकार ले जाएगा। लोगों के दरवाजे तक पहुंचना और प्रत्येक नागरिक को इसमें भाग लेने में सक्षम बनाना। लेकिन उन्होंने कुछ शर्तें भी रखीं, जो इस प्रकार हैं–

- लोगों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- राजनीतिक दलों को पंचायतों के चुनाव और कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
- पंचायतों को सत्ता और जिम्मेदारियों का वास्तविक हस्तांतरण।

- स्थानीय अधिकारियों को वित्तीय स्वायत्तता देना, सिविल सेवकों को जवाबदेह बनाना।

इन शर्तों पर सहभागी लोकतंत्र की संरचना का निर्माण करना होगा। और उन्होंने यह भी देखा कि राजनीतिक विकेंद्रीकरण आर्थिक विकेंद्रीकरण की आवश्यकता है। एक विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था स्थानीय और क्षेत्रीय जरूरतों की संतुष्टि के लिए स्थानीय, क्षेत्रीय, मानव और भौतिक संसाधनों के पूर्ण उपयोग की मांग करती है। छोटी मशीन, श्रम प्रधान अर्थव्यवस्था और ग्रामोद्योग पर जोर दिया जाना चाहिए।

संपूर्ण क्रांति की अवधारणा

'संपूर्ण क्रांति' का आह्वान जयप्रकाश नारायण की अंतिम क्रांतिकारी खोज थी। स्वतंत्रता के बाद के युग में यह एकमात्र स्वदेशी क्रांति है। हालांकि एक सर्वोदय कार्यकर्ता, एक क्रांतिकारी जयप्रकाश भारतीय राज्य व्यवस्था के ढहने के प्रति उदासीन नहीं रह सके। भ्रष्टाचार, हेरफेर, शोषण, सामाजिक भेदभाव, बेरोजगारी और सत्तावाद के उदय ने जयप्रकाश जैसे स्वतंत्रता आंदोलन के एक पुराने रक्षक को स्वतंत्रता के बाद की राजनीति में एक पूर्ण क्रांति शुरू करने के लिए उकसाया।

संपूर्ण क्रांति का अर्थ

5 जून, 1974 को पटना के गांधी मैदान में 5 लाख लोगों की विशाल सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने संपूर्ण क्रांति नामक क्रांतिकारी कार्यक्रम की शुरुआत की। उन्होंने कुल क्रांति को सात क्रांतियों के संयोजन के रूप में परिभाषित किया–

सामाजिक क्रांति– समाज में समानता और भाईचारे की स्थापना करना।

आर्थिक क्रांति– अर्थव्यवस्था का विकेन्द्रीकरण और गाँव को विकास की इकाई मानकर आर्थिक समानता लाने का प्रयास करना।

राजनीतिक क्रांति– राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त करना, राजनीति का विकेंद्रीकरण करना और उन्हें अधिक अधिकार देकर सार्वजनिक भागीदार बनाना।

सांस्कृतिक क्रांति– भारतीय संस्कृति की रक्षा और आम आदमी में सांस्कृतिक मूल्यों का उत्थान।

शैक्षिक क्रांति– शिक्षा को व्यवसाय आधारित बनाना और शिक्षा प्रणाली को बदलना।

आध्यात्मिक क्रांति– नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना और भौतिकवाद को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ना।

विचार क्रांति– सोचने के तरीके में क्रांति।[14]

1960 के दशक के अंत में जयप्रकाश नारायण राज्य की राजनीति में प्रमुखता से लौटे। 1974 में, उन्होंने बिहार राज्य में छात्र आंदोलन का नेतृत्व किया जो धीरे–धीरे एक लोकप्रिय जन आंदोलन के रूप में विकसित हुआ जिसे बिहार आंदोलन के रूप में जाना जाता है। इस आंदोलन के दौरान जेपी ने शांतिपूर्ण पूर्ण क्रांति का आह्वान किया था, वी.एम. तारकुंडे के साथ मिलकर उन्होंने 1974 में सिटीजन फॉर डेमोक्रेसी और 1976 में पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज, दोनों गैर सरकारी संगठनों की स्थापना की, ताकि नागरिक स्वतंत्रता को बनाए रखा

जा सके और उनकी रक्षा की जा सके। 12 जून, 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने चुनाव में भ्रष्ट आचरण के आरोप में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को दोषी ठहराया। जयप्रकाश ने उन्हें तब तक इस्तीफा देने की सलाह दी जब तक कि उनके नाम को सुप्रीम कोर्ट से मंजूरी नहीं मिल जाती। इसके बजाय, उन्होंने 26 जून को आपातकाल लगा दिया। जयप्रकाश को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें चंडीगढ़ भेज दिया गया, जहां उन्हें एक अस्पताल में कैदी रखा गया। ''मेरी दुनिया मेरे चारों ओर जर्जर अवस्था में है,'' वह रोया। उनकी तबीयत बिगड़ने पर उन्हें बॉम्बे के एक अस्पताल में ले जाया गया।[15]

अंततः जनवरी 1977 में आपातकाल हटा लिया गया। नए सिरे से चुनाव की घोषणा की गई। जयप्रकाश के मार्गदर्शन में कई दलों ने मिलकर जनता पार्टी बनाई। पार्टी ने अपने घोषणापत्र में जयप्रकाश के सभी लक्ष्यों को शामिल किया। जब इंदिरा गांधी को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा चुनावी कानूनों के उल्लंघन का दोषी पाया गया, तो नारायण ने इंदिरा को इस्तीफा देने के लिए बुलाया, और सामाजिक परिवर्तन के एक कार्यक्रम की वकालत की, जिसे उन्होंने संपूर्ण क्रांति कहा। 18 जनवरी, 1977 को इंदिरा द्वारा आपातकाल को रद्द करने और चुनावों की घोषणा के बाद, यह जेपी के मार्गदर्शन में था कि जनता पार्टी (इंदिरा गांधी विरोधी विपक्ष के व्यापक स्पेक्ट्रम के लिए एक वाहन) का गठन किया गया था। जनता पार्टी सत्ता में आई और केंद्र में सरकार बनाने वाली पहली गैर–कांग्रेसी पार्टी बन गई।[16]

संपूर्ण क्रांति के कारणः

जयप्रकाश की कुल क्रांति का पता भारतीय समाज में मौजूद सामाजिक–आर्थिक, शिक्षा, नैतिक और राजनीतिक विकृतियों से लगाया जा सकता है। उन्होंने अपनी गिरफ्तारी और एकांत कारावास के वर्ष के दौरान लिखी गई अपनी पुस्तक 'प्रिजन डायरी' में संपूर्ण क्रांति पर अपना नोट दिया, जिसमें उन्होंने इस बारे में बात की कि उन्होंने 'कुल क्रांति' का आह्वान क्यों किया। स्वतंत्रता के बाद से, उन्होंने देखा, समाज के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचे में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ है।

जमींदारी समाप्त कर दी गई है, भूमि सुधार कानून पारित किए गए हैं, अस्पृश्यता को कानूनी रूप से प्रतिबंधित किया गया है और इसी तरह। लेकिन भारत के अधिकांश हिस्सों में गांव अभी भी ऊंची जातियों और बड़े और मध्यम भूमि मालिकों की चपेट में है। हरिजनों को जिंदा जला दिया जाता है। आदिवासी अभी भी सबसे पिछड़े वर्ग हैं और साहूकार अभी भी आदिवासियों को धोखा देते हैं और उनका शोषण करते हैं। राष्ट्रीयकरण के बावजूद, समाजवाद के लक्षण का कोई तत्व नहीं है। कोई आर्थिक लोकतंत्र नहीं है, जिसके बारे में बहुत चर्चा की जाती है। कई समितियों और आयोगों के बावजूद शिक्षा प्रणाली मूल रूप से वही है जो ब्रिटिश शासन के दौरान थी। आजादी के बाद से राजनीतिक, सार्वजनिक और व्यावसायिक नैतिकता में लगातार गिरावट आई है। जनसंख्या वृद्धि तेजी से आगे बढ़ रही है। गरीबी भी बढ़ रही है 40 प्रतिशत से अधिक लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं। लोगों की मूलभूत जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही हैं। इसलिए समाज में एक व्यवस्थित बदलाव की जरूरत है, यानी समाज के हर क्षेत्र और पहलू में एक संपूर्ण क्रांति।

निष्कर्ष–

नारायण ने स्वतंत्रता के पहले 25 साल खोए हुए कारणों के संरक्षक संत के रूप में बिताएः प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, सर्वोदय आंदोलन, यहां तक कि कश्मीर के लिए आत्मनिर्णय भी।

गणतंत्र के जीवन में उनका सबसे स्थायी योगदान वह आंदोलन था जिसका नेतृत्व उन्होंने श्रीमती गांधी को अपदस्थ करने के लिए किया, जिसने आपातकाल को उकसाया। जनता पार्टी, जो केंद्र सरकार चलाने वाली पहली गैर–कांग्रेसी पार्टी है, की प्रतिष्ठा के रूप में, वह कांग्रेस के राजनीतिक पतन को प्रशिक्षित करने वाली राजनीतिक ताकतों को उत्प्रेरित करने का श्रेय ले सकते हैं। नारायण ने कई किताबें भी लिखा, विशेष रूप से भारतीय राजनीति का पुनर्निर्माण। उन्होंने हिंदू पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा दिया, लेकिन शुरू में संघ परिवार द्वारा प्रचारित पुनरुत्थानवाद के रूप की गहरी आलोचना की।

1998 में, उन्हें मरणोपरांत उनके सामाजिक कार्यों के सम्मान में भारत के सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार भारत रत्न से सम्मानित किया गया था। अन्य पुरस्कारों में 1965 में लोक सेवा के लिए मैग्सेसे पुरस्कार शामिल है। नारायण को कभी–कभी सम्मानित उपाधि लोक नायक या 'लोगों का मार्गदर्शक' कहा जाता है। उनकी स्मृति में एक विश्वविद्यालय (छपरा, बिहार में जे पी विश्वविद्यालय) और दो अस्पताल (नई दिल्ली में एल एन जे पी अस्पताल और पटना में जय प्रभा अस्पताल) खोले गए हैं।

वह एक योद्धा और दूरदर्शी थे। निःसंदेह आलोचकों ने उन्हें विसंगतियों वाले व्यक्ति के रूप में आड़े हाथों लिया है। कुछ लोग उन्हें एक आदर्शवादी विचारक, एक आदर्श स्वप्नदृष्टा और बहुत उदार अंतर्राष्ट्रीयवादी के रूप में देखते हैं। सर्वोदय और सहभागी लोकतंत्र पर उनके विचार सरल और छोटे समाज के लिए प्रासंगिक हो सकते हैं, लेकिन आधुनिक जटिल समाज पर लागू नहीं हो सकते। समाजवाद, सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति पर उनके विचार उनके मानवीय लक्ष्यों की गवाही देते हैं। स्वतंत्रता के बाद की भारतीय राजनीति में जयप्रकाश का लोगों से आह्वान मंत्रमुग्ध करने जैसा था। वे एक निःस्वार्थ समर्पित क्रांतिकारी थे जिन्हें भारत माता ने जन्म दिया है। जयप्रकाश की मृत्यु के बाद विनोबा भावे ने कहा कि जयप्रकाश खुद को केवल ''लोक–सेवक'' या लोगों का सेवक मानते थे।

❐

सन्दर्भ –

1. *भारत सरकार के गृह सचिव का पत्र बिहार सरकार के न्यायिक सचिव को शिमला, सितम्बर 1938*
2. *पॉलिटिकल(स्पेशल), बिहार सरकार, फाईल नं.–363, 1938*
3. *भट्टाचार्य, अजित– जयप्रकाश नारायणः ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, दिल्ली1971, पृ.28–29*
4. *घोष, शंकर– लीडर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया, नई दिल्ली, 1980, पृ. 376*
5. *पॉलिटिकल(स्पेशल)– बिहार सरकार, फाईल सं. 86, 1940*
6. *इंडियन नेशन, अक्टूबर 18, 1941*
7. *रामनंदन मिश्र, संस्मरण, लहेरियासराय, 1981, पृ. 58*
8. *भूयां, अरूण– दि क्वीट इंडिया मूवमेंट, पृ.112*
9. *बेनीपुरी, रामवृक्ष जयप्रकाश, उषा प्रकाशन, मुँगेर, 1975 पृ. 112*
10. *राम, मुनीश्वर ''मुनीश'' बज्जिका 'चल का स्वतंत्रता संग्राम, अभिधा प्रकाशन, 2005 पृ. 132–33*
11. *बेनीपुरी, रामवृक्ष पूर्वोद्धत*
12. *राय, मुनीश्वर ''मुनीश'' पूर्वोद्धत*
13. *बेनीपुरी, रामवृक्ष– पूर्वोद्धत, पृ. 117*
14. *दत्त, के.के.– बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी 1999, पृ. 257–58*
15. *Political Theory and Organization] L-S- Rathore and S-A-H- Haqqi] Eastern Book Company-16- Indian Political Tradition – From Manu to Ambedkar] D-K- Mohanty*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 116–121

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

झुंझुनूं जिलें में भूमिगत जल स्तर में परिवर्तन का प्रतिरूप एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. संजीव कुमार
सहा. आचार्य, भूगोल विभाग, श्री राधेश्याम आर. मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुंझुनूं
डॉ. कविता चौधरी
सहा. आचार्य, भूगोल विभाग, श्री राधेश्याम आर. मोरारका राजकीय, महाविद्यालय, झुंझुनूं

सारांश

राजस्थान की विषम भौगोलिक परिस्थितियों, विशाल भू–भाग, जिसका दो–तिहाई हिस्सा मरूस्थलिय है, के कारण यह सदियों से ही जल संसाधन की दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। कम व अनियमित वर्षा एवं उच्च तापमान यहां की जलवायु को प्रतिकूल बनाने वाले प्रमुख कारक है। सतही जल स्त्रोतों यथा नदियां, नहरों, तालाब आदि के अभाव के कारण यहां पेयजल एवं कृषि उत्पादन पूर्णरूप से वर्षा एवं जल के वैकल्पिक स्त्रोत भूमिगत जल संसाधन पर निर्भर है। कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाले झुंझुनूं जिले के आठों ब्लॉक भूमिगत जल संसाधन की दृष्टि से अतिदोहित श्रेणी में सम्मिलित है तथा भूमिगत जल विकास स्तर 195 को प्राप्त हो चुका है। सिंचाई द्वारा कृषि उत्पादन में दीर्घकालिन स्थायित्व बनाये रखने के लिए प्रति व्यक्ति जल की न्यूनतम उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए भूमिगत जल संसाधन के संरक्षण एवं नियोजन की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान राज्य के झुंझुनूं जिले में ब्लॉकानुसार भूमिगत जल स्तर में परिवर्तन के प्रतिरूप का अध्ययन किया गया है।

मूल शब्द– संतृप्त क्षेत्र, जलभृत, अतिदोहित श्रेणी, लवणता, खडीन

प्रस्तावना

जल मानव के साथ–साथ जीव–जन्तुओं और पेड़–पौधों सहित समस्त जीव जगत के जीवन का आधार है।[1] पृथ्वी पर जल की उपलब्धता के कारण ही जीवन संभव है। जल का उपयोग, पेयजल, सिंचाई, दैनिक घरेलु कार्य, उद्योग आदि कार्यो में किया जाता है परन्तु पृथ्वी पर कुल उपलब्ध जल में से केवल 3 प्रतिशत जल ही स्वच्छ जल है और इसमें से मात्र 1 प्रतिशत से भी कम हिस्सा जीव–जगत के लिए उपलब्ध है। जल एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है

जो धीरे धीरे एक दुर्लभ अल्पापूर्ति वाली वस्तु होते जा रहा है। भारत में विश्व की 17 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है जबकि यहां मात्र 4 प्रतिशत जल ही उपलब्ध है। भारत में धरातलीय एवं भूमिगत जल का सबसे अधिक उपयोग कृषि में होता है इसमें धरातलीय जल का 89 प्रतिशत और भूमिगत जल का 92 प्रतिशत भाग उपयोग किया जाता है।[2]

प्राकृतिक एवं भौगोलिक स्थिति के कारण राजस्थान देश का शुष्कतम राज्य है। 10.45 प्रतिशत भू–भाग पर यहां देश की 5.67 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, साथ ही 13.88 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि एवं 11 प्रतिशत पशुधन भी इसी प्रदेश में है वही दूसरी ओर केवल 1.16 प्रतिशत सतही जल एवं 1.17 प्रतिशत भूजल संसाधन उपलब्ध है।[3] अरावली पर्वत श्रेणी के पश्चिम में पश्चिमी मरूस्थल क्षेत्र में स्थित जिलों में कम व अनियमित वर्षा, उच्च तापमान आदि प्रतिकूल जलवायु कारकों के कारण यहां प्राचीन काल से ही स्थलीय जल संसाधनों का अभाव रहा है, फलस्वरूप यहां के निवासियों के द्वारा पेयजल एवं सिंचाई हेतु भूमिगत जल एवं परम्परागत जल संरक्षण विधियों यथा खडीन, टांका, बावड़ी, जोहड़ आदि का उपयोग किया जाता रहा है। रियासत काल में पेय जल स्त्रोतों यथा कुएं, नल, तालाब, बावड़िया आदि का निर्माण जल संरक्षण एवं आम जन की जरूरतों को पूरा करने के लिए स्थानीय पर्यावरण के अनुरूप ग्रामीण जन, संत, समाजसेवी मिल कर किया करते थे परन्तु आधुनिकता की भागदौड़ एवं व्यवस्तताओं के चलते अब ये कार्य लोगों ने सरकार के भरोसे छोड़ दिया है।[4] परन्तु विगत कुछ दशकों से बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, खाद्यान व कृषि उत्पादन, नगरीकरण, आधुनिक जीवन शैली, स्वच्छ पेय जल सहित विभिन्न मानवीय गतिविधियों के लिए जल पर निर्भरता निरन्तर बढ़ती जा रही है। जिसके परिणामस्वरूप अत्यधिक दोहन से भूमिगत जल स्तर गिरता जा रहा है जिसका सीधा प्रभाव भूमिगत जल की गुणवता पर पड़ता है। वर्तमान में 98 प्रतिशत लवणता प्रभावित एवं 89 नाइट्रेट प्रभावित गांव एवं ढ़ाणिया राजस्थान में स्थित है। भूमिगत जल की दृष्टि से राज्य के 295 ब्लॉक में से 203 ब्लॉक अर्थात 69 प्रतिशत ब्लॉक अतिदोहित श्रेणी में, 23 ब्लॉक संवेदनशील श्रेणी में, 29 ब्लॉक अर्द्ध संवेदनशील श्रेणी में और मात्र 37 ब्लॉक सुरक्षित श्रेणी में सम्मिलित है।[5]

अध्ययन क्षेत्र

झुंझुनूं जिला जल संसाधन की दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा है। सतही जल संसाधन के अभाव में भूमिगत जल संसाधन का अति दोहन किया जा रहा है। वर्तमान में जिले के आठों ब्लॉक अतिदोहित श्रेणी में सम्मिलित हैं।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. झुंझुनूं जिले में भूमिगत जल स्तर में उतार चढ़ाव का मौसमी आंकलन करना।
2. झुंझुनूं जिले में ब्लॉकानुसार भूमिगत जल स्तर में परिवर्तन के प्रतिरूप का अध्ययन करना।

विधि तंत्र एवं आंकड़ों का एकत्रीकरणः–

प्रस्तुत शोध झुंझुनूं जिले में भूमिगत जल स्तर में परिवर्तन के प्रतिरूप का अध्ययन करने के लिए द्वितीयक स्त्रोंतों पर आधारित आंकड़ों को आधार बनाया गया है। भूमिगत जल स्तर से सम्बन्धित आंकड़ों का संग्रहण भूजल विभाग झुंझुनूं तथा जिला सांख्यिकीय रूपरेखा के माध्यम से किया गया है तथा तालिका की सहायता से प्रदर्शित किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय :–

अध्ययन क्षेत्र झुंझुनूं जिला राजस्थान राज्य की उत्तरी–पूर्वी सीमा का निर्धारण करता है, इसका अंक्षाशीय विस्तार $27^0$38′ उत्तरी से $28^0$31′ उत्तरी एवं देशान्तरीय विस्तार $75^0$02′ पूर्वी से $76^0$06′ पूर्वी के मध्य है। यह उत्तर पूर्व में हरियाणा के हिसार और महेन्द्रगढ़ जिले, दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व में सीकर, उत्तर–पश्चिम में चूरू से घिरा हुआ है। अध्ययन क्षेत्र आठ ब्लॉक में विभक्त है जिसमें 12 नगर एवं 976 गांव बसे हुए है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यहां की कुल जनंसख्या 2137045 है जिसमें 1095896 पुरूष जनसंख्या एंव 1041149 स्त्री जनसंख्या है। लिंगानुपात 950, साक्षरता 74 प्रतिशत, जनसंख्या घनत्व 361 है। वही दूसरी ओर कुल क्षेत्रफल 592800 वर्ग हैक्टेयर, वास्तविक बोया गया क्षेत्र 390864 हैक्टेयर, कुल सिंचित क्षेत्र 221410 हैक्टेयर एंव कुओं/नलकूपों की संख्या 6183 है।[6]

अर्द्धशुल्क जलवायु में स्थिति झुंझुनूं जिले में औसत वार्षिक तापमान 25.07^0 सैल्सियस औसत वार्षिक वर्षा 47.51 सेन्टीमीटर है। वर्षा की कम मात्रा के कारण सतही जल संसाधन यथा नदी–नालों, तालाब आदि का प्रायः अभाव है। एक मात्र कांतली नदी दक्षिण से उत्तर दिशा में प्रवाहित होती है, जो विगत दो दशकों से अवैध खनन एवं वर्षा की अनियमितता के कारण मृत प्रायः है। इस प्रकार यहां कृषि आश्रितता अधिक होने के कारण भूमिगत जल संसाधन पर दबाव अधिक रहता है। इन्ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस अध्ययन क्षेत्र का चयन किया गया है।

भूमिगत जल स्तर :–

भूमि की सतह के नीचे संतृप्ति क्षेत्र में संस्तरों के छिद्रों, रिक्त स्थानों तथा रंध्रों आदि में भूमिगत जल मिलता है। जलभृत की ऊपरी सीमा अर्थात भूमिगत जल स्तर पर वर्षा की मात्रा, अवधि एवं तीव्रता द्वारा पुनः आपूर्ति और कुएं/नलकूपों द्वारा जल निकासी की मात्रा का निर्णायक प्रभाव पड़ता है।[7]

तालिका–1 झुंझुनूं जिले में ब्लॉकानुसार भूमिगत जल स्तर में मौसमी परिवर्तन (मीटर)

	भूमिगत जल का स्तर	ब्लाक							
वर्ष	मानसून पूर्व / पश्चात	अलसीसर	बुहाना	चिड़ावा	झुंझुनूं	खेतड़ी	नवलगढ़	सुरजगढ़	उदयपुरवाटी
2007	पूर्व	37.88	49.27	45.39	46.79	28.14	38.68	56.01	33.33
	पश्चात	38.41	49.29	45.88	47.34	27.74	38.82	56.33	31.20
2008	पूर्व	37.80	52.09	46.74	47.49	28.53	40.01	56.63	32.33
	पश्चात	38.16	52.18	47.98	48.05	27.74	38.98	57.53	32.12
2009	पूर्व	38.74	55.47	49.74	48.79	29.19	40.86	58.20	34.02
	पश्चात	38.78	56.03	49.93	49.05	29.05	41.09	59.10	34.53
2010	पूर्व	38.89	55.72	50.25	49.35	29.78	41.73	59.47	35.65
	पश्चात	38.81	54.23	50.22	49.30	27.45	40.96	59.42	33.48
2011	पूर्व	38.45	55.53	50.13	49.17	28.45	41.94	59.88	33.74
	पश्चात	38.54	54.83	50.44	49.41	27.61	41.21	60.11	33.84
2012	पूर्व	39.08	57.08	51.07	49.27	31.80	41.74	64.37	39.41
	पश्चात	39.26	57.24	52.09	49.86	31.77	41.99	64.95	38.83
2013	पूर्व	39.28	60.00	52.86	49.49	33.03	43.39	65.87	36.05
	पश्चात	39.48	62.31	53.35	49.97	34.05	42.97	66.51	36.15
2014	पूर्व	39.69	63.89	54.48	49.01	36.65	44.43	67.52	37.86
	पश्चात	39.67	64.08	55.16	49.48	37.11	44.59	68.20	37.97
2015	पूर्व	39.85	70.62	55.57	49.22	40.11	45.92	69.18	41.26
	पश्चात	39.96	71.52	56.25	49.51	42.16	46.82	69.65	41.68
2016	पूर्व	40.05	74.43	56.73	49.87	45.37	47.96	70.59	45.95
	पश्चात	40.80	74.99	57.71	50.35	45.36	48.27	71.27	46.35

स्त्रोतः कार्यालय भू–जल विभाग झुंझुनूं, राजस्थान

तालिका 01 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सन् 2016 में भूमिगत जल स्तर की न्यूनतम गहराई अलसीसर ब्लॉक में मानसून से पूर्व एवं पश्चात क्रमांशः 40.05 मीटर एवं 40.80 मीटर है। यहां भूमिगत जल में लवणता की मात्रा अधिक है जिस कारण इसका पेयजल एवं सिंचाई में उपयोग कम होता है। फलस्वरूप यहां कुएं व नलकूपों की संख्या भी कम है, जिसका सीधा प्रभाव भूमिगत जल की निकासी पर पड़ा है। वही दूसरी ओर भूमिगत जल स्तर की अधिकतम गहराई बुहाना ब्लॉक में मानसून से पूर्व एंव पश्चात क्रमशः 74.43 मीटर व 74.99 मीटर है। यहां धरातल के नीचे की भूगार्भिक संरचना एवं कुएं व नलकूपों की अपेक्षाकृत

अधिक संख्या के कारण भूमिगत जल स्तर अधिक गहरा है। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र के अन्य ब्लॉक में बढ़ते हुए क्रम में भूमिगत जल स्तर की औसत गहराई खेतड़ी में 45.37 मी., उदयपुरवाटी में 46.15 मी., नवलगढ में 48.12 मी., झुंझुनू में 50.11 मी., चिड़ावा में 57.22 मी. व सूरजगढ में 70.93 मी. है।

भूमिगत जल स्तर में परिवर्तन का प्रतिरूप :–

तालिका 2 के अध्ययन से स्पष्ट है कि विगत 10 वर्षो के दौरान जिले के आठो ब्लॉकों में भूमिगत जल स्तर में ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है। बुहाना ब्लॉक में औसत भूमिगत जल स्तर की गहराई सन् 2007 में 49.28 मीटर थी जो घटकर सन् 2016 में 74.71 मीटर हो गई है, इस प्रकार विगत 10 वर्षो के दौरान कुल 25.43 मीटर की गिरावट आयी है अर्थात आधार वर्ष की तुलना में 51.60 प्रतिशत का ऋणात्मक परिर्वतन हुआ है जो कि जिलें में सर्वाधिक है जिसका मुख्य कारण अधिक पैदावार देने वाले संकर बीजों के बढ़ते उपयोग एवं भूमिगत जल आधारित संरचनाओं यथा कुएं व नलकुपों के निर्माण तथा उनके उपयोग की प्रवृत्ति का प्रतिदिन बढ़ना है। वही दूसरी ओर अलसीसर ब्लॉक में औसत भूमिगत जल स्तर सन् 2007 में 38.14 मीटर था जो घटकर सन् 2016 में 40.65 मीटर हो गया है। विगत 10 वर्षों के दौरान अलसीसर ब्लॉक में 2.51 मीटर की न्यूनतम गिरावट आती है अर्थात आधार वर्ष की तुलना में केवल 6.58 प्रतिशत का ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है जिसका मुख्य कारण लवणता के कारण सिंचाई हेतु जल गुणवता का अनुकूल न होना है।

तालिका– 2 झुंझुनूं जिले में ब्लॉकानुसार औसत भूमिगत जल स्तर में परिवर्तन का प्रतिरूप (वर्ष 2007 से 2016)

क्र. सं	ब्लॉक	वर्ष							
		2007			2016			औसत भूमिगत जलस्तर में परिवर्तन 2007से 2016 (मीटर)	औसत भूमिगत जलस्तर में परिवर्तन प्रतिशत में (आधार वर्ष 2007
		मानसून पूर्व भूमिगत जलस्तर (मीटर)	मानसून पश्चात भूमिगत जलस्तर (मीटर)	औसत भूमिगत जलस्तर (मीटर)	मानसून पूर्व भूमिगत जलस्तर (मीटर)	मानसून पश्चात भूमिगत जलस्तर (मीटर)	औसत भूमिगत जलस्तर (मीटर)		
1.	अलसीसर	37.88	38.41	38.14	40.50	40.80	40.65	–2.51	6.58
2.	बुहाना	49.27	49.29	49.28	74.43	74.99	74.71	–25.43	51.60
3.	चिड़ावा	45.39	45.88	45.64	56.73	57.71	57.22	–11.58	25.37
4.	झुंझुनूं	46.79	47.34	47.01	49.87	50.35	50.11	–3.1	6.59
5.	खेतड़ी	28.14	27.74	27.94	45.37	45.36	45.37	–17.43	62.38
6.	नवलगढ़	38.68	38.82	38.75	47.96	48.27	48.12	–9.37	24.18
7.	सुरजगढ	56.1	56.33	56.17	70.59	71.27	70.93	–14.76	26.28
8.	उदयपुरवाटी	33.33	31.20	31.27	45.95	46.35	46.15	–14.88	47.56

स्त्रोतः कार्यालय भू–जल विभाग झुंझुनूं, राजस्थान एवं शोधार्थी द्वारा परिकलित

इसके अतिरिक्त सन् 2007 से 2016 के मध्य औसत भूमिगत जल स्तर खेतड़ी ब्लॉक में 17.43 मीटर, उदयपुरवाटी ब्लॉक में 14.88 मीटर, सूरजगढ ब्लॉक में 14.76 मीटर, चिड़ावा ब्लॉक में 11.58 मीटर, नवलगढ ब्लॉक में 9.37 मीटर एवं झुंझुनू ब्लॉक में 3.1 मीटर की गिरावट आयी हे। अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या हेतु खाद्य सुरक्षा उपलब्ध करवाने में भूमिगत जल आधारित सिंचाई ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त मरूस्थलीय क्षेत्र में अवस्थिति के फलस्वरूप सूखे व वर्षा के उतार–चढाव के दौरान भी भूमिगत जल विश्वसनीय एवं सुरक्षित भण्डार के रूप में उपयोगी रहनें तथा ग्रामीण विधुतीकरण के कारण दिन प्रतिदिन कुओं व नलकूपों की संख्या में वृद्वि हुई, जिसका सीधा प्रभाव भूमिगत जल निकासी पर पड़ा और जल स्तर में निरन्तर ऋणात्मक परिवर्तन हुआ।

निष्कर्ष

भूमिगत जल पेयजल एवं ग्रामीण परिवेश के आर्थिक विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण संसाधन है। झुंझुनू जिला अर्द्वशुष्क जलवायु में स्थित एक कृषि प्रधान क्षेत्र है, जहॉ वर्षा की कम मात्रा एवं उतार–चढ़ाव, उच्च तापमान के साथ–साथ बढ़ती आबादी के लिए पेयजल एवं कृषि उत्पादन के स्तर को बनाए रखने के लिए सिंचाई हेतु जल के उपयोग का विपरित प्रभाव भूमिगत जल स्तर पर पड़ रहा है। कुल भूमिगत जल निकासी का 81.23 प्रतिशत जल सिंचाई हेतु उपयोग किया जाता है। ग्रामीण विधुतीकरण, नए नलकूप निर्माण पर प्रतिबन्ध न होना एवं एक कुएं/नलकूप से दुसरे कुएं/नलकूप के बीच न्यूनतम दूरी के नियम की पालना न होने के कारण निरन्तर कऐं/नलकूपों की संख्या में एवं गहराई में वृद्वि से भूमिगत जल का अंधाधुंध दोहन हो रहा है, इसी के फलस्वरूप जिले के आठों ब्लॉक अतिदोहित श्रेणी के रूप में वर्गीकृत है।

हमारी संस्कृति एवं सभ्यता में जल को जीवन से जोड़कर देखा गया है। यही कारण है कि प्रत्येक क्षेत्र में वहाँ की भौगोलिक स्थिति एवं पारिस्थितिकी के अनुरूप जल संरक्षण की तकनीक विकसित की गई है। राजस्थान में लगभग प्रत्येक वर्ष किसी न किसी क्षेत्र में सूखा की घटनाएं घटती रहती है। अतः भूमिगत जल निकासी को नियन्त्रित व नियोजित कर इसकी पुर्नभरण क्षमता को बढाने के लिए हमें जल सरंक्षण की प्राचीन परम्पराओं और तकनीक को वर्तमान युग में पुनः अपनाते हुऐं युवा पीढ़ी में जल संरक्षण हेतु जागरूकता लाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वाटर हार्वेस्टिंग तकनीकी संरचनाओं व रूफ टॉप जल संचयन विधि को अपनाने के साथ जनसंख्या नियन्त्रण, सिंचाई के उन्नत विधियों के प्रयोग, उन्नत किस्म के बीज (जिन्हें कम पानी की आवश्यकता हो) का प्रयोग, वृक्षारोपण में वृद्धि आदि के द्वारा जल संरक्षण की दिशा में प्रयास किया जा सकता है। जल का पुनः चक्रण व उपयोग, भूमिगत जल के अतिदोहन के बोझ को कम कर सकता है अर्थात भविष्य के लिए सुलभ जल आपूर्ति हेतु सतत् भूजल प्रबन्धन करना आवश्यक है।

❒

सन्दर्भ –

1. *कुमार, विरेन्द्र, "घटता भूजल स्तरः कारण और निवारण", भागीरथ अक्टूबर–दिसम्बर 2017 (राजभाषा विशेषांक), पृ.14*
2. *"भारत, लोग और अर्थव्यवस्था" राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006 पृ. 63*
3. *अटल भू–जल योजना (अटल जल), राज्य कार्यक्रम प्रबन्धन इकाई भू–जल विभाग राजस्थान, अगस्त 2021 पृ. 2*
4. *कुमार, संजीव और आर्य अश्वनी "कला सरोवर," कला एवं धर्म शोध संस्थान लोक कल्याणकारी ट्रस्ट, वाराणसी, वर्ष–24, संख्या– 4, 2021, पृ. 336*
5. *राजस्थान सूजस, सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशक, शासन सचिवालय जयपुर, राजस्थान, मई 2020 पृ. 22*
6. *जिला सांख्यिकी रूपरेखा झुंझुनूं, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग झुंझुनूं राजस्थान, 2018*
7. *व्यास, कृष्ण गोपाल, "कुओं का व्यावहारिक भू–जल विज्ञान", मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी 1993 पृ. 7*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 122–130

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

पर्यावरण चेतना की निरंतरता एवं परिवर्तन का ऐतिहासिक विश्लेषण (वैदिक काल से गुप्त काल तक)

मधु
शोधार्थी, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
Email ID: madhu.rs.history@mdurohtak.ac.in

सारांश

बीसवीं सदी (1960–70 के दशक में विश्व तथा 1990 के दशक में भारत) में प्रारंभ हुए पर्यावरणीय इतिहास का आज इतिहास लेखन की विभिन्न शाखाओं में महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। पर्यावरणीय इतिहास के अंतर्गत इतिहास में समय के साथ–साथ मनुष्य तथा पर्यावरण के अंतर्संबंधों, पर्यावरण के मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों, मानव की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप हुए पर्यावरणीय परिवर्तनों तथा विभिन्न पर्यावरणीय पहलूओं (पर्यावरण प्रबंधन, पर्यावरण चेतना, पर्यावरण जागरूकता जैसे विषयों) का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य प्राचीन भारत में व्याप्त तत्कालीन लोगों की पर्यावरण के प्रति चेतना को प्रकाश में लाना तथा वैदिक काल से गुप्त काल तक लोगों की पर्यावरण के प्रति चेतना का निरंतरता एवं परिवर्तन के दृष्टिकोण से अध्यन करना है ताकि उस समय के लोगों के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक जीवन में व्याप्त पर्यावरण चेतना के आदर्शों से आज की युवा पीढ़ी सीख ग्रहण कर सके। पर्यावरण प्रदूषण जो वर्तमान समय में एक विचारणीय मुद्दा और एक गंभीर समस्या बन चुकी है। यह शोध पत्र इस विचार को आधार बना कर प्रस्तुत किया गया है कि पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या के समाधान के लिए वर्तमान पीढ़ी अतीत में लोगों की पर्यावरण चेतना से सीख ग्रहण कर अपने पर्यावरण को सुरक्षित, संरक्षित और स्वच्छ बनाए रखने के लिए स्वार्थ रहित होकर प्रयास करे।

संकेत शब्द :–पर्यावरण चेतना, वैदिक काल, महाकाव्य काल, मौर्य काल, गुप्त काल।

भूमिका

भारत का प्राचीन इतिहास अनेक राजवंशों के उत्थान–पतन का काल माना जाता है। अपने इतिहास के अधिकांश कालों में भारत एक सांस्कृतिक इकाई होते हुए भी पारस्परिक युद्धों, असमानता, प्राकृतिक प्रकोप तथा अन्य सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अव्यवस्था से परिपूर्ण रहा। पुरातन संसार के किसी भी भाग में मनुष्यों के मनुष्यों से, राज्यों से, प्रकृति से इतने सुखद संबंध नहीं रहे जितने भारतीय देश में देखने को मिलते हैं। वास्तव में जीवन के हर पहलू से मानवीयता की भावना भारतीय सभ्यता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है। पर्यावरण की मानव जीवन में भूमिका का वर्णन करते हुए एलेन चर्चिल सेम्पुल ने 1910 में अपनी पुस्तक ''**इनफ्लुएंस ऑफ ज्योग्राफिक एनवायरमेंट**'' में मानव के पृथ्वी पर निर्भर होने को 'पर्यावरण निश्चयवाद' के रूप में परिभाषित किया और विचार दिया कि–

"Man is the product of the earth's surface. This means not merely that he is a child of the earth, dust of her dust but the earth has mothered him, fed him, set him tasks, directed his thoughts…..[1]

अतः भारतीय मनुष्य प्राचीन काल से ही अपने जीवन में पर्यावरण एवं प्रकृति के महत्व को स्वीकार करता आया है और पर्यावरण के साथ एक सुखद अंतर्संबंध बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयास करता रहा है। लेकिन यह भी सत्य है कि इच्छा शील प्राणी होने के कारण मनुष्य के अपने पर्यावरण के साथ संबंध समय के साथ–साथ बदलते रहे है। प्रारंभ में मनुष्य की पर्यावरण के साथ भूमिका पर्यावरण के एक कारक के रूप में थी जो समय के साथ–साथ बदलती गई यथा–

पर्यावरण कारक के रूप में
।
पर्यावरण का रूपांतरकर्ता
।
पर्यावरण का परिवर्तनकर्ता
।
पर्यावरण का विध्वंशकर्ता [2]

साहित्यिक स्रोतों की उपलब्धता वैदिक काल में होने के कारण निश्चय ही उस समय के लोगों की पर्यावरण चेतना को स्पष्ट रूप से उजागर किया जा सकता है लेकिन अनेक पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर हम वैदिक काल से पूर्व भी लोगों के पर्यावरण प्रेम, उनकी अपने पर्यावरण के प्रति चेतना का विश्लेषण कर सकते है। पाषाण कालीन मानव समाज का उद्‌भव, उनके नियम और सिद्धांतों का विकास, उनके धार्मिक विश्वास का निर्माण निश्चय ही पर्यावरण और उनकी प्रकृति के सापेक्ष में हुआ था। यद्यपि पाषाण काल में मानव की अपने पर्यावरण के प्रति संघर्षात्मक प्रवृत्ति बनी रही लेकिन फिर भी तत्कालीन मानव ने पर्यावरण के साथ उचित समायोजन करके अपने जीवन का विकास किया। प्रागैतिहासिक मानव घने जंगलों में, पेड़ों के

छायादार उपवनों के नीचे, ऊंचे वृक्षों की मोटी शाखाओं के ऊपर तथा शैल आश्रयो के भीतर रहता था।[3] जीवन उपयोगी होने के कारण इनका तथा पर्यावरण के अन्य तत्वों का संरक्षण करना उनके लिए अत्यंत उपयोगी था। प्रागैतिहासिक मानव की पर्यावरण चेतना प्राचीन शैल आश्रयो में उनके द्वारा उकेरे गए चित्रों के माध्यम से समझी जा सकती है। विंध्य, सतपुड़ा पर्वत मालाओं में स्थित भीमबेटका (मध्य प्रदेश प्रांत, रायसेन जिला, खोज वी. एस. वाकणकर द्वारा, 1957–58) की शैल आश्रय संख्या 10 में एक पेड़ का चित्र है जिस पर एक मोर विराजमान है; एक आदमी एक तलवार पकड़े हुए पेड़ के दाहिने ओर घुटने रख कर बैठा है बाई ओर नाचने वाले लोगों की एक पंक्ति है। संदेह में होने के बावजूद इनका संबंध मध्य पाषाण काल में वृक्ष पूजा से जोड़ा जाता है।[4] शैल चित्रों में पर्यावरण प्रकृति के अनेक तत्वों जैसे– सूर्य, चंद्र, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी आदि का चित्रण तत्कालीन लोगों की पर्यावरण के प्रति उनकी चेतना को ही उजागर करता है। नवपाषाणिक ग्राम अर्थव्यवस्था के विकास के लिए भेड़–बकरी, गाय तथा बड़ी संख्या में अन्य वयस्क पशुधन का संरक्षण आवश्यक हो गया। इस काल में स्थाई खेती के आरंभ ने भी जंगली जानवरों, पक्षियों के शिकार व उनकी हत्या को कम कर दिया। इस प्रकार नवपाषाणिक लोगों ने अपने पर्यावरण को उन्नत करने में अपना योगदान दिया। नवपाषाण काल में राख के टीलों के संदर्भ में विचार दिया जाता है कि इन टीलों में गोबर के ढेर को वार्षिक उत्सव के अवसर पर जला दिया जाता था। ऐसा करने से एक तो बस्तियों की सफाई हो जाती थी तथा दूसरा आग से जंगली जानवर भी दूर रहते थे जिसके परिणामस्वरूप अपनी रक्षा हेतु उनकी हत्या करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। गोबर के ढेर को जलाया जाना मवेशियों की प्रजनन क्षमता को बढ़ाने के लिए नामित किए जाने वाले कर्मकांड से भी जुड़ा हो सकता है। प्रायद्वीपीय भारत के पशुपालकों के बीच आज भी ऐसी प्रथा देखी जा सकती है। उनकी मान्यता है कि ऐसा करने से उनके पशुओं की रोगों से रक्षा होती है।[5]

हड़प्पा सभ्यता की खुदाई में प्राप्त मुहरों, मूर्तियों, मृदभांडो पर अंकित पीपल, खेजड़ी आदि वृक्षों, हाथी, चीता, गैंडा, भैंसा, एक सींग वाला बैल, नाग, मछली, लोमड़ी, मोर हिरण आदि पशु–पक्षियों, सरीसर्पों तथा स्वास्तिक जैसे चिन्हों का अंकन इस सभ्यता में प्रचलित वृक्ष पूजा, नाग पूजा, अग्नि पूजा, पशु पूजा जैसी धार्मिक मान्यताओं के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण और लोगों की पर्यावरण चेतना को प्रतिबिंबित करता है। ये चित्र हड़प्पा सभ्यता में मानव–पर्यावरण अंतर्संबंधो की जानकारी प्रदान करने वाले महत्वपूर्ण स्त्रोत है। चित्रों के माध्यम से इस सभ्यता के लोगों की अपने पर्यावरण के प्रति चेतना को भली भांति समझा जा सकता है। हड़प्पा सभ्यता के अधिकांश नगर नदियों के किनारे अवस्थित थे। मोहन जोदड़ो की खुदाई में मिले स्नानागार के साक्ष्य पानी की इनके जीवन में महत्ता को स्पष्ट करते हुए जल पूजा की ओर संकेत करते हैं। हड़प्पा सभ्यता के नगरों में जल निकासी की उचित व्यवस्था, ढकी हुई नालियां, चौड़ी सड़कें, महान अन्नागार, पवित्र सार्वजनिक स्नानागार, परिष्कृत शहरी जलापूर्ति वहां के लोगों की अपने पर्यावरण को स्वच्छ रखने की इच्छा को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है। हड़प्पा संस्कृति से स्पष्ट तौर पर पता चलता है कि हड़प्पावासी ने केवल स्वच्छता से अच्छी तरह परिचित थे बल्कि उसके रखरखाव और प्रबंधन पर भी पूर्ण जोर देते थे।[6] हड़प्पाई लोग जनन क्षमता के प्रतीको– देवी माता, सांड (नंदी), शृंगमय देवता और पवित्र वृक्षों की पूजा करते थे

आज भी हिंदुओं की पूजा में उनका समावेश देखा जा सकता है।[7] पवित्र वृक्षों, पशु–पक्षियों की पूजा का धार्मिक विश्वास हिंदू मान्यता में उनके संरक्षण को प्राचीन काल से ही प्रोत्साहित करता रहा है।

कहा जा सकता है कि प्राकृतिक प्रचंड आवेगो जैसे– वर्षा, बाढ़, सूखा, तूफान, तड़ित (बिजली चमकना), दावाग्नि (घने जंगल की आग) और निर्जन क्षेत्र में खूंखार जानवरों पर नियंत्रण कर पाने की मनुष्य की असामर्थ्ता ने संभवतः पूरा ऐतिहासिक अंधविश्वासों की जड़े जमा दी जो अंततः धर्म के रूप में फले फूले और जिन्होंने आगे चलकर पुरोहित व अन्य कर्मकांड को जन्म दिया।

वैदिक काल में पर्यावरण चेतना (1500–600 ईसा पूर्व)

वैदिक कालीन साहित्य– वेद, पुराण, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ, वेदांग और महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) से हमें तत्कालीन लोगों के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन के आदर्शों में उनके पर्यावरण के प्रति उनकी चेतना की जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य में मानव को पंचतत्वों से निर्मित बताया गया है। अतः मानव जीवन को स्वस्थ बनाए रखने के लिए इन पांच तत्वों के बीच उचित समायोजन बनाए रखना आवश्यक है।

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा।
पंच तत्व यह रचित शरीरा (रामायण)।।[8]

पंचतत्वों के बीच उचित समायोजन का विचार मनुष्य को पर्यावरण के विभिन्न तत्वों के बीच समायोजन करने तथा उन्हें संतुलित बनाए रखने की सीख देता है ताकि पारिस्थितिक व्यवस्था संतुलित बनी रहे। वैदिक कालीन धर्म पर्यावरण–प्रकृति से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। इस काल के हड़प्पा सभ्यता के विपरीत देवताओं को पशुत्त्वारोपी अवधारणा में चित्रित न करके उनकी कल्पना महामानव के रूप में की गई है और उन्हें यज्ञों द्वारा प्रसन्न रखने पर बल दिया गया है। यज्ञ हमारे पर्यावरण को स्वच्छ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि–

सकृद द्यौरजायत सकृद भूमिरजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते।। [9]

अर्थात द्यूलोक, पृथिवी लोक, अंतरिक्ष, वनस्पतियां, रस तथा जल एक ही बार उत्पन्न होता हैं, पुनः–पुनः नहीं। अतः इनका संरक्षण आवश्यक है।[10] वेदों में वृक्षादि को ही नहीं, अपितु संपूर्ण वनसंपदा, वनस्पतिजगत, वृक्षों व उनके संरक्षको और पालकों को भी वंदनीय एवं पूजनीय कहा गया है।[11] महाभारत के शांति पर्व में पशुओं एवं पक्षियों की हिंसा की निंदा की गई है और इन पशु पक्षियों को परिवार के सदस्यों की तरह माना गया है।[12] अतः स्पष्ट है कि वैदिक कालीन साहित्य में लोगों की अपने पर्यावरण के प्रति चेतना अपने पर्यावरण को स्वच्छ रखने की जागरूकता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

महाजनपद काल, जैन और बौद्ध काल में पर्यावरण चेतना (600–300 ईसा पूर्व)

600 ईसा पूर्व द्वितीय नगरीकरण के दौरान भारत में 16 महाजनपदों (महान राज्यों) का विकास हुआ जो पर्यावरणीय कारकों से घनिष्ठता से जुड़ा हुआ था। अधिकतर महाजनपदों

का विकास नदियों के किनारे हुआ जो उन लोगों की जलापूर्ति तथा सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। महाजनपद अपनी भौगोलिक तथा भौतिक अवस्थिति का सहारा लेकर दूसरे महाजनपदों पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करके अपने राज्य को साम्राज्य के रूप में ढालने का प्रयास करते रहे इसमें सबसे अधिक सफलता मगध महाजनपद को मिली।[13] इसका भी प्रमुख कारण मगध के पर्यावरण और उसकी भौगोलिक स्थिति को दिया जाता है। मगध की राजधानी के रूप में पाटलिपुत्र का गुप्त साम्राज्य के पतन काल तक वैभव बना रहा। पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों, जलीय जीवो, सूर्य, चंद्र, पर्वत आदि अन्य पर्यावरण के तत्वों का तत्कालीन पंचमार्क (आहत सिक्कों) व कुंणिंद, औदुम्बर आदि अनेक गणराज्यों के सिक्कों पर अंकन यह विचार स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है कि ये सिक्के जनसाधारण द्वारा प्रयोग में लाए जाते थे ताकि आम लोगों के मन में यह धारणा हमेशा बनी रहे कि मानव जीवन के लिए इन तत्वों की क्या उपयोगिता है और वे इनके संरक्षण हेतु निरंतर प्रयासरत रहे।

जैन और बौद्ध धर्मों में **''अहिंसा का आदर्श''** अर्थात जीवो की हत्या न करना, हरे भरे वृक्षों को न काटना और अन्य हिंसात्मक कार्यों का निषेध पर्यावरण संरक्षण की चेतना को अभिव्यक्त करता है। जैन धर्म इस मत का पोषक है कि प्रत्येक प्राणी को अपने अस्तित्त्व का खतरा है। अहिंसा और पर्यावरण उन्हें इस खतरे से बचा लेते हैं।[14] महात्मा बुद्ध की पर्यावरण चेतना की दृष्टि इस बात से भी अभिव्यक्त होती है कि उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश दिया था कि– ''जो कोई भी भिक्षु वृक्ष गिराएगा, उसे प्रायश्चित करना होगा।''[15] महात्मा बुद्ध ने पहले से चली आ रही वैदिक यज्ञ व्यवस्था के अंतर्गत पशु–पक्षियों के संरक्षण हेतु बिना हिंसा (बलि) के यज्ञ का प्रचार किया। इस प्रकार पशु बलि का विरोध कर कृषि हेतु आवश्यक पशुधन संसाधन की रक्षा पर बल दिया गया। अतः पर्यावरण प्रेम की असीम अभिव्यक्ति जैन और बौद्ध धर्म के आदर्शों में देखी जा सकती है।

मौर्य काल में पर्यावरण चेतना (323–184 ईसा पूर्व)

मौर्य काल में पर्यावरण चेतना, पर्यावरण के संरक्षण, प्रबंधन की अभिव्यक्ति हमें राज्य के प्रयास तथा जन सामान्य के कार्यों में देखने को मिलती है। मौर्य साम्राज्य द्वारा वन तथा वन्य जीव संरक्षण हेतु आधिकारिक रूप से प्रयास किए गए थे। अर्थशास्त्र ग्रंथ में हमें वृक्षों के संरक्षण हेतु उनके विभिन्न भागों को काटे जाने पर निर्धारित दंड का विधान देखने को मिलता है। उनके अनुसार किसी नगर के निकट उद्यानों में फलदार वृक्षों, फलों के वृक्षों या छायादार वृक्षों के कोमल अंकुर को काटने के लिए 6 पण का जुर्माना लगाया जाएगा उसी पेड़ की छोटी शाखाओं को काटने के लिए 12 पण और बड़ी शाखाओं को काटने पर 24 पण वसूल किए जाएंगे।[16] सीमा निर्धारण करने वाले वृक्षों, देवालयों व राजचिन्हित वृक्षों, राजभवन के वृक्षों आदि को क्षति पहुंचाने पर उक्त वर्णित दंड का दोगुना दंड देने का विधान निर्धारित किया गया था।

सीमावृक्षेशु चौत्येशु द्रमे वालक्षितेशु च।
त एव व्दिगुणा दण्डाः कार्य राजभवनेशु च।। *(अर्थशास्त्र, 3/9/9)*

स्वच्छता की विशेष व्यवस्था करते हुए अर्थशास्त्र में वर्णित है कि यदि कोई व्यक्ति राजमार्ग पर गंदगी करने का प्रयत्न करे तो उससे पण का आठवां भाग दंड के रूप में वसूल किया जाए।[17]

अशोक के प्रथम शिलालेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने जीवो पर दया भावना से पशु यज्ञ और मांस भक्षण की निषेधाज्ञा जारी की।[18] अतः अशोक के अभिलेख में जीवो के प्रति दया तथा मानवों के प्रति सदव्यवहार की सीख दी गई हैं। अर्थशास्त्र में कृषि के लिए अनुपयुक्त भूमि में भी जलस्तर बढ़ाने के निर्देश दिए गए हैं तथा ऐसे कार्यों पर दंड का प्रावधान किया गया है जो जल निकायों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं व तटबंधों को क्षतिग्रस्त करते हैं।[19] इस प्रकार मौर्य काल में राज्य द्वारा ऐसे अनेक प्रयास किए गए थे जो पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित बनाए रखने और पर्यावरण को स्वच्छ रखने की दिशा में सराहनीय थे। मौर्य सम्राट अशोक ने पर्यावरण के प्रति अपनी चेतना को राजाज्ञा के माध्यम से अभिलेखों, शिलालेखों, स्तंभ लेखों, गुहालेखो आदि पर अंकित करवा कर आम जनता तक पहुंचाया ताकि आम जनता भी इस दिशा में राज्य के प्रयास में भागीदार बन सके।

उत्तर मौर्य काल में पर्यावरण चेतना (184 ईसा पूर्व से 300 ईसवी)

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भारत में कोई भी केंद्रीकृत्त सत्ता नहीं रही। संपूर्ण भारत का विखंडन छोटे–छोटे क्षेत्रीय राज्य में हो गया। जिसमें बंगाल–बिहार में शुंग वंश, दक्कन पठार में सातवाहन वंश प्रमुख थे। इस आंतरिक अव्यवस्था का लाभ उठाकर अनेक विदेशी शक्तियों ने उत्तर पश्चिम की तरफ से भारत पर आक्रमण कर अपना शासन स्थापित करने का प्रयास किया। जिनमें हिंदी यवन, शक, पार्थियंस(पहलव), कुषाण प्रमुख प्रमुख थे। यद्यपि परिवर्तन के साथ लेकिन इस समय के दौरान भी हमें तत्कालीन साहित्य, शासन के प्रयासों में, आमजन की मूल्य मान्यताओं में पर्यावरण चेतना की झलक मिलती है। जिससे स्पष्ट है कि वे अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक थे और उसे स्वच्छ रखना अपना कर्तव्य समझते थे।

यज्ञ की महत्ता तथा मृदा संरक्षण के संबंध में मनुस्मृति (द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व) में विचार निहित है कि उत्तम रीति से लिपे–पुते गृह में घृत से आहुति करके उसका धूम चारों ओर फैलाना चाहिए।[20] मनुस्मृति में जालदार लताओ और कांटेदार वृक्षों व पौधों को सीमाओं पर लगाने का उल्लेख किया गया है तथा यह विचार दिया गया है कि अनेक प्रयोजनों को सिद्ध करने में सक्षम वृक्षों को उनकी विशेषतानुकूल यदि आरोपित किया जाए तो वे पृथ्वी के संरक्षण में लाभप्रद होंगे।[21] भारहुत, सांची, बोधगया, बेसनगर आदि स्थलों की शुंग कालीन स्थापत्य कलाकृतियों में पर्यावरण से जुड़े अनेक तत्वों का अंकन तत्कालीन पर्यावरण चेतना को स्पष्ट करता है। कलिंग सम्राट खारवेल (प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व) प्रकृति और पर्यावरण के महान समर्थक द्वारा तनसुलिया से अपनी राजधानी कलिंग नगरी तक एक नहर का विस्तार किया जिसे 300 वर्ष पहले नंद शासक महापदमनंद द्वारा बनवाया गया था।[22]

मनु द्वारा पशु हिंसा के अपराधी व्यक्ति के लिए दंड व्यवस्था का प्रावधान स्पष्ट निर्धारित किया गया है। उनके अनुसार छोटे पशुओं की हिंसा करने पर 200 पण दंड, मृग तथा पक्षियों की हिंसा करने पर 50 पण दंड, गधा, भेड़–बकरी की हिंसा करने पर 5 मासे चांदी का दंड, कुत्ता व सूअर को मारने पर एक मासा चांदी का दंड देने की परंपरा स्मृति युग में प्रचलित बतायी गयी है।[23] प्राकृतिक सुंदरता और उपयुक्त वातावरण के कारण ही कनिष्क ने भारत के चरम उत्तर पश्चिम भाग में स्थित पुरुषपुर को अपनी राजधानी बनाया था जो कुषाण शासक

कनिष्क के प्राकृतिक प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। कुषाण कालीन गांधार तथा मथुरा कला के अंतर्गत प्राकृतिक तत्व सूर्य को दो या चार घोड़ों के साथ चित्रित किया गया है जो वैदिक अवधारणा (सात घोड़ों के साथ) से भिन्न है। अतः स्पष्ट है कि समय के साथ–साथ मान्यताएं, परंपराएं भले ही बदलती रही परंतु प्रकृति के तत्वों के प्रति लोगों का सम्मान भाव प्राचीन काल से जो का त्यों बना रहा।

गुप्त काल में पर्यावरण चेतना (300–550 ईस्वी)

गुप्तकालीन महाकवि कालिदास ने अपने दो प्रमुख महाकाव्यों– रघुवंश, कुमारसंभव तथा गीतिकाव्यो– ऋतुसंहार और मेघदूत व अपने तीन प्रसिद्ध नाटकों अभिज्ञानशाकुंतलम, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्र में प्रकृति के विभिन्न अवयव का वर्णन कर पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन को प्रमुख बताया है। कालिदास के साहित्य में पर्यावरण संरक्षण तथा पर्यावरण चेतना की संकल्पना वैदिक कालीन ऋषियों की भांति आधुनिक पर्यावरण समस्या के समाधान के अधिक निकट देखी जा सकती है।

कालिदास ने शिव की अष्ट मूर्तियों के माध्यम से विश्व पर्यावरण के समस्त जैविक–अजैविक कारकों का सारगर्भित निरूपण किया है। आठ तत्व जिनमें जल, अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, आकाश, पृथ्वी, वायु, यमजानध्आत्मा द्वारा शिव समस्त सृष्टि को धारण करते हैं। इन 8 तत्वों का पर्यावरणीय महत्व कालिदास ने अभिज्ञान शकुंतलम के नान्दी पद में प्रकट किया है।[24]

गुप्तकालीन स्मृत्ति ग्रंथों में भी पर्यावरण चेतना देखने को मिलती है। बृहस्पति स्मृत्ति के अनुसार भूखे प्यासे भारवाहक पशुओं से बोझा ढुलवाने पर, गाय की हिंसा करने वालों के समान प्रथम साहस दंड का विधान किया गया।[25] कात्यायन ने पालतू पशुओं के वध पर व अपालतू सर्प, बिल्ली, नेवला, सूअर आदि के वध पर 2 से 12 पण दंड का उल्लेख किया है। यदि कोई युवा गाय अथवा देवताओं को अर्पित पशुओं से बोझा ढुलवाता है तो उसे प्रथम साहस दंड व इन पशुओं की हत्या करने पर सर्वोच्च दंड देना पड़ता था।[26] अभिज्ञानशाकुंतलम में मर्ग को न मारने का उपदेश वाक्य– **''हे राजन, यह आश्रम का मर्ग है, इसे न मारिए''** पशुओं के प्रति सद्भावना व दयालुता को स्पष्ट करता है। गुप्त काल में भी वैदिक अवधारणाओं और पौराणिक परंपराओं के अनुसार प्राकृतिक तत्व सूर्य को सात घोड़ों के साथ चित्रित कर उसके प्रति सम्मान व्यक्त किया गया। मुख्यतः सभी गुप्त शासकों ने जनकल्याण के कार्यों तथा पर्यावरण संरक्षण को बनाए रखने में अपना योगदान दिया।

निष्कर्ष

प्रकृति तथा पर्यावरण मानव के पालक, रक्षक और संहारक है। मनुष्य अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकता अपने पर्यावरण से प्राप्त करता है। लेकिन वर्षा, आंधी, तूफान तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण उसके मन में भय, विश्वास, आश्चर्य, कोतुहल तथा आतंक की भावना हमेशा बनी रहती है। इन्हीं भावनाओं के कारण मनुष्य ने प्रकृति के विभिन्न अभिव्यक्तियों की पूजा करनी तथा उन्हें सम्मान देना आरंभ किया। अपने पर्यावरण के प्रति इसी सम्मान, प्रेम की भावना मे प्राचीन कालीन मनुष्य की पर्यावरण चेतना की झलक देखी जा सकती है। वैदिक काल से गुप्त काल तक पर्यावरण चेतना का अध्ययन कर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन

भारतीय समाज ने पर्यावरण चेतना तथा पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण चिंतन के विचार को अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक परंपराओं से जोड़ा। यहां तक की लोक कथाओं और लोक परंपराओं में भी प्रकृति को ऐसी सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया जिसे प्रदूषित करना अपराध है। प्राचीन काल में दंड व्यवस्था तथा लोगों की धार्मिक आस्था ने भी पर्यावरण संरक्षण में अहम योगदान दिया। काल विशेष के साथ–साथ मूल्य मान्यताओं, परंपराओं में परिवर्तन भले ही होते रहे परंतु पर्यावरण चेतना अपने पर्यावरण के प्रति प्रेम की भावना किसी न किसी रूप में प्राचीन काल में देखी जा सकती है। परंतु आधुनिकता के इस दौर में पर्यावरण और इसके विभिन्न तत्वों की अवमानना करना हमारी आदत बन गई है जिसका परिणाम जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के रूप में हमारे सामने है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र एक प्रयास मात्र है ताकि आज की युवा पीढ़ी प्राचीन पर्यावरण चेतना के मानवीय मूल्यों से सीख ग्रहण कर आधुनिक काल में अपने पर्यावरण को संतुलित रखने में अपना योगदान दे सकें।

❐

सन्दर्भ –

1. *सैम्पुल, एलेन चर्चिल, इनफ्लुएंस आफ ज्योग्राफिक एनवायरमेंट, 1990, पृ. 1–2*
2. *सिंह, सविंदर, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, प्रयाग, 1991, पृ. 33*
   सिंह, अजय पाल, कंसेप्ट ऑफ इन्वायरमेंट इन एंशियंट आर्ट एंड आर्किटेक्चर, आगम कला प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 17
3. *कृष्णा, नंदिता एंड अमृतलिंगम, एम., सैक्रेड प्लांटस ऑफ इंडिया, पेंगुइन रेंडम हाउस इंडिया प्रा. लि. गुरुग्राम, 2014, पृ. 10–11*
4. *सिंह, उपिन्द्र, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, अनु. हितेंद्र अनुपम, पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा. लि., नोएडा, 2017, पृ. 126*
5. *पात्रा, बेनूधर, एनवायरमेंट इन अर्ली इंडियाः ए हिस्टॉरिकल पर्सपेक्टिव, एनवायरमेंटः ट्रेडिशनल एंडसाइंटिफिक रिसर्च, वॉल्यूम 1, 2016 ,पृ. 43*
6. *थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ. 37*
7. *सिंह, अजय पाल, पूर्वोक्त, 2003, पृ. 35*
8. *ऋग्वेद(6/48/22)कृकृ पांडे, गोविंद चंद्र, ऋग्वेद, छठा–सातवां मंडल, (अनुवाद एवं जया व्याख्या सहित), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 27*
9. *रूस्तगी, उर्मिला, वेद तथा पर्यावरण, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996, पृ. 11–12*
10. *यजुर्वेद, 16/17–20कृकृ नमो व क्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो वनानां पतये नमः वृक्षाणों पतये नमः औषधीनां पतये नमः वृक्षाणां पतये नमः अरण्यानां पतये नमः।*
11. *प्रकाश, ओम, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 28–29*
12. *गोयल, श्रीराम और गुप्त, शिवकुमार, मगध साम्राज्य का उदय, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि.,नई दिल्ली, 1981, पृ. 86*
13. *भाष्कर, भागचंद्र जैन, जैन संस्कृति कोष, जैन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना, द्वितीय खंड, कला प्रकाशन, बी. एच. यू., वाराणसी, 2002, पृ. 20*
14. *कृष्ण, मुरारी सिंह, शास्त्र विज्ञान सम्मत वन–पर्यावरण, ए. पी. सी. पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 16*
15. *शामाशास्त्री, आर.(अनु), कौटिल्य अर्थशास्त्र, रघुवीर प्रिंटिंग प्रेस, मैसूर, 1956, पृ. 222, 262*
16. *पासवान, गोविंद कुमार, ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर प्राचीन भारत में पर्यावरण का अध्ययनःमौर्य काल से गुप्त काल तक, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2020, पृ. 26*
17. *गुप्ता, पी. एल., प्राचीन भारतीय अभिलेख, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2002, पृ. 14*

18. विथिन, ठाकुर, हिस्ट्री ऑफ एनवायरमेंटल कंजर्वेशन (एंशियंट एंड मेडिवल पीरियड), रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसीप्लिनरी, वॉल्यूम 4, 2019, पृ. 1076
19. मनुस्मृति, 5/128..... आप शुद्धा भूमिगता वैतृभण्यं यासु गोर्भवेत।अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः।
20. रूस्तगी, उर्मिला, पूर्वोक्त, 1996,पृ. 20
21. साहू, एन. के., खारवेल, ओडीशा स्टेट म्यूजियम, भुवनेश्वर, 1984, पृ. 339
22. मनुस्मृति, 8/297–298कृकृक्षुद्रकानां पशूनां तु हिंसायां व्दिशतो दमः। पञ्चाशतु भवेद् दण्डः शुभेशु मृगपक्षिशु। गर्दभाजाविकानां तु दण्डः श्यात्पञ्चमाशिकः। माशिकस्तु भवेद् दण्डः श्वसूकरनिपातने।
23. संज्जू, मिश्रा, प्राचीन संस्कृत साहित्य में पर्यावरण परिशीलन, अमर ग्रंथ पब्लिकेशन, दिल्ली, 2017, पृ.179
24. पासवान, गोविंद कुमार, पूर्वोक्त, 2020, पृ. 92
25. कात्यायन स्मृति, सारोद्धार, संपादित पी. वी. काणे, पुना, 1933, पृ. 790–792

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 131–140

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

IMPACT OF ONLINE ARBITRATION UPON SOCIETY A DISCOURSE FROM LEGAL PRESPECTIVE

Dr. Pradip Kumar Das
Associate Professor at Department of Law and Governance,
Central University of South Bihar, Gaya, Bihar
Ankit Kumar
Research Scholar, Department of Law and Governance,
Central University of South Bihar, Gaya, Bihar
Email- ankitdss41@gmail.com Mob- +91-9304672754

Abstract

Arbitration has been the favoured method for quickly resolving industrial and corporate conflicts, and more efficient way to resolve disputes than going to court. Due to the pandemic, in-person arbitration is no longer possible. Covid-19 has disturbed court functioning, forcing practitioners to find ADR approaches. The expansions of the internet have facilitated the growth of arbitration as a viable method of alternative conflict resolution in the international society. Currently online arbitration seems to have a huge growth possibility. Digital arbitrations provide paperless processes, distant participation, greater cooperation, and increased protection for sensitive data. This article will try to draw attention to examine and assess how online arbitration may be a helpful tool to overcome the difficulties of time limits, high expenses of litigations, flexibility to the aggrieved, and other obstacles. This study investigates and further explores the social aspects of online arbitration in India including its benefits, drawbacks, and the legal complexity in the society that accompany this method of conflict resolution.

Keywords: Electronic Signature, Mediation, Online Arbitration, Privacy etc.

INTRODUCTION

As a result of worlds' participation in globalisation, the world economy is constantly interacting with those of other countries. Post-World War II has seen a

meteoric rise in international trade, commerce, and foreign investment in both emerging and developed nations, and with this rise has come an increase in international commercial conflicts. Globalization increases the likelihood of cross-continental conflicts on different matters. Legal proceedings were traditionally utilised to resolve conflicts. Due to the fast growth of business and globalisation, arbitration is becoming more and more common on both the national and international stages and affecting the society in broad aspect. Arbitration is a modern method of 'alternative dispute resolution' (ADR) that has become very popular because it gives the people in a dispute a lot of freedom.

Arbitration is the people's only effective, speedy, and cheap remedy for the ongoing backlog and delay problem. Arbitration, which simply refers to settling a dispute outside of court, has grown in popularity in recent years for two main reasons: it is seen as a faster, cheaper, and more efficient way to settle disputes than going to court. Still, there has been a long-felt need to update this system of arbitration, and thanks to developments in technology and the passage of various laws, this is now a possibility; if implemented, online arbitration has the potential to successfully resolve such issues.

Dispute resolution has historically involved face-to-face interaction between parties in a designated designated location, with both verbal and nonverbal communication playing a role.[1] Also because of the covid-19 pandemic, these traditional ideas about how to settled disagreements had been put to the test. In these hard times, technology had became a sign of changed and a way to even out situations. 'Online Dispute Resolution' (ODR) was leading this technological revolution. There was a need for creative and flexible solutions across the board as a result of the pandemic, including in the dispute resolution system. Guidelines for the use of videoconferencing and other forms of remote participation in judicial proceedings were issued by judicial systems and private dispute resolution centers[2]around the world.[3]

An online style of arbitration can be a lifesaver in this critical juncture for the society. There is still a significant backlog of cases after the passage of the Arbitration and Conciliation Act, 1996. Due to advancements in computing power, new avenues for conflict settlement have opened up. The backlog and delays in India's judicial system have put it under extreme stress. Arbitration, in its most basic sense, refers to a compromise reached outside of court.

ONLINE ARBITRATION: DEFINITION, NATURE & SCOPE

The term "Online Dispute Resolution" (ODR) refers to a subset of the larger field of "dispute resolution" that makes use of digital tools to settle legal conflicts. Arbitration, mediation, negotiation, or hybrids of these are the primary

tools used. ODR, or online dispute resolution, is widely acknowledged as a modern replacement for traditional ADR processes. The term "Online Dispute Resolution" (ODR) was created as an umbrella term to describe a wide range of online procedures and technology tools used by disputants and neutrals to resolve conflicts. ODR is just ADR with some specialised means of communication, and it has the advantage of concentrating on the ADR-specific legal instruments produced, such as the arbitration convention or the many due process norms developed for offline arbitration and mediation. [4]

The ODR was defined by UNCITRAL as *"ODR", is a "mechanism for resolving disputes facilitated through the use of electronic communications and other information and communication technology"*.[5]

It has been defined by Report of NITI Aayog[6] as "*Online Dispute Resolution in simple terms is the use of technology to resolve disputes outside of the public court system*." and "*ODR is often simplistically understood to mean e-ADR or ADR that is enabled through technology*."

The WIPO Arbitration and Mediation Center recognises online arbitration and its ability to settle business disputes. New technologies and applications have had an effect on businesses, so the WIPO Arbitration and Mediation Center set up a dispute system that works over the online platform. WIPO uses online forms, documents, and communication to do its work. Communication between the parties, arbitrators, and the Center takes place digitally (using audio and video if possible), minimizing the need for expensive and time-consuming physical meetings and hearings.[7]

As e-commerce grows quickly, it's important to settle disputes quickly and cheaply. Disputes may be handled the same way by online businesses. Online arbitration is a novel dispute-resolution method. The success of ODR can be ascribed to its cost-effectiveness and convenience, which also expands the scope of remote resolution. It relies on asynchronous communication, reduces physical presence requirements, and eliminates unconscious bias. As a new instrument of dispute resolution, internet arbitration has encountered challenges applying traditional concepts of international commercial arbitration law.

ODR can aid not only in conflict resolution, but also in dispute reduction, dispute avoidance, and the promotion of the country's overall legal health. ODR has already been implemented in a number of jurisdictions, including the United States, Canada, Brazil, and the United Arab Emirates, where the government, judiciary, and private organisations collaborate to utilise the benefits of ODR in order to provide better access to justice.

ONLINE ARBITRATION IN INDIA

Article 51A(h) of the Indian Constitution states that it shall the responsibility

of every citizen of India to nurture the scientific temper, humanism, and the spirit of inquiry and change. Our Constitution also encourages us to adopt technical abilities. This can be seen as go-ahead for online arbitration. Since it is everyone's civic obligation to advance and expand the use of technology. According to the definition of 'Court' in Section 2 (e) of the Arbitration and Conciliation Act, the court in which the award will be enforced is determined by the nature of the dispute rather than the location of the arbitrator or the place where the Online Arbitration Award is made.

The parties may rely on Section 65B of the Evidence Act in conjunction with Sections 4 and 5 of the Information Technology Act that provides more clarity about the legal recognition of electronic documents and signatures. Electronic signatures are vital for ensuring the identity, authenticity, and non-repudiation or validity of data transmission. It may be stated, nevertheless, that issues like connection failure, system failure, power failure, etc., may arise during the course of proceedings and therefore must be addressed in the agreement or the Institutional norms in order to ensure that information/data supplied into the system is retrievable.[8]

The official legal system in India is unable to deal with the overwhelming number of pending cases. In India, access to justice within a reasonable amount of time is guaranteed by the country's constitution. However, due to backlog and delay, the legal system is under extreme strain. [9] What needs to be accomplished now is reaching the ultimate aim of effective, low-cost, and quick dispute resolution. The court isn't the only institution that can provide this service. There are a total of 10798975 civil cases, 31039910 criminal cases, and 41838885 total cases in India, of which 8111661 (75.12%) civil cases and 23439156 (75.51%) criminal cases are more than a year old, respectively. [10] There has been some prodding toward this readjustment since the introduction of ADR. Fortunately, India's existing ecology and readiness have been quite encouraging. Arbitration was designed to simplify getting a fair trial. The Arbitration and Conciliation Act of 1996 governs arbitration proceedings in India. Arbitration and Conciliation Act was significantly revised in 2015 to permit the use of electronic means. When it comes to ODR, for example, the legal system has been unambiguous in its support, with judges openly acknowledging its potential and judicial judgments laying the groundwork for further ODR integration (such as the recognition of online arbitration or electronic records as evidence).

The Information Technology Act of 2000 (IT Act) and traditional arbitration practises come together in online arbitration. Effective dispute resolution using ODR has been implemented by the National Internet Exchange of India (NIXI). Online arbitration is very much like in-person arbitration, except it takes place online. The Executive, in the form of Government Departments and Ministries have also been leading the way. The Reserve Bank of India (RBI) published an online dispute resolution (ODR) policy for digital payments; the SAMADHAAN site was launched

for the MSME sector; and the Department of Legal Affairs is now compiling records of ODR service providers throughout the nation. India's legal infrastructure is also set up to handle ODR cases. Numerous pieces of law, such as the Arbitration and Conciliation Act of 1996 and the Code of Civil Procedure of 1908, lend their weight to both the alternative dispute resolution (ADR) and technological aspects of online dispute resolution (ODR) (such as the Indian Evidence Act, 1972 and the Information and Technology Act, 2000). Further, India has also brought into force the United Nations Convention on International Settlement Agreements Resulting from Mediation, 2018.

When conducting online arbitration, it is essential to consider the electronic agreement, electronic signatures, electronic records, evidences, and data. The parties to an online arbitration must have access to the Internet and to various forms of electronic communication, including as email, instant messaging, and video conferencing software. Section 7 of the Arbitration and Conciliation Act of 1996 recognises the enforceability of an arbitration provision in an electronic or paper contract in India. However, the Indian Supreme Court has acknowledged the legality of the electronic agreement. In the case of Shakti Bhog Foods[11] case and Trimex International[12] case, the Hon'ble Supreme Court of India recognised the legality of arbitration agreements entered into between the parties through email communication without a formal agreement in writing signed by the parties. In 2003, recording witness testimony through video conference was recognised by the Supreme Court in State of Maharashtra v. Dr. Praful B. Desai.[13]

Since ODR is only getting started in India, it's crucial that the regulatory environment fosters innovation both in the public and private sectors. There has to be a middle ground between stifling regulation and preserving users' rights and interests for this to be possible. COVID-19 has cleared the path for online dispute settlement, which was unusual before the pandemic. Until the past two decades, access to justice reforms have primarily targeted increasing the efficiency and efficacy of the courts in resolving disputes and decreasing the initiation of conflicts in the first place. For the first aim, we have ICT and a drive toward ADR methods like electronic courts (which were first introduced in 2007).

The COVID-19 lockdown and long-term social distancing norms have challenged the courts like never before. Different courts have taken different approaches to the epidemic, from closing down entirely to limiting in-person litigation. To address this situation, the Supreme Court of India (SC) ordered virtual hearings of 'urgent' cases in all three levels of the judiciary.[14] It took use of the e-courts project's infrastructure to implement video conferencing (VC) services. High Courts and District Courts around the nation began hearing 'urgent' issues via VC, keeping justice restricted but ongoing.[15] Successful use of technology, however, has spread beyond the courts and into other areas of government and the public sector. E-Lok

Adalats are online equivalents of the traditional Lok Adalat. This kind of technological integration has the potential to make it easier and cheaper to settle legal disputes.[16] As time goes on, we may see a flurry of new technologies emerge that go beyond what is now achievable and may be used to help expand access to justice.

IMPACT OF ONLINE ARBITRATION UPON SOCIETY

ODR may increase access to a range of dispute resolution procedures by addressing issues including lack of access to physical courts or ADR centres, cost, and disability restrictions. Online dispute settlements make the dispute resolution process less confrontational and difficult for the parties. Resolving disagreements at home might make it more accessible.

ODR may lower litigation expenses, which is important for business parties and parties that cannot afford litigation. All parties pay equally for the procedure or the impartial evaluator's salary, giving them an equal interest in the result and feeling of ownership. In addition to these visible expenditures, firms bear indirect costs from prolonged litigation. Enterprises lose productive time, employee well-being, investor confidence, investments, and economic progress. ODR may help mitigate these consequences, making it cost-effective.

ODR provides a quicker and more comfortable dispute settlement method. ADR uses simplified procedures and a specified timetable for conflict resolution. ODR offers for more cost-efficient dispute resolution when parties are geographically far and the amount in dispute may limit travel. ODR may be useful when parties' sensitivities may be amplified in-person (e.g. matrimonial disputes). ODR allows parties with significant disabilities to participate and not needing parties' physical presence minimises travel, which benefits cross-border parties.

The practise of online arbitration is not without its drawbacks. If persons who use internet services suffer from low levels of trust, then the possibility of a problem occurring in online arbitration increases. It is possible for the parties to experience inconvenience as a result of unequal access to the technological resources that are available. Internet and technology function as the fourth player in the process of online arbitration. It is also possible for the verification of electronic documents to be a significant challenge, which results in a lack of security and may make it difficult to gain access to justice. For ODR to be successful, both parties must possess appropriate technology. It's possible that some parties won't be able to take part if they don't have access to the appropriate technologies. As a result of the parties not being in the same room, alternative dispute resolution (ODR) is a kind of conflict resolution that is less personal. Language and/or writing difficulties may provide challenges for those participating in ODR. In the event that the last step of ODR is adjudication, a legal precedent may be formed.

CHALLENGES FACED BY DIFFERENT STAKEHOLDERS OF SOCIETY IN ONLINE ARBITRATION

When we take a look at the present state of things in the subject of alternative dispute resolution (ADR), we can see that the progression of the field is still being influenced by many of the fundamentals that it developed from. ODR technologies are largely being utilised to simplify existing process designs, boost their efficiency, and improve their accessibility. The absence of infrastructure and human institutions that are familiar with arbitration procedures is one of the challenges that online arbitration must contend in India. It is necessary to instil confidence and faith in the litigant public, since the majority of litigants prefer the judicial system to the arbitration process because they are unaware of how arbitration works.

In order to further the development of online arbitration, the generational technology divide between older and younger people should be narrowed. Instructing attorneys not to participate in needless legal battles and advising clients to resolve disagreements civilly and peacefully via the use of online arbitration are two things that should be required of legal professionals. There is a barrier to education, as well as a lack of access to technology, which is another primary hurdle to the introduction of online arbitration in India.

The most important concerns regarding the online arbitrations are :

1. **Lack of knowledge and trust in Online Dispute Settlement services:** ODR replicates offline ADR methods via a technological interface. Lack of understanding of ODR means litigants and companies have poor trust in ODR procedures and limited implementation of ODR in high-potential industries like MSME, consumer disputes, etc. There is need to boost awareness via campaigns, new opportunities for ODR use are needed. And with time people become used to ODR services over time.
2. **Access and privacy:** Challenges in online arbitration include online impersonation, loss of confidentiality through circulation of files and data provided during ODR proceedings, manipulation of digital evidence or digitally given awards/ agreements, and digitally supplied digital evidence. The technical platform to be used, appropriate acoustics, the total number of participants permitted from both side, access to passwords and connections, data privacy and the penalties in case of privacy violation.
3. **Qualified Arbitrator:** Those arbitrators who are familiar with using technology and have been qualified to properly lead the parties through the ODR process will be in high demand as the practise of online dispute resolution (ODR) becomes more common. To further the integration of ODR as a preferred conflict resolution process, a comprehensive training environment for ODR

specialists that responds to this need is required. The arbitrator is responsible for ensuring that the principles of fairness and equity are adhered to in both text and spirit. This involves providing both sides with equal treatment, such as the same amount of time for the hearing, the same amount of time spent with the camera focused on the directions, and the same chance to be heard.

4. **Training to all the stakeholders of ODR:** The parties and the arbitrators involved in online arbitration should both get training, and a standardised approach to training should be used by arbitral institutions. This will help train ADR experts and involved parties to use online dispute resolution effectively. Participating in online hearings as part of a dispute resolution process necessitates that all parties involved have proper training. A backup plan should be created in case internet connection is restricted or privacy is invaded. If an arbitrator wants to provide online arbitration services, he or she should be trained according to the standards established by the arbitration institutions. All ODR experts should adhere to the same set of criteria. The following elements are suggested for inclusion in the standards for ODR professional training.
5. **Documentation Issues:** Stamping an agreement and notarizing papers need physical copies and proof. By digitalize these procedures parties have an option to attach an e-stamp certificate as stamp duty proof. Adding e-stamp certificates to arbitration agreements and arbitral awards promotes ODR. ODR frequently includes many nations, thus stamp-duty and procedural requirements must be harmonised. Digitize e-stamps and certificate attachments for digital contracts in ODR. ODR findings may be exempt from stamp duty. The government may digitalize notarization in India. Documents may be notarized online using a secure e-signature and electronic seal. Digital lockers store online-notarized documents. This enhances efficiency by reducing human involvement.
6. **Online Arbitration Award enforcement:** In online arbitration, enforcement of online arbitration award is questionable. Long-standing ambiguity surrounds arbitration settlement enforcement. The Indian Supreme Court ruled that court-initiated mediation sessions constitute Lok Adalat, and settlements achieved via such proceedings are enforceable under the Legal Services Authorities Act, 1987. The mechanism for enforcing foreign arbitral awards is complicated. The legislations in different jurisdictions that enforce arbitral awards like court decrees. The execution procedures is to be initiated anywhere in the jurisdiction where an arbitral judgement may be executed. Executing awards via courts may be complex and cause delays.

CONCLUSION AND SUGGESTIONS

In light of above discussion, it is submitted that online arbitration is a low-cost and effective approach to resolving the great majority of local and international

commercial disputes. It is worthwhile to mention here that online arbitration does not impede access to justice, but rather provides a more user-friendly, convenient, inclusive, and transparent adjudication option. In the course of this article, the author has made an earnest attempt to chalk out the numerous deliberation of online arbitration.

However, Online Arbitration suffers from a lack of familiarity and confidence. There should be initiatives to raise awareness, and new possibilities should be created for ODR usage. Some of the problems with online arbitration are online impersonation and the loss of privacy caused by the sharing of files and data during ODR proceedings. Data privacy and the consequences of a breach, the technological platform to be utilised, suitable acoustics, the maximum number of participants allowed from both sides, access to passwords and connections, and so on. A comprehensive training environment for ODR professionals that addresses this need is necessary to further the adoption of ODR as a preferred dispute resolution technique.

A standardised approach to training is recommended by arbitral institutions for both the parties and the arbitrators in online arbitration. Documentation may become necessary after the online arbitration award has been issued. As ODR often involves numerous countries, it is necessary to standardize stamp duties and procedures. Electronic signatures and supplementary certificates may be made legally binding in digital contracts. The stamp duty in ODR verdicts could be waived. India's government should digitise notarization. There is a complex system in place for enforcing foreign arbitral rulings, and in the case of online arbitration, it may be hard to do so at all. The execution process may begin in any country where a final arbitral award can be enforced.

Moreover, online arbitration directly affects the society as it has the potential to solve the small claims problems very efficiently if it is used correctly. Sometime online arbitration is complex and hence different stakeholders of society faces problems. In order to lessen the backlog of cases, India could employ an online method to settling disputes especially small claims disputes. At this point, India would benefit greatly from implementing a fully digital ADR system.

❒

References :

1. *Katsh, Ethan, (2013), ODR: A Look at History' in Mohamed Abdel Wahab and others (ed.), Online Dispute Resolution Theory and Practice, p. 21 cited in Designing the Future of Dispute Resolution The ODR Policy Plan For India (October 2021) The NITI Aayog Expert Committee on ODR.*
2. *Covid-19 Measures at SIAC (Commencing 17 May 2021), available at: https://siac.org.sg/covid-19-measures-at-siac-commencing-17-may-2021 (last visited on Sep. 09, 2022); also see: 'ICC*

Guidance Note on Possible Measures Aimed at Mitigating the Effects of the Covid-19 Pandemic' (International Chamber of Commerce, 09 April 2020), available at: https://iccwbo.org/content/uploads/sites/3/2020/04/guidance-note-possible-measures-mitigating-effects-covid-19-english.pdf (last visited on Sep. 09, 2022).

3. *Designing the Future of Dispute Resolution The ODR Policy Plan For India (October 2021) The NITI Aayog Expert Committee on ODR, available at: https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2021-11/odr-report-29-11-2021.pdf (last visited on Sep. 22, 2022).*
4. *Schultz, Thomas, (2002), Online Dispute Resolution: An Overview and Selected Issues Economic Commission for Europe, p. 3, available at: https://ssrn.com/abstract=898821 (last visited on Sep. 28, 2022)*
5. *A/CN.9/WG.III/XXXII/CRP.3 - Online dispute resolution for cross-border electronic commerce transactions, United Nations Commission on International Trade Law Working Group III (Online Dispute Resolution) Thirty-second session Vienna, 30 November 2015, available at: https://uncitral.un.org/sites/uncitral.un.org/files/media-documents/uncitral/en/acn9_wg.iii_xxxii_crp.3_e.pdf (last visited on Oct. 08, 2022).*
6. *Supra note 5.*
7. *On-Line Arbitration, available at: https://www.wipo.int/amc/en/arbitration/online/index.html (last visited on Oct. 12, 2022).*
8. *Negi, Chitranjali, (2016) Concept & Overview of Online Arbitration, available at: https://ssrn.com/abstract=2715684 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.2715684 (last visited on Oct. 15, 2022).*
9. *Law Commission of India, 222nd Report on Need for Justice-Dispensation through ADR etc. (April 2009).*
10. *Available at: https://njdg.ecourts.gov.in/njdgnew/?p=main/pend_dashboard (last visited on Oct. 15, 2022).*
11. *Shakti Bhog Foods Ltd v. Kola Shipping Ltd, AIR 2009 SC 12.*
12. *Trimex International FZE Ltd v. Vedanta Aluminum Ltd, (2010) 3 SCC 1.*
13. *State of Maharashtra v. Dr. Praful B. Desai, 2003 4 SCC 601.*
14. *Supreme Court of India Circular dated 26 March 2020, available at: https://main.sci.gov.in/pdf/cir/ 26032020_134544.pdf (last visited on Oct. 18, 2022).*
15. *Tripathy, Shreya and Jain, Tarika, (2020) Caseload During COVID-19 (April 2020): A Look at the Numbers, Vidhi Centre for Legal Policy p.7, available at: https://vidhilegalpolicy.in/research/supreme-courts-caseload-during-covid-19-april-2020-a-look-at-the-numbers/ (last visited on Oct. 22, 2022).*
16. *Supra note 5*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 141–148

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Water untouched: Dalits' struggle for access to Water in Tamil Nadu

Dr. M. R. Raj Kumar
Post Doctoral Fellow (RUSA, 2.0), Department of History,
Bharathidasan University, Tiruchirappalli – 620 024.
Dr. T. Asokan
Associate Professor & Head, Department of History,
Bharathidasan University, Tiruchirappalli
Dr. Y. Srinivasa Rao
Associate Professor, Department of History, Bharathidasan University,
Tiruchirappalli
E-mail: rajkanth.kumar2@gmail.com Mobile: +91 8344261514

Abstract

The current study categorises the issues and challenges that Dalits face in accessing water from common, frequently remote sources of water. Their actuality of meagre access to drinking water was eroded by their caste identity's partial access to common resources. The article focuses on the existing condition of scarcity and the unfairness of Dalits' access to water for their use in Tamil Nadu. Several villages still lack a communal well or hand pump. And, even if accessible, their sources of water are outdated or their use is restricted to certain dominant castes. Being the most socially disadvantaged group, Dalit women suffer triple difficulties, as they are poor, they are women, and they are Dalits. This article furthermore demonstrates how Dalits face numerous troubles while fetching water and are subjected to inhumane living conditions and human rights violations; they face segregation, discrimination, and violence in their everyday struggles to access water.

Keywords: Dalit, Untouchability, Social Exclusion, Discrimination and Common Resources.

Introductions

In India, Dalits do not have access to safe drinking water. Dalit villages are deprived of access to water sources. The majority of the Dalits depend on the kindness of upper-caste community members for access to water from public wells. Dalit women stand in separate queues close to the bore well to obtain water until the non-Dalits finish fetching water. Dalits are disentitled and are not permitted to use taps and wells located in non-Dalit areas. Dalit villages have not supplied water for several days because the Dalits dislike accessibility and unfairness. The caste system,

which has existed for many years in India, is a conventional system of social separation that works on the basis of purity and pollution. The caste system has been developed to maintain the superiority and dominance of the *Sravarnas* (dominant caste). The caste system became formalised into four separate communities or identities (varnas). A fifth group was named Panchama (fifth group), Avarna (without caste), Dasa (slave), or Chandala (obnoxious) outside the caste crinkle. These were later called the "untouchables," or "outcasts," or the "depressed classes."[1]

Later, the state classified them as scheduled castes and imagined needs for their advancement in all greetings, but ground-level reality revealed the caste system's deep rootedness and the level of dishonour faced by Dalits regarding the concepts of purity and pollution.Sharing water and managing similar wealth mitigates the level of abandonment and humiliation experienced by the Dalits in meeting their ends. Prejudice against them is unbridled in a description of untouchability and verbal and physical abuse accompanied by violence, which is a very real part of their daily life. While Dalits constitute a significant 16.6 percent of India's total population, according to the 2011 Census, more than 80 percent of Dalit households survive on the smallest of public facilities and infrastructure in their homes, including safe drinking water. Dalits not only face limited access to drinking water but also face numerous challenges in accessing it. In lots of places, traditionally endorsed social and cultural norms like untouchability still play a more significant role than the normal availability of water. Troubled by the burden of collecting water, the condition becomes complex for Dalits as they are at the receiving end of a diversity of discriminatory practises from their upper-caste neighbours while accessing water from the common resources. The discrimination may range from coming up for long periods before being allowed to fill their pots, to rude language, and even physical violence and humiliation at the hands of upper-caste people. Their lack of political representation, combined with the risk factors of being Dalits, increases their vulnerability to potentially aggressive conditions while decreasing their ability to flee. But it is not the concept of untouchability alone that resolves access to water in rural Tamil Nadu—it is also the power, distance, and conflict between upper and lower castes that imitate the power hierarchy in villages, which ultimately leads to violence.[2]

The fundamental aim of the study is to explore the issues and challenges faced by Dalits while accessing drinking water and find out how the availability and accessibility of drinking water have impacted their lives. Reciting the experiences of Dalits while accessing water from regular sources, the study underlines how caste hierarchy plays a crucial role in determining the availability and accessibility of drinking water to these disadvantaged and vulnerable sections of society.

Dalits' water rights

According to the survey results, 83.2 percent of respondents reported having access to safe drinking water surfaces. By "safe drinking water," we mean drinkable

water that is free from harmful micro-organisms and substances, even though it may have a colour, odour, or taste dilemma owing to the presence of dissolved minerals. For example, tap water, public stand posts, local hand pumps, and so on can be considered safe drinking water, while water from sources such as rivers, streams, ponds, rainwater harvesting, open wells, and so on can be measured as unsafe drinking water. Even though government sources in India regularly claim that the drinking water provided across the country is safe, whether and to what extent it is safe cannot be determined simply by looking at the sources. Among the Dalits who relied on unsafe sources, 74.0 percent drank from open wells, 20.2 percent from the river, and 5.8 percent from springs, ponds, and other additional sources.Three major trends are visible: first, an absolute dependence on common (public) sources for safe drinking water like local hand pumps; second, a considerable proportion of Dalits have no ownership of water sources. As a result, they must travel outside their community to obtain water; and third, they rely heavily on open wells of people who do not have the legal right to use them for safe drinking water.The Hindu caste system has traditionally placed them at the bottom of the hierarchy as the *'Fifth Group'* or *'Panchama',* and barred them from partaking in every sphere of life. Caste inequity persists in its usual forms, including physical and professional isolation, as well as discrimination and deprivation in access to land, other natural resources, justice, and education, as well as opportunities for social interaction and employment. It was only through *Dr. B. R. Ambedkar's* enormous Mahad Movement that the rights of the Dalits to take water from public watering places were established. This event not only challenged the customary hegemonic control of the upper castes over water resources, but also supported the involvement of women in the movement. Following in his footsteps, all of India's leading progressive social movements have raised the issue of facing the water as a fundamental human right.In particular, in rural Tamil Nadu, socio-cultural rules play a much greater role than the innate availability of water. [3]

Water Availability

Water, being a restricted and crucial resource, has a close connection with class, caste, and gender, especially when it comes to the organisation and sharing of water. The nastiest and most ruthless form of discrimination and untouchability is seen when it comes to water, and it starts when marginalised communities like the Dalits attempt to access public water properties. These public resources could be, among other things, public water provisioning systems by the states or traditional or modern water harvesting structures. The households' access to these sources points to the usefulness of the execution of government policy to ensure the fulfilment of the essential needs of people. However, there are some cases where the ownership of water sources is organised in a descending order of priority.The households that have a well are at the top of the status quo. Such households enjoy more comfort when compared to others. On the other hand, because of the unpaid lack of water

connectivity in individual households, the enormous size of Dalit households depends wholly on public water provisioning systems. In the majority of cases, absolute poverty does not allow them to possess a source of drinking water. The occurrence of the caste system has turned the community water provisioning system into a 'symbol of power relations' in which the Dalits are barred from direct access to water. [4]

Water and untouchability

Several caste groups among Dalits are considered untouchables, which means that their physical proximity or handling can contaminate the natural resource, rendering it unusable by upper castes.The source of water may be a well, pond, river, stream, or water position associated with the waterworks. This cultural rule was established firmly in various parts of Tamil Nadu. Drinking water has been the main serious domain of the practise of untouchability. In villages that had a common source, precedence was given to the upper castes. In numerous examples, Dalits were forbidden from having direct access to community sources; an upper-caste person would collect water from the source and fill the Dalits' instrument without touching him or her. Upper-caste people may have used two different methods to protect their water sources. First, they would not allow the untouchables to touch their water sources. They would draw water and pour it into the pots of the untouchables, which would be kept away from the water source. The other likely arrangement could be a separate queue for Dalits and upper castes, with special time allocated.[5]

Water scarcity and Dalits

The Dalits are found across the country; they exist in diverse environmental zones, each with a separate sketch of rainfall and temperature conditions. In Tamil Nadu, both local and seasonal water shortages are experienced. A few areas fall into low rainfall zones where the water scarcity situation is sensitive. The tropical monsoon climate that is rampant in India generates long, hot dry spells when there is no or scant rainfall. In such a situation, not only do surface water bodies dry up, but even groundwater levels decline. This has a direct impact on the accessibility of water for domestic use. Dalits, as a social and economic group, are much more susceptible to the water scarcity situation. Their sources of water are more unreliable and subject to unavailability during dry periods. Their complexities are exacerbated by their limited ability to adapt to water scarcity conditions.The shortage of access to water is rising in these water insufficient conditions. Because Dalits have a lower ability to adapt to scarcity, the crash of environmental tension is greater and spreading.In villages where caste discrimination is prevalent, Dalits cannot depend on their usual water sources during times of water scarcity. Access to scarce natural resources in Tamil Nadu villages is not only uneven, but also influenced by the village's sociopolitical dynamics.[6]

The distance from the water source

The importance of water supply is one of the primary exclusivities of access to water, as is distance from the water source.Water must be available when needed, and those who must travel a few hundred metres are likely to get less of it, leading to pressure use and poor sanitation practices.Diverse government agencies determined that at least 40 litres of water per capita per day should be available within 1.6 kilometres of every household. This round translates to 30 minutes of walking time carrying three buckets one way.Of course, the majority of households have to travel much less. But even those households that have access to a water source at less than 50 metres have to spend time collecting it, which a lot of people can't afford. Though the major spring may be secure, the other resource is removed. Occasionally, family members must travel to obtain water.[7]

Dalit Women and Water Access

A considerable feature of water convenience is that the burden of bringing water from distant sources falls entirely on women, irrespective of their age and class. This burden is exacerbated for Dalit women in rural and urban settings due to a lack of ownership and easy access to drinking and domestic water sources.Dalit women are mistreated in the method in two ways: (a) they are forced to fetch water for all necessities due to tradition and customary practices; and (b) they are subjected to humiliation such as verbal abuse, physical assault, sexual assault, and so on simply because of their caste identity. In Dalit households, women are trusted with the job of collecting water for domestic use. Due to the lack of guaranteed drinkable sources of water, they have to accumulate water from remote places. Even though they are permitted to use the common source of drinking water, they may be asked to make separate queues or wait until upper caste women collect their share of water. In numerous places, Dalit women are not allowed to fetch water from the well. They have to wait till the upper-caste women pour water into their pots. The upper-caste women shout at them and continually humiliate them by saying: '*Keep your distance, do not pollute*'.[8]

The distance of water collected by Dalit women

The time taken by women to collect water has numerous facets. It reflects not only the physical hardships they face, but also a slew of other discriminations from the same source. As per the government recommendation, at least 40 litres per capita per day of water should be accessible at a distance of less than 1.6 km for every household. Though in actuality an enormous bulk of households travel long distances for diverse reasons, such as defunct or non-functional sources, prohibition imposed by the upper castes on the use of handy sources, unprocessed or unsafe water, scarcity of water supply, etc., various reports say that a Dalit woman fetches water five times a day. The incidence of such trips varies from 2.6 times in Vellore to 6.5 times in Sivagangai. Usually, on each such trip, they spend 15 to 30 minutes.

They also experience unpleasant impacts on their family economy and their capability to professionally direct their domestic responsibilities. The troubles visible from their reply are: 1. problems in looking after children, 2. holdups in cooking and sending children to school, 3. the children remaining hungry, 4. scolding by family members, and 5. physical violence by family members. The majority of these women believed that economic losses occurred because their men's knowledge hampered their ability to reach their places of employment.[9]

Water Storage

Dalit households mostly depend on ordinary sources. They store water daily, depending on the amount of labour needed to fetch the water. The water is stored in buckets, large cans, and pitchers. In Tamil Nadu, Dalit households demonstrate extremely tiny water storage per person. Standard water storage is mostly less than 10 litres per person. The agreed-to limit for the sufficient water obligation is about 40 litres per person per day. [10]

Recent water riots against Dalits in Tamil Nadu

Kayampatti Village (Madurai)

The Dalits in Kayampatti Village in Madurai West have been denied access to drinking water. According to sources, Kayampatti's 200-odd families have been drawing water frequently from a 25-year-old tank for their drinking water needs. This water is supplied via two splits: one for the dominant caste households (Kallars, Nadars, and Chettiars) and the other for the Dalit settlements (Adi Dravidars). However, Adi-Dravidar families in Kayampatti have been complaining that for the last three to four years, the overriding caste inhabitants have had imperfect access to the water in the tank. They put a lock on the valve that supplies water to us. "They are doing this to intentionally limit the amount of water we receive, which they use to draw an unlimited amount of water from the tank', said a resident of Kayampatti. The locked valve is opened at specific times of the day, forcing members of the Adi Dravidar community to rush to store water. Another resident said, 'We hardly get enough water for our needs'. During the day, when everyone has to go to work, most people scramble for water. All we ask is that the water be supplied equally to everyone without prejudice. Every family in the Dalit colony gets just two or three pots of water per day. Occasionally, they open it for 30 minutes, and at other times, they open it for over an hour. Regularly, water is supplied to the colony members wherever they are between 6.00 am and 7.30 am, even as the upper-caste residents take pleasure in an unrestricted supply with no time restraint. [11]

Kodikulam Village, Otthakadai Yanamalai (Madurai)

In Kodikulam village, the inhabitants' are justified in restricting the Dalit villagers' well, arguing that the well is 'sacred' and over 150 people use it for drinking purposes. They said, 'We worship this well, and the water from it is used only for

drinking purposes and not for any other purpose'. We are clean when it comes to the well. Other people (Dalits) are not visiting the well because they are not clean. The well has been coupled with four tiny temples built close to it, and religious sentiments were given as a reason to stay with the Dalits. The well is bounded by trees that are home to thousands of honeybees. Strangers have to be cautious while looming over the well, as they might get a sting or two. The villagers have deliberately left the honeycombs untouched, as it serves their purpose of discriminating against the Dalits. [12]

Muthuramalingapuram (Virudhunagar)

Approximately 30 Dalit families lived in the Muthuramalingapuram village near Virudhunagar District. A common tank was built in the region with funds from the Panchayat Union funds. Doar caste Hindus were allowed to use it. Every time the Dalits tried to access it, they were warned by caste Hindus and the water supply was cut off. A survey carried out by members of the (TNUEF) exposed that untouchability triumphed in the village and that the ban on the use of the water tank was one of the problems. In search of clarification, the Tamil Nadu Untouchability Eradication Front (TNUEF), comprised of Dalit and caste Hindu community representatives, warned the Dalits of the terrible consequences if they stepped into the tank.However, officials stated that they ensured the Dalits' safety more than any other possible response. [13]

Karikkilipalayam (Erode)

An adolescent boy was stopped from taking water from a tap situated at Karikkilipalayam in Erode District by three women of the upper-caste community, but was further harmed by 'caste names'. While he protested, the three women and a man from the dominant caste beat him up. It was also reported that the village where the sufferer resides is reeling under tremendous water scarcity. According to the statement, Dalits are prohibited from cutting their hair in salons in the locality and from using mobile phones outside their huts in the area.

Thenpalanji Village (Madurai)

A 52-year-old Dalit woman, Andichhi, was beaten and humiliated, purportedly by a group of caste Hindus, in Thenpalanji village. The problem began after Andichhi's daughter-in-law went to draw water from a hand pump. A few upper-caste women stopped her and abused her. So, Andhichhi filed a complaint with the Tirunagar police station. Consequently, the caste Hindus, armed with sticks and logs, entered Andhichhi's house and attacked her, her sons, and her in-laws. [15]

Conclusion

The study confirms a disparity example found throughout Tamil Nadu, where hardship, physical hamlet division, ideas of purity and pollution, and discrimination in access to public water bodies exist. The study also reveals how Dalit women frequently face challenges while fetching water from common places. In rural Tamil

Nadu, Dalits face numerous challenges in obtaining safe drinking water. The majority of Dalit households lack ownership of water resources. The harms of accessibility, which force Dalits to collect water from many sources after travelling vast distances, are additionally aggravated by socially constructed issues of access, wherein they also face different forms of deficiency and discrimination in the process. Some sources of water are located at a distance from the villages. As a result, Dalit women must walk for miles to obtain drinking water, which is frequently contaminated. The technological modernization of low-caste water dealing has not reached many. Thus, access to safe drinking water has remained a challenge for Dalit households, and it has been seen that water supplies are often at the top of their priority list.

❐

References :

1. *Vadapalli, N., (2015), 'Social discrimination and Violence of scheduled castes human rights in India', The Rights, 1 (II), 10.*
2. *Joshi, D., (2005), 'Misunderstanding gender in water: Addressing or Reproducing Exclusion', Oxford International Publisher Ltd, 2005.*
3. *John, H., (2012), 'Stigmatization of Dalits in access to water and sanitation in India', National Campaign on Dalit Human Rights, New Delhi.*
4. *Dutta. S., (2015), 'Access to drinking water by scheduled castes in rural India: Some key issues and challenges', Indian Journal of Human Development, Vol. 9.*
5. *Tiwari, R. and Phansalkar, S.J., (2007), 'Dalits' Access to Water: Patterns of Deprivation and Discrimination', International Journal of Rural Management, Vol.3 (1), 43-67.*
6. *Green, C., (2003), 'Handbook of Water Economics: Principles and Practice', Whiley & Sons Ltd, Nakpur, 2003.*
7. *Bob, C., (2007), 'Dalit Rights are Human Rights', Human Rights Quarterly, Vol.29 (1).*
8. *Irudayam, A. Mangubhai, J.P., and Lee J.G., (2006), 'Dalit Women Speak Out: Violence against Dalit Women in India, Overview Report of Study in Andhra Pradesh, Bihar, Tamil Nadu, Pondicherry and Uttar Pradesh', National Campaign on Dalit Human Rights, NewDelhi.*
9. *Ahlqvist, (2013), C., 'Gendered Relations to water – A Study about water on a household level in Kerala, India', Uppsala University, London.*
10. *Borooah, V.K., (2012), 'Gender and Caste Based Inequality in Health Outcomes in India', IIDS Working Paper Series, Vol. 6, No. 3, 2012.*
11. *Gorringe, H., (2005), 'Untouchable Citizens: Dalit Movements and Democratization in Tamil Nadu', Sage Publications, New Delhi, 2005.*
12. *Anandhi, S., (2017), 'Gendered Negotiations of Caste Identity: Dalit Women's Activism in Rural Tamil Nadu', Abingdon and New York.*
13. *Alphonse, (2012), M., 'Special Component Plan for Dalits in Tamil Nadu: A New Discourse in the Making', SOAS, University of London.*
14. *Ramaiah, A., (2007), 'Laws for Dalit Rights and Dignity: Experiences and Responses from Tamil Nadu', Rawat Publications, Jaipur, 2007.*
15. *Mosse D., (2009) 'Christian Dalit activism in Contemporary Tamil Nadu', SAGE Publications, New Delhi.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 149–166

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Gandhi as a Spiritual Politician in B.R. Nanda's Mahatma Gandhi A Biography

Dr. Pramod Kumar
Asst. Professor,Department of English,H.V.M. (P.G.) College, Raisi ,Haridwar, Uttarakhand
E-mail : pramodharidwar@gmail.com

ABSTRACT

This research paper intends to analyze and evaluate the biographer, Nanda's perspective towards Gandhi whom the biographer presents him as a spiritual politician. It truly endeavors to appreciate his Gandhi's spiritual value of non-violence and its necessity in human lives. Biographical literature in English is exactly a reflection of a protagonist's life including his/her struggles, vicissitudes, successes and failures. It is totally a factual, actual and real account of a great man's life excluding fictional and imaginative details. Literary biography in Indian English literature studies thoroughly the inner and the outer personality of a great man in relation to his/her contemporaries. It performs significantly a vital performance in shaping human lives. It gives morally an inspiration to the people. Studying spiritually about the true life story of a particular person many times provides heartening and uplifting. Gandhi's biographer, Nanda describes elaborately Gandhi's spiritual ideas, ideals and political situations in relation to political liberation of India much more than other biographers. Nanda's Gandhi entered active politics in order to spiritualize social and political life of India. The biographer states that Gandhi believed spiritually that ill will, malice and hatred were more dangerous than guns and bombs for human lives. Violence is not only harming, hurting and killing anybody but also it is anything discordant which disrupts immorally the unity of human lives. It includes largely evil thinking, falsehood, hatred and greed. His Gandhi's non- violence is fully the absence of all these. It is heartily a spiritual force that stands for the supreme and selfless love for all living beings. His Gandhi believed in spiritual love that holds heartily the whole world together.

Key words : Biography, Spirituality, Morality, Non-Violence, Politics.

B.R. Nanda is the author of a number of eminent books on Gandhi and Nehru as well as a biography of Gokhale. He has been the director of the Nehru Memorial Museum and Library. B.R. Nanda's Mahatma Gandhi: A Biography was firstly published in 1958. It consists of four literary books namely, "Formative Years", 'Emergence of Gandhi' 'War and Peace' and 'The Last Phase'. This literary biography begins with the chapter 'Childhood of Gandhi' and ends with the chapter ' Victory of the Vanquished '.

Nanda introduces Gandhi as a spiritual politician of the Indian masses and on the whole as the father of political liberation of India, While Gandhi's other biographers like Krishna Kripalani and J.B.Kripalani introduce Gandhi as a moral force and social reformer respectively. Nanda's *Mahatma Gandhi: A Biography* is much lengthier than Krishna Kripalani's *Gandhi: A Life* and J. B. Kripalani's *Gandhi: His Life and Thought*. Having high literary value it is written in a descriptive prose style. Nanda skillfully arranges the events and incidents of Gandhi's life more chronologically and objectively. Unlike Krishna Kripalani, but like J. B. Kripalani's his biography does not have photographs of Gandhi and major occasions in his life.

Since Nanda focuses on Gandhi and his spiritual ideas, ideals, achievements and political situations and events of his period in relation to political liberation of India much more than other biographers, *Mahatma Gandhi: A Biography* seems to be a spiritual biography. A good biography requires essentially not only an intuitive knowledge and information of its protagonist but also perfect and exact evaluation of the surroundings and social- political background of the events of that period. A true biographer is globally known for intellectual knowledge of success and failures of the protagonist's life. Therefore the biographer becomes a social-political historian, philosopher and psychologist in one. Gandhi's biographer, Nanda is more a political historian than Krishna Kripalani and J. B. Kripalani. He gives spiritually more political and historical account of Gandhi's period than Krishna Kripalani and J.B. Kripalani do. The smallest and the biggest things of the life of a particular person are enchantingly presented in the biography in such a literary style so that the readers may know not only the inner life of the protagonist, but also establish a sympathetic relationship with him.

A true literary significance of Nanda's *Mahatma Gandhi: A Biography* lies fully in this fact that Nanda describes Gandhi's spiritual ideas and ideals on non-violence more elaborately than Krishna Kripalani and J.B. Kripalani describe. Nanda's Gandhi devoted the best part of his life in perfecting and extending non-violence to the human relationships as the unity of hearts could not be existed by breaking heads.

Nanda's book I of the biography, 'Formative Years' describes in detail the shaping years of Gandhi's life. It covers the period of Gandhi's life from 1869 to 1914. It includes fifteen chapters. It begins with a vivid description of the family background of the protagonist, Gandhi and ends with Gandhi's days in South Africa. Nanda beautifully shows how Gandhi's personality took shape in South Africa which

was Gandhi's first experimental laboratory. The most significant formative years of Gandhi's life had been meaningfully spent there. Gandhi began his spiritual political career in South Africa which had matured him to play a spiritual role in Indian politics. Mahatma Gandhi was the youngest son of Karamchand Gandhi and his last wife, Putlibai. The biographer gives the reference of spiritual influences. Gandhi's mother, Putilibai was essentially a spiritual woman who shaped Gandhi's spiritual purposes and principles. Listing early life of the protagonist, Nanda narrates that Gandhi read *Shravan Pitrabhakti Natak* which formed truly his devotion and dedication to parents and later on towards all the human beings. Nanda writes:

It was a child thus predisposed who read the ancient play Shravan Pitribhakta portraying the boundless love of the mythical boy Shravan for his parents. The picture of Shravan carrying his blind parents on a pilgrimage by means of slings fitted to his shoulders was indelibly printed on Mohan's mind.**1** (Nanda, B.R.*Mahatma Gandhi: A Biography*.p. 20)

Indeed, this play had spiritually strengthened and shaped Gandhi's love, devotion, dedication and obedience for parents. Nanda adds:

What others read for pleasure he read for instruction. Millions of children and adults in India have heard the stories of Prahlad and Harish Chandra. The boy Prahlad, who suffered untold hardships without faltering in his faith in God, and King Harish Chandra, who sacrificed all he had for the sake of truth, are heroes of Hindu mythology, the creatures of poetic imagination and have been treated as such But for Mohan they became living models.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.23)

Of course, not only Shravan Pitribhakti Natak and the stories of Prahlad and Harish Chandra, but also history and literature shaped Gandhi's long course of spiritual life. Nanda, the biographer, also narrates the weaknesses. or transgressions of this period. Mehtab, one of his schoolmates, induced him to eat meat - eating, saying that it made one strong and that the British were ruling India because they were meat eaters. Gandhi was immorally guided by Mehtab. Gandhi began to eat meat secretly. In his *Autobiography*, *My Experimentswith Truth*, Gandhi himself reveals:

I asked my friend the reason and he explained it thus: We are a weak people because we do not eat meat. The English are able to rule over us, because they are meat-eaters. You know how hardly I am, and how great a runner too. It is because I am a meat-eater. Meat-eaters do not have boils or tumors, and even if they sometimes happen to have any, these heal quickly. Our teachers and other distinguished people who eat meat are no fools. They know its virtues.[2] (Gandhi, M.K. *My Experiments with Truth*. p.18)

Indeed, the biographer gives partly a record of Gandhi's weaknesses in his spiritual character as biography is an account of strengths and weaknesses of a hero's life. Apart from this the biographer gives the reference of another weakness of Gandhi's spiritual character. Smoking was another transgression of this period.

With another boy Gandhi began to pilfer stumps of cigarettes thrown away by his uncle .There was another escapade of this period, the theft of a piece of gold in order to pay off a debt incurred by his brother. He confessed heartily his guilt to his father, who did not scold him, but Gandhi wept silently. Those tears cleansed completely Gandhi's heart and washed minutely his sin away. Gandhi's confession increased his father's affection. It formed truly Gandhi's spiritual life in the course of non- violence.

Following Gandhi's *Autobiography*, Nanda also says that Gandhi was a mediocre student in his childhood and passed the matriculation examination in 1887. The biographer describes Gandhi's despair at the time when Gandhi was considerably unable to follow the lectures in English. Nanda writes, "Unfortunately for Mohan, the teaching in the college was in English. He was unable to follow the lectures and despaired of making any progress".[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.24) Indeed, Gandhi felt dejected and frustrated there. The biographer mentions the name of Mavji Dave who was a friend of his family. He suggested that Gandhi should go to England to qualify at the bar. Nanda gives wisely a beautiful comparison between Indian universities and foreign universities in the context of Gandhi's study of Law. Nanda aptly comments:

It was easy enough to become a barrister; in contrast, the degrees of Indian university consumed more time, energy and money and had less value in the market. A Bombay Degree was likely to produce nothing better than a clerical post. Mavji Dev argued that if Mohan aspired like his father and grandfather to be the Diwan in one of the states of Kathiawar, he needed a foreign degree.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*. p. 24)

Indeed, Karamchand and Uttamchand Gandhi had fortunately held high posts and managed unfortunately very little education, England was the land of eminent philosophers and literary poets. In his *Autobiography*, Gandhi states:

Becharji Swami was originally a Modh Bania, but had now become a Jain Monk. He too was a family adviser like Joshiji. He came to my help, and said, I shall get the boy solemnly to go. He administered the oath and I vowed not to touch wine, woman and meat. This done, my mother gave her permission.[2] (Gandhi, M.K. *My Experiments with Truth* p.37)

Of course, It was Becharji Swami, a spiritual family advisor who inspired judiciously Mohan to take a spiritual vow that he would not touch wine, women and meat while he was away from Indian land. These three vows became Gandhi's mission of a unique discipline of body, mind and soul which shaped Gandhi's spiritual life. Though friends in England persuaded him to break the spiritual vow of vegetarianism, yet Gandhi becomes a vegetarian. Nanda describes that in his early days Gandhi wanted to become an English gentleman in England. The infatuation for the western style of living continued about three months. He stopped taking lessons in dance, music and elocution. His conscience spiritually awakened him. He realized that he should honestly concentrate on his learning and not waste dishonestly

his brother's money. Politics did not excite Gandhi who found spiritual divinity not only in Gita but also in all religions of the world. Nanda narrates:

Apart from the vegetarian society, the only organization which drew him was the 'Anjuman Islamia' an organization of Indian Muslims, mostly students, who debated political and social questions over light refreshments.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p. 30)

Of course, this organization taught Gandhi how to bring people together on social and political questions. The biographer mentions the several names of members who would hold the nationalist views on political issues, among these were Gandhi, Abdur Karim, Mazharul Haq, Mumammad Shafi, Sachchidarand Sinha and Harkishan Lal. Henceforward this organization formed Gandhi's spiritual political life. Nanda describes briefly an account of a vegetarian club in Bayswater. Gandhi became part of the executive committee of the London Vegetarian society in London, England, where he got an important opportunity to read Sir Edwin Arnold's *Light of Asia* and *The Song Celetial*. These two books taught him the value of physical and mental condition of human life and love which shaped Gandhi's spiritual life.

As a biography is a record of the successes and failures of a hero's life, Nanda describes the failures of Gandhi's life as well. Gandhi started practising law at Rajkot and then at Bombay, but he did not prove to be a successful lawyer. He became a disappointed and dejected "briefless barrister." *In My Experiments with Truth*, Gandhi says:

I used to attend High Court daily whilst in Bombay, but I cannot say that I learnt anything there. I had not sufficient knowledge to learn much Often. I could not follow the cases and dozed off. There were others also who kept me company in this, and thus lightened my load of shame after a time.[2] (Gandhi, M.K. *My Experiments with Truth* p.89)

Meanwhile a South African Firm Dada Abdulla and Co. asked for his help in a legal case. Gandhi eagerly agreed and sailed for South Africa in April 1893. Nanda's *'A Fateful Journey'* describes in detail the event of Maritzburg why Gandhi became a spiritual politician. Gandhi had to travel to Pretoria. On the platform of Maritzburg station he was thrown out along with his luggage. Nanda writes:

The experience in Durban, however, was nothing compared with what befell him in the course of his journey from Durban to Pretoria when his train reached Maritzbung late in the evening, he was ordered to shift to the van compartment. He refused but was unceremoniously turned into the first-class carriage. It was a bitterly cold night as he crept into the unlit waiting room of Maritzburg station and brooded over what had happened. His client had given him no warning of the humiliating conditions under which Indians lived in South Africa.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.38)

Indeed, Gandhi suffered humiliation, discrimination and frustration in South Africa. Therefore he decided and determined to fight against racial discrimination.

It was really a historic decision that contributed a lot in the evolution of becoming Gandhi as a spiritual politician. Gandhi was totally ignorant about the racial discrimination and colour war in South Africa. Nanda narrates briefly a vivid description of the small Indian community in South Africa where they were facing problems, hardships, exploitation and oppression at that time. They were not given citizenship rights like the right to vote. Since they were racially hated and discriminated in all matters by the dominant white community, they could not travel in the railways and could not enter hotels. Nanda narrates vividly an account of Gandhi's purposes and principles why Gandhi became a spiritual politician of the Indian community there. He founded a political organization named, The *Natal Indian Congress* in 1894. Gandhi became a spiritual political leader of the Indian masses. He was not only the political leader of the Natal Indians, but also their critic as a spiritual force. In this context Nanda writes:

In these early years of his political apprenticeship, he formulated his own code of conduct for a politician. He did not accept the popular view that in politics one must fight for one's party right or wrong. The passion for facts, which he had recently cultivated in his practice of law, he brought to bear or politics. If the facts were on his side, there was no need to embroider on them.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p. 46)

Indeed, this biographical account shows objectively how Gandhi organized the unorganized Indian masses in Natal, South Africa and gave them spiritual political leadership. Nanda describes that a crowd of the white people of South Africa lynched Gandhi whom they considered guilty of an offense. In the middle of 1896, Gandhi visited India to fetch his family and wrote sensibly two pamphlets that offended the white people in South Africa. Nanda states:

On the arrival at Rajkot, Gandhi devoted the better part of a month to writing a pamphlet on the Indian problem in South Africa and had it printed and dispatched to influential public men and newspapers all over the country. This pamphlet covered, though more cautiously, the same ground as his earlier pamphlets in Natal, "*An Appeal to Every Briton in South Africa "and "The Indian Franchise"*.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p. 51)

Indeed, the biographer intends to reflect that Gandhi was fully conscious of Indians' problems and wanted to awaken them through the writings of two pamphlets. Here the biographer does not ignore the facts why Gandhi wrote two pamphlets. Nanda's Gandhi is a political leader who met two politicians Tilak and Gokhale in India. Therefore Nanda selects this reference. Gandhi met the two giants of Maharashtrian politics Gokhale and Tilak. Gokhale had devoted himself wholeheartedly to public life and he was a political guru of Gandhi. Rumours reached South Africa that Gandhi had maligned The Whites in India and he was coming with a large number of Indians to swamp the Natal colony. It was fully wrong but it made the white people much furious. Gandhi had to face this fury, when he returned with his wife and children. He had to enter the port town secretly, but he was found and

cruelly assaulted. The whites wanted to hang, but he was saved by the superintendent of police and his wife. Nanda aptly remarks, "A European shouted and gave a brutal kick. Gandhi nearly fainted, held the railing of a house".[1] (p.56) Indeed, Gandhi suffered hardships, but still he forgave his assailants.

Nanda's 'Stones for Bread' throws light on the British-Boer war. It broke out in 1899. The biographer shows how the Indians had been badly treated by both Boers and British. Gandhi's own ideas on non-violence and pacifism had not yet fully matured. The Boers were the Dutch colonizers who ruled some of the South African colonies, but the British wanted to rule whole of the South Africa. Being a British citizen and a leader of the Indian masses, Gandhi considered it was his duty to help the British in need. In his *Autobiography*, Gandhi himself writes:

Our Corps was 1,100 strong, with nearly 40 leaders, About three hundred were free Indians and the rest indentured. Dr. Booth was also with us. The corps acquitted itself well. Though our work was to be outside the firing line, and though we had the protection of the Red Cross, we were asked at a critical moment to serve within the firing line.[2] (Gandhi, M.K. *My Experiments with Truth* p.198)

Indeed, It was a war, but still Gandhi chose faithfully to serve the wounded outside and within the firing line. This was spiritually an effective action of Gandhi who raised an ambulance corps of 1100 persons. The biographer mentions those persons professionally among them were barristers, accountants, artisans and laborers. As a leader, it was Gandhi's task to keep them together. The British won the war. The Boers fought bravely with determination and courage that formed Gandhi's spiritual life against the social and anti-Indian policies of European Colonies in Natal and Transvaal.

A true biography studies its character- hero from both within and without, therefore Nanda's 'The Religious Quest' narrates elaborately several religious influences that shaped Gandhi's inner life spiritually. Nanda narrates that during the long illness of Gandhi's father, Karamchand was occasionally invited to his bedside by Hindu Pandits, Jain Monks, Parsi and Muslims divine for discussion on religious matters. Gandhi would listen to these religious matters attentively. Therefore he imbibed equal regards for all religions. Nanda gives the reference of Gandhi's religious study. Gandhi did much religious reading at this time in London. Gandhi did not join the Theosophical society, but its literature stirred spiritually his attentiveness and interest in several religions. His Theosophist friends had invited them to read Sir Edwin Arnold's *The Song Celestial* and *The Light of Asia*. The Story of Gautam Buddha- his life, renunciation and teaching shaped spiritually his inner life. Gandhi was in England where he was introduced to *The Bible* and *New Testament*. The idea of returning love for hatred, and good for evil shaped Gandhi's inner life. Carlyle's *Hero Worship* had first introduced to Islam. Nanda emphasizes that it was the Bhagavad Gita that formed effectively Gandhi's spiritual life more than any other book which Gandhi had read in England. Gandhi's foreign biographer, Louis Fischer supports Nanda's statement. In *The Life of Mahatma Gandhi,* Louis Fischer spiritually records:

The Gita was Gandhi's spiritual reference book' daily guide. It condemned inaction, and Gandhi always condemned inaction. More importantly, it showed how to avoid the evil that accompanies action.[3] (Fischer, Louis. *The Life of Mahatma Gandhi* p. 48)

Indeed, *The Gita* became Gandhi's spiritual dictionary and a guide to conduct. Gandhi was very much formed by the spirit of *The Gita*. Nanda records that Gandhi learnt two words from the Gita - Aparigraha (Non - possession) and Sambhav (equability) Nanda records:

The two words aparigraha (non-possession) and Sambhav (equability) opened to him limitless vistas. Non-possession implied that he had to jettison material goods which cramped the life of spirit, to shake off the bonds of money, property and sex and to regard himself as the trustee not the owner of what could not be shed equability required that he must remain unruffled by pain or pleasure, victory or defeat and work without hope of success or fear of failure.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.70)

Of course, true religion was more a feeling of the heart than the intellectuality of mind. Nanda emphasizes that in his lifetime Gandhi was variously labelled a sanatanist, a Hindu, a Buddhist, a Theosophist, a Christian and a Christian - Mohammedan. He was all these, Nanda looks at Gandhi as a spiritual humanist from the point of view of several religions.Nanda's "Transformation" narrates briefly Ruskin's "*Unto this Last'' which* formed Gandhi's life. At the time, When Gandhi was taking a train from Johannesburg to Durban, his journalist friend, Polak gave him Ruskin's *Unto this Last*. Ruskin condemned poverty and injustice which industrialism had brought. These ideas and ideals formed Gandhi's mind and to colour his attitude to simple life outwardly. Under this influence Gandhi founded enchantingly the Phoenix settlement near Durban and later the Tolstoy Farm near Johannesburg.

Since a real biography studies its protagonist from within and without, Nanda's *'The Flesh and the Spirit'* emphasizes the outer and inner personality of Gandhi. The biographer focuses on the cycle of Gandhi's sex life which appears to have completed itself too soon. Between the age of thirteen, when he was married and eighteen when he left for England. In 1899, he had already made up his mind to limit the size of his family. Therefore he took spiritually the vow of celibacy. He could not live both after the flesh or sex and the spirit. In 1899, he had decided not to have any more children as that he had four already. Gandhi's sex life tended to ebb after a fast beginning. Nanda records.

And finally Gandhi came to the conclusion that Brahmacharya in the narrower sense of sexual restraint was impracticable without the Brahmacharya in the widest sense - the control of all the senses indeed, word and thought.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.85)

In fact, Gandhi practised spiritually brahmacharya in thought, word and deed. Sexual energy ought to be utilized for higher purpose. It should not be wasted for temporary delight. All sexual senses must be strictly controlled. His Gandhi realized the sexual life physically harmful and spiritually sinful, therefore he adopted saltless, pulseless, milkless diets to explore a combination which would keep him in good health to fend off sexual passions. It was truly right for a spiritual man to control the sexual feelings by practising discipline of body and mind.Nanda focuses on the principle of Satyagraha that was discovered by Gandhi. Satyagraha was firmness in truth, by which he led the political agitation for fundamental rights for the Indian community in Natal and Transvaal. Nanda writes:

Gandhi was vaguely aware that some new principle of fighting, political and social evils had come into being - The term 'Passive Resistance' was at first employed to describe the new principle, but the association of this term with the verbal and physical violence practised by the - suffragists in England made it unsatisfactory. Indian Opinion, which was to become thevoice of Gandhi's movement, invited suggestions for an appropriate name. The word "Sadagraha" (which means firmness in good conduct) appeared to Gandhi; he amended it to Satyagraha (firmness in Truth).[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.95)

Indeed, the entire thought was thoroughly represented behind it. Gandhi's Satyagraha means firmness in truth through the means of non-violence. It has significantly an aim at changing the opponents' attitudes through self-suffering. Nanda gives the reference of several books that formed Gandhi's Satyagraha. It has truly a sense of spirituality. It was *The New Testament* which really awakened Gandhi to the rightness and true value of 'Passive Resistance'. Another was "*Sermon on the Mount*" which shaped Gandhi towards spirituality. This book taught Gandhi to love your enemies and pray for them that persecute you, They may be sons of your father which is in heaven. Thus *The New Testament* and *Sermon on the Mount* shaped Gandhi's Satyagraha that was spiritual weapon. It was a unique contribution of Gandhi to the world.

Apart from its vivid description Nanda focuses briefly on the literary value of Indian opinion that was Gandhi's first newspaper. He introduced it on June 4, 1903 in South Africa to fight against racial discrimination. Its true purpose was to awaken Indian masses to their fundamental rights. Nanda's South African Laboratory describes that it was South Africa which formed effectively Gandhi's spiritual life. Nanda introduces meaningfully South Africa as a laboratory of Gandhi who had gone there as a young, shy, briefless barrister. He returned perfectly as an unprecedented extent for a novel struggle. It was South Africa where Gandhi's ideas and ideals were largely developed. He was spiritually influenced by Ruskin, Tolstoy and Thoreau. He made a deep study of religions there and became a firm believer in non-violence. Gandhi's spiritual principle of Satyagraha came into being in South Africa.

Nanda's book 2nd of the biography "Emergency of Gandhi" focuses in detail on the rise of Gandhi as a spiritual political leader in Indian freedom struggle. It covers beautifully the period of Gandhi's spiritual political life from 1915 to 1922. It includes twelve chapters from sixteen to twenty seven. The biographer focuses briefly on Home Rule Movement and Khilafat Movement in the context of Gandhi's spiritual political life and Indian freedom. The author tries to delve into the causes and effects of growing spiritual popularity of Gandhi on Indian politics with the successful application of his theory of non-violence.

'Emergence of Gandhi' begins with the arrival of Gandhi in India and ends with the suspension of non-cooperation movement. Gandhi returned to India in January 1915. He was warmly welcomed and honored as a hero. He spent a year touring the country at the instance of Gokhale, his political guru. Íå observed largely the real condition in the country first hand. Nanda adds, "During 1915 - The year of probation - Gandhi eschewed politics severally. In his speeches and writings during the period he confined himself to the reform of the individual and society". (p.133) In fact, Gandhi himself was not in a hurry to plunge into politics. During his examination and observation he found Indians were extremely poor, neglected, exploited, illiterate and downtrodden. The biographer gives the reason why Gandhi in a hurry did not plunge into politics. Until or unless a political leader could think, feel and live like one of them, there could not be a real understanding of the Indian conditions and situations. This was exactly what Gandhi did. The biographer genuinely states that Gandhi established Sabarmati Ashram in May 1915 and actively started getting involved in the community life of Sabarmati Ashram. Nanda describes beautifully the Ashram in detail, he writes:

The Ashram covered an area of 150 acres. It had cottages for Gandhi, the teachers and their family, adining room, a school, a library, a spinning and weaving sheds a dairy farm and cultivable plots on which vegetables and cotton were grown.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*. p.135)

Indeed, all inhabitant of the Sabarmati Ashram had to do physical labour regularly and to practise fearlessness daily. Gandhi believed that people should earn their living by physical labour. Lethargy is unnecessarily harmful, but human body necessarily needs physical exercise. Nanda states that Gandhi imposed spiritually a few rules of personal conduct in Sabarmati Ashram. Nanda asserts that Gandhi emphasized on non-violence as a rule of conduct more elaborately in Sabarmati Ashram. Non-violence constitutes the unity of hearts. It is a spiritual virtue that relates closely to synthesizing and unifying. Nanda observes:

He did not regard non-violence simply as avoidance of physical injury to animate beings. He knew that guns and bombs and daggers probably take a smaller toll of human life than ill will, malice and hatred, which cramp and kill humanity inch by inch. The Gandhian non-violence aimed at liberating men and women from inner as well as outer violence.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.137)

The biographer evaluates and appreciates the spiritual value of non-violence and its necessity in human life. The biographer asserts that Gandhi believed spiritually that ill will, malice and hatred were more dangerous than guns and bombs for human life. Violence is not only harming, hurting and killing anybody but also it is anything discordant which disrupts the unity of human life. It includes largely evil thoughts, falsehood, hatred, impatience and greed. His Gandhi's non-violence is totally non-appearance of all these. It is heartily a spiritual force that stands for the supreme and selfless love for all living beings. His Gandhi believed that such love holds spiritually the entire world together. A good biographer becomes collectively a political historian, philosopher and psychologist in one. As a biographer of Gandhi, Nanda is more a political historian than Krishna Kripalani and J. B. Kripalani as he gives more political and historical account of Gandhi's period in relation to India's political freedom movement than other biographers. In the same way Nanda's 'Indian Nationalism' focuses on several sources of political consciousness of Indian masses more elaborately from 19th century to the 20th century, such as racial discrimination, religious awakening, western education, economic exploitation and agrarian problem. Those were the several sources that led powerfully India's political freedom movement and were functioning internally from a long time till the commencement of Gandhi's political leadership in India. Nanda states that Indian political life helps in understanding the real conditions and positions of Indian politics in 1915 and the nature of Gandhi's spiritual impact on it. Nanda views:

Early in 1915, however, when Gandhi landed at Bombay Indian political life was at a low ebb. The Government had assumed vast powers under the defence of India Rules. The Congress was dominated by the moderate leaders of Maharashtra and of the extremist group in the Congress, recently released from prison was lying low, Lala Lajpat Rai, the fiery Orator from the Punjab was in exile; Aurobindo Ghose had retired from politics to Pondicherry.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.. p. 149)

Indeed, there was to be lull in Indian politics. Nanda focuses on various concerned sources of the political consciousness of the Indian masses, it was a pact between the National Congress and the muslim league that aroused the political consciousness of the Hindus and the muslims in 1916 at Lucknow. In this regard Indian literature and the newspapers aroused the political consciousness of the Indian masses. These literary means of consciousness served effectively as the best means of propaganda. Nanda aptly remarks , "The Indian language papers particularly B.G. Tilak's Kesari in Maharashtra and Aurobindo Ghose's Bande Matram in Bengal stirred popular feeling".[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*.p.147) Gandhiwas resident in South Africa and was truly detached observer of Indian politics. Bold and honest language papers and literature criticize its wrong policy and draw its attention towards the grievances and real needs of the people. As a spiritual political leader, Gandhi's Indian Opinion served honestly the same purpose in South Africa.

A biography has been a truthful representation of a character-hero's life and his achievements in relation to his contemporaries and the events of his time, Therefore Nanda focuses on Indian politics, which seemed so stagnant early in 1915. Indian politics was deeply awakened by the Home Rule Movement. Its founder was Mrs. Annie Besant, who was a Irish lady. She left Ireland and started to live in India as she was very much influenced by Indian culture and civilization. She wanted truly a self- government for India within the British Empire through law-abiding and constitutional means.

Apart from the autobiography of Gandhi, Nanda gives a reason why Annie Besant failed in securing Gandhi's support in political movement. It is because both had different views about Indian politics. Nanda asserts:

Mrs. Besant had sought but failed to secure Gandhi's support in launching the Home Rule League. Gandhi was opposed to a political movement. Which was likely to embrass the Government during the war, he felt that the time for constitutional reforms would come when the war was over.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography* p.150)

Indeed, the true aim of this movement was to stop Indian politics to go towards terrorism. Thus this movement awakened partly the political consciousness of the Indian masses. Nanda gives the reason why Gandhi did not join Home Rule movement led by Annie Besant. The biographer narrates:

This technique which was to determine the timing and mode of Gandhi's impact on Indian politics had been developed by him in South Africa. In these early years in India (1915-1918), even though he seemed to be ploughing his own lonely furrow, his personality and politics had been firmly cast in moulds peculiarly his own.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography* p.154)

Undoubtedly, his Gandhi was largely isolated from the main currents of Indian politics as he discovered Satyagraha for rectifying injustice and righting wrongs. The biographer narrates elaborately the Champaran Satyagrah . It was Lucknow session of the Indian National Congress when Gandhi came to know the Champaran troubles. Champaran was a district in Northen Bihar. When Gandhi was called there, it was under the rule of European Indigo planters.

The biographer reflects frankly the conditions of tenants under the 'Tinkathia System'. It was under the rule of European indigo planters. They cruelly exploited and terrorized the tenants. The tenants had to cultivate indigo in 3/20 part of the land. The tenants were at the great extent oppressed and fear-stricken. The British administration supported the planters. Nanda describes that Gandhi was invited to visit Champaran by Rajkumar Shukla, a tenant of Champaran. As a spiritual leader Gandhi went to Champaran and started satyagraha for the abolition of tinkathia system. From the very beginning, Satyagraha became significantly a spiritual force in India. It began powerfully in Champaran, Bihar. The Champaran Satyagraha became a historic event in which conflict was proved spiritually right and people for

the first time were sensitized to moral aspects of the conflict. Before Champaran people never thought that conflict could be taken to a morally higher level. Spiritual power made effectively the people bold to face political authority. In India Champaran became a testing ground of non-violence and had an enormous political significance. Its contribution to his spiritual popularity was almost great. That is why paying the highest tribute to Champaran mission, in his *Autobiography*, Gandhi himself says:

I was face to face with God, Ahimsa and Truth. When I come to examine my title to this realization. I find nothing but my love for the people. And this in turn is nothing but an expression of my unshakable faith in Ahimsa.[2] (Gandhi, M.K. *My Experiments with Truth* p. 344)

In fact, Gandhi did not feel such an experience for a second time in his life. Champaran was eminently a movement of the peasants against indigo planters. In it both Hindus and muslims participated courageously. At the same time Gandhi presented his spiritual capacity to form organization. This study evaluates the significance of movement and organization that were excellently combined to give satyagraha a spiritual value. Nanda aptly remarkes, "Primary schools were opened in villages in mud huts which were rigged up or in building offered by local philanthropists". (p.162) Afterwards Gandhi was recognized as a 'Mahatma' due to his spiritual, humanitarian and herculean effects. Nanda introduces Ahmedabad Satyagraha in brief. The Ahmedabad Textile mill workers' strike followed Champaran. Almost at the same time the Kheda Satyagraha began. Textile strike was a conflict with the Indian mill owners. It was most importantly a Satyagraha for economic justice. The biographer mentions that a dispute between the textile mill-owners and the labourers at Ahmedabad arose in 1918 about the grant of bonus and dearness allowance. The labourers wanted correctly 50% increase in dearness allowance due to steep rise in prices. As a spiritual political leader Gandhi studied the case judiciously. He thought justly that 35% increase would be reasonable. Nanda adds, "The arbitrator's award went in the workers favour and the thirty five percent bonus was ultimately won".[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography* p.165)

Having won Ahmedabad Satyagraha, Gandhi organized skillfully the Ahmedabad Textile Labour Association two years later. It had its own libraries, reading rooms, schools, hospitals, recreation centres, bank and newspaper and bore an impress of Gandhian non-violence. This association had a literary value in view of didactic purposes and principles. Nanda presents an account of Kheda Satyagraha briefly. Kheda was a district in Gujarat. In 1918, there was a crop failure due to famine. Peasants were fully unable to pay the land revenue. As a spiritual leader Gandhi advised the peasants to withhold payment of revenue. Satyagrahis took a spiritual pledge not to pay the same and resolved firmly to be ready to face consequences. The biographer, Nanda states: "This was the first real agrarian Satyagraha which Gandhi organized in India. The basic problem was to rid the peasantry of fear: the fear of officials, the fear of forfeiture of land and property. Gandhi and Vallabhbhai Patel toured the villages of Kheda to train the people in the hard school of Satyagraha."[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*. p.166)

The biographer mentions the name of Vallabhbhai Patel who visited Kheda along with Gandhi in order to teach the people spiritually the theory and practice of Satyagraha. The struggle went on for about four months till July 1918. It tested challengingly the people's patience. The government advised that if the well to do peasants paid up, the poor ones would be granted suspension. In this sense the Kheda Satyagraha was thus greatly successful. However as a spiritual political leader Gandhi educated the masses politically. The peasants became aware of their rights and learnt to suffer for them under the political leadership of Gandhi. The study evaluates the three movements that were closely associated with localized movements. Through these movements Gandhi's Satyagraha gained spiritually the validity and legality as a political weapon. Nanda narrates that the British government imposed forcefully the Rowlatt Act in the country. It shocked extremely the entire country. This Act suspended all civil liberties and all legal process in India. Gandhi's literary books, *Hind Swaraj* and *Sarvodaya* had been banned as seditious by the British government. In this situation Gandhi endeavored intelligently to conduct the movement without involving the Congress. It was the first nationwide political struggle in which crores of people participated and showed courage. Nanda adds:

On April 13th the day of the Baisakhi festival, a meeting was held in Jallianwala Bagh , which became the scene of a holocaust. Dyer decided to break up the meeting. The entrance was too narrow to admit the armoured cars, but he marched into the garden with his troops, who fired 1650 rounds in ten minutes. The holiday crowd of unarmed men, women and children unable to escape from the walled compound were caught " like rats in a trap." The Punjab government estimated the number of killed at 379.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*. p-176)

Undoubtedly, Jallianwala Bagh massacre shocked very tragically the country. It was followed by many more atrocities that turned saintly Gandhi wholly against the British Empire. The biographer describes the position and condition of unarmed people. Nanda narrates them like rats in a trap in Jallianwala Bagh. Nanda presents Gandhi as a spiritual political leader of both the nationalist and the Khilafat struggles. Gandhi toured largely the whole country with Ali brothers. The biographer mentions the names of Shaukat Ali, Abul Kalam Azad and Hakim Azamal Khan who supported Gandhi in order to bring Hindus and Muslims together in the hope of heart felt communal unity against the British Empire.It can be said that even very earlier, no political leader of India could unite so largely Hindus and Muslims together to a great extent as Gandhi could. In *Mohandas*, Rajmohan Gandhi, Gandhi's biographer righty supports Nanda's statement regarding Hindus and Muslims unity. Rajmohan Gandhi observes:

The simultaneous resentment of Hindu and Muslim India was a rare phenomenon. For over six decades, the raj had worked painstakingly and successfully to prevent to Hindu - Muslim front. The last time something similar had happened was in 1857, when Hindus and Muslims of the empire's Bengal army had mutinied.[4] (Gandhi, Rajmohan . *Mohandas* p.239)

Of course, Rajmohan Gandhi clearly supports Nanda in emphasizing that Gandhi united Hindus and Muslims to a great extent in the Khilafat movement. Nanda's Gandhi believed that a moral transformation of the Indian people could change the British government into the freedom of India within a year. The biographer selects the several reasons of Gandhi's spiritual values. Of course, attainment of Swaraj means people should purify themselves, perform their duties, cooperate with their fellowmen and build a peaceful society, where freedom, equality and dignity of all are essentially ensured. His Gandhi's ideal of the Swaraj is therefore very much relevant and applicable for the modern masses. Nanda's Gandhi seems to be a spiritual politician. Nanda rightly observes:

Gandhi was now the Mahatma, the great soul, with his voluntary poverty, simplicity, humility and saintliness, he seemed a Rishi (sage) of old who had stepped from the pages of an ancient epic to bring about the liberation of his country.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography* p.212)

Indeed, Gandhi was truly a spiritual politician who aroused significantly the inner chords of Indian masses. His appeal for spiritual courage and saintly sacrifice awakened a ready response as he himself was spiritually the epitome of these virtues. His austerity and self- sacrifice evoked emotional bond between him and the Indian people. The biographer gives beautifully the reason of becoming Gandhi a spiritual force. Since he had voluntary poverty, simplicity, humility and saintliness, Gandhi became a spiritual politician.

Nanda's 'Climax' describes that non-co-operation movement started fully with hartal, fasting and prayers. The biographer compares this movement to fire. He says that non-co-operation movement spread quickly like wild fire. The freedom movement had successfully become a mass movement. It was the year of the rise of Indian nationalism and Gandhi was on the climax. Like a true biographer, Nanda narrates the failure of Gandhi as well in non-co-operation movement. The anti-climax came suddenly in February 1922, when Gandhi came to know about the outbreak of violence at Chauri Chaura. On the 5th February, a mob including congressmen set fire to a police station at Chaura- Chauri. Gandhi was deeply shocked. He realized that people had not fully accepted non-violence. He persuaded the congress to suspend the agitation. The biographer selects the criticism of non-co-operation movement in relation to Gandhi's spiritual political leadership. Nanda observes, "Motilal Nehru and Lajpat Rai wrote from goal urging Gandhi not to halt the movement because of a stray incident".[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography*. p.232) Indeed, Gandhi made appropriately the white people to realize that Indian masses could not tolerate the atrocities and cruelties and the British government should have paid attention towards the problems of Indian masses. It has been proved the idea that non-co-operation movement as a complete failure is a blunder. As Nanda's Gandhi is truly a spiritual politician, the biographer selects the political reference of Gandhi who was chosen as a president of congress at the Belgaum. Nanda aptly remarks:

The Gandhi-Nehru-Das pact was ratified at the Belgaum Congress in December 1924. On the eve of the session over which he presided, Gandhi held informal talks with leaders of the two groups to prevent an open rift in the congress session.[1] (Nanda, B.R. *Mahatma Gandhi: A Biography* p.254)

Indeed, after the Belgaum Congress Session, Gandhi focused on the need for communal unity, swadeshi and removal of untouchability. Nanda's 'Communal Front' describes significantly a conflict and a compromise between the Hindus the Muslims. Communal problems was another frustration and disappointment for Gandhi. Hearts could never be brought together by breaking heads. Gandhi emphasized on mutual tolerance, compromise and private arbitration that were the various sources of Gandhi's non-violence to establish harmony and amity among human beings. As a spiritual politician Gandhi announced that he would not return to Sabarmati Ashram until the salt tax was fully repealed. He started enthusiastically his significant Dandi March on the 12th march 1930 from his Sabarmati ashram in Ahmedabad. He reached successfully Dandi on the 6th April and broke the salt law symbolically by picking up a pinch of salt. It was an effective signal for the nation. Salt law was broken at many places by illegal production of salt and its sale. The entire nation was actively stirred. Gandhi's civil disobedience movement awakened the political consciousness of the Indian masses. Due to civil disobedience movement, the attention of the British government turned to reform India.

Nanda's Book 4th, "The Last Phase" deals with the last phase of Gandhi's life in the political liberation of India. It records beautifully the period of Gandhi's life from 1939 to 1948. Nanda's 'Non-violence on Trial' focuses elaborately on Gandhi's non-violence and its impact on the Indian masses in the context of the Second World War. The biographer, Nanda describes in detail that Gandhi was a man of non-violence. In a non-violent struggle there are no victors or vanquished. His Gandhi's object of non-violent resistance is not to humiliate the opponent but to convert him .There is no anger, hatred and revenge in the heart of a man of non-violence. In *Non-Violence and Social Change*, Mathur and Sharma aptly remark:

Goodness of conduct is the basis of non-violence. We use our inner power on account of it, and this power affects the inner power of others and thereby changes their heart. Violence increases violence. It is an animal instinct, entirely unfit for a man. It is like ignoring a real rose in one's possession and carving for an artificial flower.[5] (Mathur, J.S. and Sharma, P.C. *Non- Violence and Social Change* p. 120-21)

Indeed, the correct development of economic, politics, social reforms and moral depends on the extension of Gandhi's non-violence into the relationship of human beings. Since the Indian National Congress was influenced by the inspiration of Gandhi's non-violence, it had denounced every act of aggression by Japan, Germany and Italy and condemned the suppression within these countries. In *My Non-Violence*, Gandhi himself writes:

Being a confirmed war resister I have never given myself training in the use of destructive weapons in spite of opportunities to take such training. It was perhaps thus that I escaped direct destruction of human life.**6** (Bandopadhaya, Sailesh Kumar. *My Non-Violence,* p.36-37)

Of course, Gandhi was essentially a man of non-violence and he believed firmly in the brotherhood of human beings. Therefore, In 1931, when he was truly a sole representative of the Congress went to England in order to attend the Second Round Table Conference. The star, Newspapers, presented Gandhi in loin-cloth along with dictators, Mussolini, Hitler, De Valera and stain. As a spiritual political leader Gandhi did not distinguish between the countries which inflicted the countries. There was no any division of nations into allies and adversaries. It was only natural that sympathies should be with the victims of aggression. Nanda's Gandhi employed effectively non-violence that had been one long struggle against the forces of violence. His Gandhi Discovered non- violence as an impactful means in solving individual and group problems. The biographer mentions the time when Gandhi's ideas regarding non-violence did not mature. It was the period between 1899 and 1914. During this period his Gandhi raised ambulance units and recruited the people for the British Indian Army. The biographer exposes the reason why his Gandhi remained non-violent. The fact was that he had not handled a gun. His Gandhi drew no distinction between those who wielded weapons of destruction and those who did Red Cross Work. Gandhi confessed his crime and asserted that both participated in war and advanced its causes. Both are equally guilty of the crime of war. Nanda narrates that Gandhi's non-violence was very much an active force rather them a passive one. He believed that non-violence was the greatest force in the whole world. Highlighting Gandhi's spiritual politics, in *My Gandhi*, Narayan Desai states:

In politics it too the form of non- violence demonstrations, non- cooperation and civil disobedience. In economics Gandhi introduced non-violence through the idea of decentralization and trusteeship.[7] (Desai, Narayan. *My Gandhi* p.95)

Indeed, His Gandhi reasserted his faith in the efficacy of non-violence. He had actually a peaceful message for India and India had the same message for bewildered or confused humanity. The biographer asserts that he extended non-violence's area not only up to social, political and economic level but also up to military aggression. His marriage to non-violence was such an absolute thing that he would rather commit suicide then be deflected from non-violence. He wished India to give a successful demonstration of non-violence and to set an example to the rest of the whole world. Gandhi's non-violence is spiritually a matter of faith and experience not of argument. It truly represented a way of life.

Lastly, we can conclude that Nanda's Gandhi believed in non-violence and he considered it as a force which can be wielded equally by all children, young men and women or grown up people provided they would have a living faith in God and equal love for all human beings. As a spiritual political leader his Gandhi emphasized his ideas on sex and non-violence more elaborately than other

biographers. For those who came under Nanda's Gandhi's spell, they changed their lives included men and women like C.R. Das, Motilal Nehru, Madan Mohan Malaviya, Rajendra Prasad, Vallabhbhai Patel, Rajagopalchari, Jwaharlal Nehru and Jayaprakash Narayan. They accepted Gandhi's spiritual and non-violent political technique as a practical alternative which Indian politics had so far effectively oscillated. We discover consciously Nanda's Gandhi entered politics in order to introduce religion into politics. His Gandhi is both a spiritual saint and politician who did not give up to be one when he entered politics. Nanda's Gandhi emphasized that religion meant spirituality, truth, non-violence and charity. Unlike other biographers of Gandhi Nanda's *Mahatma Gandhi: A Biography* does not have photographs of Gandhi and major occasions in his life. Nanda's literary style of writing has neutrality and objectivity of narration that is neither smooth nor tiring or boring. The biographer presents a fully alive portrayal of saintly politician Gandhi in a descriptive style in relation to political liberation of India. Nanda's *Mahatma Gandhi: A Biography* is much relevant even to current times in terms of his Gandhi's vision and mission on non-violence, morality and spirituality in order to bring global tranquility.

❒

References :

1. *Nanda, B.R. Mahatma Gandhi: A Biography. New Delhi: Oxford University Press, 1958.*
2. *Gandhi, M.K. My Experiments with Truth. Ahmedabad: Navajivan Publishing House, 1927.*
3. *Fischer, Louis. The Life of Mahatma Gandhi. New York: Collier Books , 1950.*
4. *Gandhi, Rajmohan . Mohandas. New Delhi: The Penguine Books, 2006.*
5. *Mathur, J.S. and Sharma, P.C. Non- Violence and Social Change. Ahmedabad: Navajivan Publishing House, 1998*
6. *Bandopadhaya, Sailesh Kumar. My Non-Violence. Ahmedabad: Navajivan Publishing House, 1950.*
7. *Desai, Narayan. My Gandhi. Ahmedabad: Navajivan Publishing House, 1999.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 167–178

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Comparative study of education of Four Prominent Caste among the Scheduled caste Women in Punjab and District Ferozepur A Historical Perspective (1947-1981)

Dr. Shefali Chauhan

Assistant Professor - History, Guru Nanak Dev University, Amritsar 143005
E.mail shefali0902@gmail.com Mb: 9878191914

Abstract

From the very beginnings on comparing boys education, girls education attracted late attention of the Missions, the Government and the reformers. Girls education made very little progress in Punjab due to many reasons like apathy of the people towards girls education owing to social and religious conservatism, custom of early marriages and domestic cares and duties. Coming to Scheduled caste women who were thrice alienated .Her education remained even lower as compared to upper caste women for several reasons like caste ,class ,patriarchy etc. The present paper is an attempt to analyse the education of 4 prominent castes among the scheduled caste women in Post Independence era. Comparative study is being taken to show the education of four prominent castes among the scheduled castes of Punjab in two decades after Independence. Being mostly illiterate they took to menial professions and remained neglected in the society despite of various government efforts and schemes undertaken

Key words: Women, Scheduled caste, Education.

Historical Background

Before the advent of colonial rule in Punjab in 1849, the education imparted in the schools was more religious than secular in character and there was not a single institution for higher learning. The education of girls was mostly carried on at homes, and is therefore described as domestic education.[1] People were not in much favour of the professional education and the importance of professions was also not regarded much. Education at that time mainly revolved around religion of different communities - Hindus, Muslims and Sikhs and religious education was imparted. Traditionally, education meant learning of sacred literature. Members of the priestly class imparted this education to boys and girls.[2] The three main agencies were

responsible for the spread of modern education in India. These were the Christian missionaries, the British government and the social reformers. The Christian missionaries did a lot of work in spreading modern education in India.[3] They were inspired mainly by a proselytizing spirit, to spread Christianity among Indian masses. The British government was however, the principal agent in disseminating modern education in India. The Government decided to establish central schools in the chief cities of Punjab and the first school was established in Amritsar in 1851.[4] The Department of education was established in 1856, as a result of Wood's Education Despatch of 1854. The policy and attitude of the Government towards girls education had been made clear as early as 1850[5] where Lord Dalhousie, in a letter of 11 April,1850 had expressed the view that no single change in the habits of the people was likely to lead to more important and beneficial changes than the introduction of education for their female children.[6]

The third powerful agency in spreading modern education in India was the Indian themselves. Raja Ram Mohan Roy was the pioneer of progressive modern education in India. Numerous organizations such as Brahmo Samaj in Bengal, Arya Samaj in Punjab, Ramkrishna Mission, Aligarh Movement, Chief Khalsa Diwan worked towards the establishment of educational institutions, both for men and women.[7] Further Missionary work among the lower castes greatly impressed some Hindu observers and fear of loosing large numbers to Christianity encouraged educated Hindus into increased activity. For instance Lala Lajpat Rai- the Arya and nationalist Punjabi leader, declared in the public speech in about 1912 :

"the possibility of losing the untouchables has shaken the intelligent section of the Hindu community to its very depths" and he went on to urge Hindus to forestall the movement towards Christianity by improving the condition of these classes.[8] Lajpat Rai gave expression to sentiments felt throughout the Arya Samaj, and it joined the battle for the lower castes, alleigiance not only with Christian missionaries but also with Sikh and other religious groups. The Arya Samajis developed new egalitarian forms of behaviour, but only in small groups and in major towns, like Lahore; and for them largely in bold, public denials of social inequalities, in essentially symbolic interdining with the lower castes, and in admitting them into the schools being built by the Arya Samaj.[9]

Arya Samaj further did a lot of work in uplifting the social-economic condition of the lower caste people particularly in Punjab. It helped in reducing the racial discrimination and broke the age old barriers of a caste ridden society .Reconversion and *Shuddhi*[10] by the Samaj was making them at a slightly higher social substratum but it also made systematic and sustained efforts to make untouchables coalesce in the society as an agreeable section.[11] These Samaji's not only helped to eradicate untouchability prevailing in the society rather helped the scheduled caste people to uplift their economic status by providing education, technical skills, water, employment etc. Schools and colleges were opened in different districts of Punjab.

There were many schools and colleges opened by different socio-religious

reformers in Ferozepur. They were Sikh Kanya Maha Vidyalaya founded by Bhai Takht Singh, D.A.V school, Missionary schools etc. Sikh Kanya Mahavidayalya established in 1904 by Bhai Takht Singh was opened realizing the need to provide education to the Sikh girls. Along with education religious education was also imparted. People from various far off places sent their daughters to get education. It was also one of the oldest boarding school of Punjab for girls.. Alongside various colleges were also opened realizing the need and importance of education of the border district.

From the very beginnings on comparing boys education, girls education attracted late attention of the Missions, the Government and the reformers. The position at the beginning was that 99 percent of the women population was illiterate.[12] Further there were only a few daughters of Rajput chiefs ,Jain widows who were taught by their monks in order to enable them to read scriptures.[13] Girls education made very little progress in Punjab due to many reasons like apathy of the people towards girls education owing to social and religious conservatism, custom of early marriages and domestic cares and duties.[14] The condition of women education before Independence was not only hopeless but depressing as the percentage of female students attending the institutions in Punjab was only 6.9 percent in 1941.[15] Girls education made very little progress in Punjab due to many reasons like apathy of the people towards girls education owing to social and religious conservatism, custom of early marriages and domestic cares and duties.[16] After Partition of Punjab the position of women in many parts of the country started improving. Education began to spread slowly improving the lot of women during the first quarter of the 20th century.[17]

However, the progress of education among the scheduled castes encountered great difficulties as earlier schools were located in temples and scheduled castes were not allowed to enter the temples due to the practice of untouchability. The *Hindu*[18] mentions "scheduled caste community in the Tinnevali district in Tamil Nadu, called Purana Vanmans, (now called Puthurai Vannan) that the very sight of them is polluted so that its unfortunate members are compelled to follow the nocturnal habits, leaving their dens, after dark and scuttering home at dawn like the badger". In some states , the society considered education of backward class children as a social offence.[19] During the British rule also no serious attempts were made in matter of welfare of backward classes. Only few rulers of Princely States like of Travancore, Cochin ,Mysore and Baroda are exceptions, who really worked for the upliftment of these lower caste people. The administrative arrangements were developed and in 1937 an Advisory Body was constituted, consisting of concerned department heads to advise the Government on all matters relating to upliftment of Backward communities.[20] For this fee concessions ,stipends, scholarships ,boarding grants, free supply of text books were provided .

With the Independence, India inherited the educational system which was prevalent during British period with certain modifications. The University Education Commission 1948-49 made certain recommendations regarding women education.[21]

In Punjab, The East Punjab Government after partition of the country created a special fund for the welfare of scheduled castes .A sum of Rs 8 lacs was provided. The fund was earmarked to be utilized for elementary needs of scheduled castes for education and housing etc. Various benefits were provided like remission of fees, refund of University examination fees, payment of stipends etc.[22] The report also mentions that the delay in disbursement of stipends also leads to low enrollment of the lower castes. The reasons given in the report are that in the initial stage they had to pay the fee and it took almost 6 months to an year to get the refund from Government.

These poor people at times could not afford to pay the fees during the initial stage.[23] Student lack awareness for applying for stipends, the heads of educational institutions do not care to submit stipend application according to the prescribed time. The treasury officer returns the stipend bills many a times with minor objections, resulting in delay of payments. The report also mention Chairman's speech at the time of presenting report to Governor where he mentions "A number of measures have been taken by the Government to wipe out the curse of illiteracy and poverty amongst these communities ,but sadly enough ,all the schemes had not been properly, correctly and faithfully implemented.[24] " The literacy percentage among the scheduled castes was low in comparison to general population. The evaluation committee report [25] shows the education of the most deprived castes namely Batwal,Bauria/ Bawaria,Balmiki/Bhangi and Dhanak. The most advanced were Sarera, Sansi and Meghs .The report mentions that the percentage of girls not attending school is higher especially among the Bauria, Bazigar, Bhangi, Dhanak and Mazhabi. The main reason for not attending schools were financial difficulties as well as lack of interest.[26] Talking about women of scheduled castes their comparative low percentage share in the population was due to poor literacy rate, poor access to health facilities, high infant mortality rate as well as their being neglected in the male dominated society. Talking about the literacy rate of the scheduled castes, Ad Dharmis have the highest literacy rate and occupy the top position among the scheduled castes, followed by Chamar, Balmiki and Mazhabi. Mazhabi's who are numerically the largest community having the lowest literacy rate . A large number of literates are either without any educational level or have education below primary level.[27] The Census reports of 1971 and 1981 of Punjab and district Ferozepur analyzed below shows the education of females of district Ferozepur.

Education of scheduled castes females of district Ferozepur in rural- urban areas in Census reports of 1971

Table -1

	Ad-Dharmi		Balmiki		Chamar		Mazhabi		Others		All Sc'S	
	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban
Illiterate	89.5	84.82	98.92	94.27	94.15	90.89	97.83	95.39	97.98	94.64	97.47	93.64
Primary	5.35	7.44	0.39	2.74	2.57	4.24	0.77	2.22	0.71	2.85	0.96	3.10
Matriculate	0	0.89	0.01	0.14	0.28	0.45	0.03	0.25	0.08	0.02	0.07	0.21
Graduate/Post Graduate	0.42	0	0	0.01	0.004	0.01	0	0	0	0.02	0.001	0.01
Literate w/o Educational level	4.71	6.84	0.66	2.82	2.97	4.38	1.36	2.12	1.21	22.9	1.48	3.01
Literate	10.49	15.17	1.07	5.72	5.84	9.10	2.16	4.60	2.01	5.35	2.52	6.35
Total Female Population	0.27	1.18	9.48	29.55	12.92	23.80	56.68	16.41	20.63	29.04	85.78	14.21

Source: Education for scheduled caste (caste-wise) SC –III- Part A p182-183, and Part B, p 196-197, Special tables on scheduled castes Census 1971 Punjab.

Source: Special tables on scheduled castes, 1971, Punjab, table SC-III Education for scheduled castes (caste-wise), Part –B(Rural) p 192-193,Part –A(Urban), p 178-179**.**

Note: All Children of 4 years or less have been treated as illiterates even if they are going to a school and may have picked up, reading and writing a few odd words.(PCA P-148,General Report 1971).

Note : In the table above clubbing is done in Non technical diploma not equal to degree and technical diploma not equal to degree in Matriculation or Higher secondary in order to form consistency in the above table and similarly University degree or Post graduate degree other than technical degree and technical degree or diploma equal to degree or Post graduate degree are clubbed to form Graduate and above in the above table

The scheduled caste women education in district Ferozepur in the Census reports of 1971 was found to be 2.52 in rural and 6.35 percent in urban areas. This was found quite lower in comparison to Punjab which had 7.36 in rural and 12.81 percent in the urban areas. Seeing literates without any educational level it was 1.48 percent in rural areas and 3.01 percent in the urban areas and vice versa. It was lower in comparison to Punjab which had 4.12 and 6.38 in rural and urban areas respectively. The primary education was found 0.96 percent in rural areas and 3.10 percent in urban areas whereas in Punjab it was 3.09 in rural areas and 5.64 percent in urban areas .Further the number of literate females getting matriculate was 0.07% in rural areas and in urban areas it was 0.21[28] In graduation and post-graduation degree there was 0.001 percent females in rural areas and 0.01 percent in the urban areas.[29] There were no females found in technical degree or diploma equal to degree or post graduate degree.[30]

In comparison to Punjab again it was found quite lower .If scheduled caste people were moving to get education it was only the males who were getting higher education or technical education. The Census report itself justify that females were provided education till primary level so that they were able to handle day today house chores. There were no female found in technical diploma. One thing which remained same in Punjab and district Ferozepur was that there was drastic drop out rate after getting primary education both in Punjab as well as district Ferozepur. Now looking at the two prominent castes of district Ferozepur that is Balmiki and Mazhabis. The Mazhabi females whose percentage of population is higher in rural areas in comparison to other castes . Females of this caste mainly worked as agricultural labourers in the field or worked in landlords house, taking care of the house chores or cattles etc.[31] Seeing their literacy rate it was found that the percentage of total literate in this caste was 2.16 percent in rural areas and 4.60 percent in the urban areas which is lowest if compared with the other castes as well as all scheduled castes population in the rural or urban areas of district Ferozepur.[32]

Coming to the literates without any educational level it was found to be 1.36 percent in rural and 2.12 percent in urban areas.[33]

Another noticeable point is that though the percentage of female population in rural area is higher but the percentage of population being literate without educational level is lower in rural areas as compared to urban areas. While seeing the level of education at primary level it was 0.77 percent and 2.22 percent in rural and urban areas respectively. Further the percentage of females who reached to matriculate level were 0.03 percent in rural and 0.25 percent in urban areas. This was quite lower in comparison to rest of the castes in district Ferozepur. Further females who reached till graduation or above courses, one cannot find any female who reached in acquiring that level of education.[34] On seeing the percentage of illiterates, it is highest in comparison to rest of the castes being 97.83 in rural and 95.39 percent in urban areas.[35] The low level of education and increased drop out rate of females after attaining primary education indicates that people did not believed in educating their daughters to that level where they could get a white collar job .The high enrolments of males in higher education indicates the gender bias.

Another caste whose population is maximum in district Ferozepur is that of Balmikis who lived more in urban areas as compared to other castes. It was found that their literacy rate was 1.07 percent in rural and 5.72 percent in urban areas. This indicates that people who shifted to urban areas in search of better opportunities felt the need to educate their daughters ,but that education again was only till primary level. The orthodox views and responsibility of the girl child to take care of her siblings as well as house chores led to her low level of education.[36] Looking at their primary education ,it was found 0.39 percent in the rural areas and 2.74 percent in the urban areas. Coming to matriculation it was found that the percentage decreased being 0.01 percent in the rural and 0.14 percent in the urban areas .In graduation and above courses there was no female found in rural areas whereas there was 0.01 percent female getting graduate in urban area or in other words there was only 1 female in urban area getting graduate and above.[37] It is very clear from Census reports that females took education till primary level as the level of education increased the number of females in it decreased drastically .Further one can see the percentage of illiterates was higher in this caste being 98.92 percent in rural areas and 94.27 percent in urban areas. This means females of Balmiki caste who got educated were very rare or those who worked out did not performed white collar jobs rather took jobs that did not required technical skills.

Education of scheduled castes females in rural-urban areas of district Ferozepur in Census reports of 1981

Table-2

Ferozepur 1981	Ad-Dharmi		Balmiki		Chamar		Mazhabi		Others		All Sc'S	
	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban	Rural	Urban
lliterate	72.84	66.46	97.21	89.97	91.55	87.08	94.58	88.73	96.83	92.41	95.31	89.79
Primary	14.22	14.02	0.93	4.08	4.05	5.57	1.89	4.91	1.01	3.65	1.71	4.44
Matriculate	0.86	6.7	0.06	0.61	0.43	1.52	0.15	1.15	0.1	0.72	0.15	0.95
Graduate/Post Graduate	0.43	1.82	0	0.01	0.03	0.23	0.006	0.14	0	0.01	0.006	0.08
Literate without any Educational level	11.63	10.97	1.79	5.32	3.91	5.59	3.36	5.05	2.05	3.18	2.81	4.71
Literate	27.15	33.53	2.78	10.02	8.44	12.91	5.41	11.26	3.16	7.58	4.68	10.2
Total Female Population	0.22	0.66	18.33	32.97	8.72	20.97	47.49	14.31	25.21	31.07	80.49	19.50

Source: Special tables for scheduled castes, Punjab ,Series 17,Census of India 1981,Educational level of scheduled castes Part –A (Urban) p-678-689,Part –B (Rural) p-750-753.

Note: Population below 4 is taken as illiterate population.

1. Formal and non formal mode of education are clubbed to form total literate population without any educational level in 1981 Census to give consistency to the tables.

2. Primary education and middle education are taken together as primary education.

3. Matriculation/secondary, High secondary/Intermediate/Pre University, Technical/ non technical diploma or certificate not equal to degree are clubbed together in matriculation.

4. Graduation degree other than technical degree and Post graduation degree other than technical degree as well as technical degree or diploma equal to degree or post graduation are clubbed to form single category of graduate and above.

Coming to district Ferozepur where the total literate females were 4.68 in rural and 10.2 in urban areas. On comparing this percentage with Census of 1971,it was found that there was an increase visible as it was just2.52 percent in rural and 6.35 percent in urban areas during 1971 Census. Further at primary level also there was an increase as it got 1.71 percent in rural and 4.44 percent in urban areas. In matriculation also there was increase visible. On seeing graduation and above it was found being 0.006 percent in rural and 0.08 percent in urban areas. It is very clear from the table above that enrolments were increasing but only till primary level. It was found that there was little increase in graduation level courses.

Another thing to be noticed was that in rural areas there were less courses offered whereas in urban areas one can find technical as well as non technical courses like engineering, agriculture, dairying, veterinary ,teaching etc which were not available in rural areas.[38] It is interesting to note that there was only 1 female among the scheduled castes females who took education above graduation and that too was a Chamar Female.[39] Further one do not find any female in engineering and technology, medicine, agriculture and dairying or veterinary.[40] There were only 6 females in teaching profession.[41] Though Males were seen in engineering being 2, in medicine 4, and in agriculture and dairying 1.There were 13 males found in teaching profession.[42]

This indicates that though there was improvement in education that is enrolments were increasing but still enrolment were found less that is there was an increase visible if compared with 1971 census but that was not much. The trend of increased drop out rate after attaining primary education was still persisting. In comparison to Punjab Ferozepur district lagged quite behind as it was a border district with lots of handicaps like there was no private investment. Lack of government college in the town. Distance of the government college in the district was about 30-50 kms from the main town. Labour was cheap in comparison to other districts, as mentioned in 1951 census report. The evaluation report of welfare of scheduled caste 1969 mentions the lack of interest of private institution in providing

stipends or scholarship to the students. Often awareness was not found among the masses or sometime the prescribed time to apply for stipends gets over accruing to lapse of the stipends.

As one finds maximum population consist of only two castes that is Balmikis and Mazhabis in Ferozepur district .On seeing the primary education of the Mazhabi females it is 1.89 percent in rural and 4.91 percent in urban areas, that means out of the total female population which is 48476 in rural areas only 918 females got primary education and in urban areas where the total population is 3541 only 174 females got the primary education. On seeing the total number of matriculates it was 0.15 percent in rural and 1.15 percent in urban areas .If compared with 1971 Census there was an increase .Now looking at the females getting education graduate and above one finds only 0.006 percent females in rural and 0.14 percent of females in urban areas and if compared to Balmiki females it was better as one can see no female getting education in graduate and above and only 1 female that too in urban areas of Balmiki caste getting graduate or above.

Coming to Balmiki females percentage of population it was on the second highest rank or in other words in district Ferozepur one finds only two castes having highest population that is Balmikis and Mazhabis. The total number of literates in this caste was 2.78 percent in rural areas and 10.02 percent in urban areas. One also finds that people in this caste mainly lived in urban areas so their education level was also better but compared to Mazhabi another caste whose population is higher in number , Balmikis percentage of total literates is still lower. Further the literates without any educational level were 1.79 percent in rural areas and 5.32 percent in urban areas, and that of the Mazhabis it was 3.36 percent in rural and 5.05 percent in urban areas. Coming to primary education their percentage was 0.93 percent in rural areas and 4.08 percent in urban areas and if compared to Mazhabis population getting primary education it is still lower. In matriculation their percentage was 0.06 percent in rural areas and 0.61 percent in urban areas which is still lower in comparison to Mazhabi females. At graduation and above level there was no female in rural areas and only 1 female in urban areas.

So females of this caste were on the lowest rung of ladder in comparison to other castes Orthodox views, customs and traditions, early marriages and responsibility of taking care of house chores and younger siblings hampered the education of females in this caste. Going by Census the work occupation of females of this caste was of scavenging or working in the houses of the rich or the landlords or worked as sweepers in Government offices and daughters remained at homes to look after the siblings or house chores so people of this caste rarely felt the need to educate their daughters.

Conclusion

In the end one can conclude that education of scheduled caste females lagged behind in comparison to Punjab. The orthodox views, customs and traditions, early marriages resulted into increase drop out of females after attaining primary education.

Since maximum females worked as field labourers and in household sector, the burden of house chores and taking care of younger siblings also led to increase drop out rate after attaining primary education. One can find increase in enrolments if comparison is made between Census of 1971 and 1981 but the trend of drop out rate was visible after attaining primary education. The education was provided only till that level where they could perform their routine works at homes. Further there was gender bias also visible as male education was found higher in comparison to female education. As the reports above also shows that there were no females found in technical education like in engineering, doctors, lawyers. The less number of females in graduation and above also indicates that girls were not provided education from the point of view of getting job, rather it was only till primary level.

Though there were Government policies running simultaneously for their housing, business, reservation in jobs and educational institutes, but these people were not aware as the interviews conducted in basti's of district Ferozepur show their incapability to fulfil formalities of the government documents. The evaluation report on welfare of scheduled caste in 1969 also mentions their incapability to eradicate complete poverty and increase enrolments in educational institutes. There was no government college found in the main city of Ferozepur which also attributes to low education as the fee structure of private colleges was beyond the reach of these poor people. All the government colleges opened in the district were at a distance of 30-50 kms from the main city .People lacked initiative to send their children so far and in case ,especially for girls parents hesitated to send their daughters alone to study so far. Another reason for the low social economic status of females of district Ferozepur was that it was a border district and after partition it lacked development. Due to nearness to the Pakistan border private sector lacked interest in investing money on big projects in this district. Half of the area is also in control of cantonment so people cannot get their land registered .This can be another reason that the district lacked social and economic development. So this section of the society also remained poor as well as neglected.

❐

References:

1. *The Tribune, Vol LXXIII, No 283, Editorial, Chandigarh, October 17, 1953.*
2. *Geraldine Forbes, The New Cambridge History, 1998, p.35, also see Parneet Hayer, Unpublished Thesis, Punjabi University Patiala.*
3. *Amrit Walia, Development of Education, 2005.*
4. *Jasbir Walia, Women and Social Reforms in the Districts of Hoshiarpur and Jalandhar since Annexation(1849-1980), Unpublished thesis submitted to Department of History, Panjab University, Chandigarh, 1993, p.29.*
5. *Ibid.*
6. *Iqbal Nath, Social Legislation in the Punjab Since 1849 Unpublished thesis, Department of Political Science, Panjab University, Chandigarh, p.13.*
7. *A.R Desai, Social Background of India, 1984, pp.139-142.*
8. *Satish Saberwal, Mobile Men, 1990, p.9*
9. *Ibid p.9.*

10. 'Shuddhi is a Sanskrit word which means purification.In religious terminology it is now applied to -1. Conversion to Hinduism of persons belonging to foreign religions.2.re-conversion of those who have recently or at a remote period adopted one of the foreign religions, and 3. Reclamation i.e. raising the status of the so-called depressed classes.'Census of India, 1911, XIV, Panjab, pt.I, Report, p.148.
11.S.K.Gupta, The Scheduled castes, 1985, p.132.
12.Paul D.Chowdhary, A Handbook of Social Welfare, Atma Ram and Sons, Delhi, 1981, p. 8.
13.Jasbir Walia, Women and Social Reforms, 1993, p. 28.
14. The Tribune, All files of the year 1920, mentioned in Amrit Walia, Development of Education 1993, p. 37.
15.Punjab, Annual Education Progress Report, 1946-47, Lahore:Clive and Military Gazetter Press, 1947, p.3.
16.The Tribune, All files of the year 1920, mentioned in Amrit Walia, Development of Education 1993, p.37.
17.Shashi Bala, Female education and Transformation in the Status of Women in Punjab, Unpublished Thesis, Punjabi University, Patiala, 1998, p.36.
18.The Hindu, December 24, 1932
19.See chapter 4, where there was discrimination followed by students as well as teachers in the school by separating water pot and using separate stick to beat scheduled caste children.
20.Report of the committee on untouchability, economic and Educational Development of the scheduled castes and connected documents1969, Department of Social welfare, Government of India, p.179.
21.Pushpa Devi, Development of Women Education in Punjab in the 20th Century:A Case study of Ropar District. (Unpublished Thesis), Department of History, Panjab University, Chandigarh, 2015, p.26.
22.Evaluation Committee on welfare of scheduled castes, backward class and denotified tribes (15 August 1947-August 1966), Secretary to Government, Punjab Welfare Department, p.71.
23.Ibid, p.71.
24.Evaluation committee on welfare, p. 2.
25. Table 3.10, Distribution of children of the age group 6-10 by education, p16-17.Evaluation Committee, p16.
26.Ibid, p.17.
27.Evaluation study of the Post Matric Scholarships Scheme & its impact on Scheduled Caste Students report, Planning Commission, Government of India, New Delhi.
28.Special tables on scheduled castes, 1971, Punjab, table SC-III Education for scheduled castes (caste-wise), Part –B(Rural) p 192-193, Part –A(Urban), pp. 178-179
29.Ibid.
30.Education for scheduled caste (caste-wise) SC –III- Part A pp.182-183, and Part B, pp. 196-197, Special tables on scheduled castes Census 1971 Punjab.
31.Special tables on scheduled caste mentioning occupation indicates that maximum females in rural areas worked as agricultural labourer in the fields of the big landlord.
32. Census reports 1971, pp.182-183, 196-197.
33.Ibid.
34.Ibid.
35.Ibid.
36.Amrit Walia, Development of Education 1993, p.37.
37.Ibid.
38.Special tables for scheduled castes, Punjab, Series 17, Census of India 1981, Educational level of scheduled castes Part –A (Urban) pp.678-689, Part –B (Rural) pp.750-753
39.Ibid.
40.Ibid.
41.Ibid.
42.Ibid.
43.Special tables for scheduled castes, Punjab, Series 17, Census of India 1981, Educational level of scheduled castes Part –A (Urban) pp.678-689, Part –B (Rural) pp.750-753

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 179–185

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

The Panoptic Study of Hakki Pikki Tribes :
Practice of Native Technical Knowledge in Chikkaballapur District.

G. Sai Kiran
Research Scholar. M.phil in Subaltern Studies.
Centre for Study of Social Exclusion and Inclusive Policy.Banaras Hindu University,
Varanasi-221005 (U.P.)
Email – kiransaigtc@gmail.com Mob – 7355925056.

Abstract

The Native Technical Knowledge or Indigenous Technical Knowledge is a great legacy of tribes which is maintained by passing the acquired knowledge from one generation to another by tribes. Since from centuries they are living in forests they acquired the distinctive instincts that make them stand apart from the normal modern human being . One such tribe is Hakki Pikki tribe which predominantly lives in Karnataka and other southern states, semi-nomadic by nature, living in the forest made them to adapt to the wildlife where they live in and nurtured them to face harsh climatic conditions. Since they live by hunting and gathering the indigenous knowledge they posses becomes a key factor to decide the destiny of their survival. The Hakki Pikki tribes are well known for their proficiency with herbal remedies; they used to gather plants from the forest and make oils and powders which they used for massaging. They treat fractures and dislocation of bones in most primitive and unique way with the help of herbs and oils available in the forest. They detect the water underground With the aid of coconut and Pongamia Pinnata.

Key-Words: Native Technical Knowledge, Distinctive Instincts, Hakki Pikki, Pongamia Pinnata.

For decades, tribes have lived in forests, on their ancestral lands, and in their environment. There is a spatial relationship between these tribal groups and natural resources. They play a crucial role in ensuring the sustainability and survival of forest ecosystems, including species, and this is based on a symbiotic interaction between tribal people and the forest. In the name of development, many nations have made attempts to coerce indigenous communities into giving up their customary ways of life to "save the forests" and incorporate them into "modern society." Lack

of community involvement, ignorance of and insensitivity to the local indigenous people and ecosphere have all contributed to the failure of numerous development and conservation-related projects (C Madegowda: 2022).[1]

The Hakki Pikki are aware of the habitats, feeding patterns, and reproductive seasons of various animals. It has been passed down from one generation to the next as indigenous knowledge. The Hakki Pikki can recognize intruders by their pug markings, sounds, and smells. They have great eyesight and the ability to detect scents carried by the wind.

Additionally, they can detect danger cues in alarms and bird calls (C Madegowda:2022).[2]

Whatever plant and fauna research is done, it is based on the Hakki Pikkis' native wisdom. This involves specialized studies on the habitat, feeding, and reproduction patterns of many animal species. Researchers receive this indigenous knowledge from the tribes, and they use it as the basis for their scientific investigations. For their study projects, researchers rely on local tribal guides and assistants, and the findings of their work aid in the management of forests. Researchers studying flora rely on local knowledge to comprehend each plant's habitat, availability, flowering cycle, and fruiting. Researchers receive these inputs from tribal members, which benefits forest management and conservation. The Hakki Pikki tribes and the forest have a very deep symbiotic relationship; they have significant ties to the forest in terms of culture, society, politics, and economics, and they have long practiced conservation. (C Madegowda:2022).

The traditional wisdom of the Hakki Pikki has a rich history and has been practiced for ages. The forest and this traditional wisdom are closely related. All facets of tribal life, including birth, marriage, customary rites, customary celebrations, and tribal songs, are connected to the forest. Hakki Pikki are born into and pass away in a relationship with their forest. The Hakki Pikki are quite informed about how to use natural resources and the skills that go along with them, as well as about various types of animals, medical plants, and human health. This relationship has been documented by several academics. (C Madegowda:2022).

Tribal's working for the forest department provide details about the habitat of forest animals, flora, and water sources for animals. They are familiar with every facet of the forest, which aids the other members of the forest department personnel in making management choices that will promote conservation.

Indigenous people's familiarity with animals is also highly helpful for conducting animal censuses because they are familiar with the ecosystem, water sources, trails, distinct woodland dwelling areas, pug marks, and other things.

It takes years of practice, decades of experience, and a heritage that is passed down from one generation to the next in the form of skills and practical application for instincts to be learned.

Since this tribe has always had a strong connection to nature, through time they have acquired exceptional instincts, including the ability to hunt with great care and precision. One incident I'd like to mention is that the study area is fortunately blessed with good forest areas and wild animals, including bears, leopards, and poisonous snakes. Once the leopard was in charge of the area by killing and stealing livestock, the Karnataka State Forest Department started a programme of compensation. Livestock like goats, sheep, cows, buffaloes, and other animals killed by the leopard will be compensated in the form of money. After several unsuccessful efforts to capture leopards using big cages (locally known as bones), department officials' vigilance drew them closer to this tribe, so they asked for assistance. In the very next attempt, the leopard was captured and sent back to the adjacent Bandipur National Park after the elders of the tribe gave it a few spots where it might be readily trapped.

The regrettable fact that in the past it was British people who wanted to grow coffee and tea plantations, thus they drove tribes out of woods, and now governments are doing the same, shows how far behind modern knowledge is compared to traditional forest wisdom. They had a lively knowledge that is considerably superior to modern

understanding; considering how well, they were able to recall lengthy epics, one can only imagine how brilliant and keen their memory abilities were. (Gangadhar Daivadnya:2015).[3]

The Hakki Pikki tribes are well known for their proficiency with herbal remedies; they used to gather plants from the neighbouring forest and make oils and powders. They sell massage oils to other countries, and many tribe members have been there and given massages to the locals. They are well known across the globe for their massage oils. The tribe is distinctive in that some members don't even have bank accounts and some have even been abroad. This tribe (consisting of a relatively small number of individuals) travels abroad every year to market their herbal oils. They are subject to legal repercussions since they are not knowledgeable of legal etiquette and process.

With the aid of coconut and Pongamia Pinnata, they possess a highly special capacity to recognize the subsurface water (a tree locally known as Kanuka). People in this area still choose archaic rudimentary ways over contemporary scientific ones. The old age strategy has a decent success rate and is doable, but if it fails, the member's ego and reputation will be damaged, so they proceed with extreme caution. Due to their years of experience, the tribe's elders are chosen to identify underground water. They carry a coconut on their palms as they walk, looking for where it shakes or breaks to determine the location of the water's availability. Once the location has been determined, the point is circled, and machine digging can begin then. Since the average depth of available water is between 1100 and 1200 feet, it is quite costly and needs at least 5 to 6 lakhs to begin the process. We can also understand the level of confidence that people have in these tribal guys.

Their eyes are locally known as RAVI KANNU, which means their eyes can identify extremely minute objects and things that cannot be seen by regular men, and they have a very special talent for the careful observation that is beneficial for hunting. This skill is heavily utilized when gathering things like mushrooms, which are typically found in dense forests and uninhabited areas of human settlement. Because of the natural camouflage that all species go through, only skilled and meticulous observers can identify mushrooms with accuracy, which means they already knew where to find mushrooms and how they grow, for example, mushrooms are always grown in three groups. They hunt tiny, mobile animals like squirrels, rats, and rabbits using their observational ability.

Because they believe that the forest is a self-sufficient source of cures for all diseases and illnesses, these tribal members never receive medical treatment from any hospital or healthcare facility. Unless or until the situation is extremely complicated, they do not take allopathic medicines, or what they refer to as English medicines. The best illustration of their self-reliance in terms of medical knowledge is something to be admired because one day I saw a young man come to this tribe in a crowd, terrified that his leg was broken or dislocated. He was placed down close to the hut of a particular tribal medicine expert, and that expert immediately asked for two Country Chicken Eggs, Turmeric Powder, Neem Leaf, and Native Castrol oil and mixed all of them to prepare the medicine. They make jokes with the patient so that he or she may be in a relaxed and relieved state since the Massaging and procedure during fractures and dislocations is unpleasant and complex. White rats are those rats that are present in crop fields; after hunting, they used to burn this with rock salt and consume it as a treatment or as food. They also used to provide this to patients for Diarrhoea or other stomach illnesses.

Table 1:

List of less known wild edible plant parts used by the Hakki Pikki people of Chikkaballapur district. (Prashanth Kumar GM, Shiddamallayya N:2015)[4]

Sl. No.	Botanical Name	Family Name	Local Name (Kannada)	Edible Parts	Time of availability	Mode of Consumption	Medicinal uses
1	Acacia ferruginea DC.	Mimosaceae	Kiribanni	Gum	April	Gum edible	Gum has aphrodisiac aphrodisiac properties,used in faintingand fever
2	Agave americana L.	Agavaceae	Kattale	Flowers	All seasons	Flowers are cocked as Vegetable	Used in treatment of ascites, venereal and sores dysentery
3	Bambusa arundinacea (Rerz.)	Poaceae Roxb.	Bidiru kalale	Young tender Shoot	Jan.-March	Young tender shoots are cocked as vegetable	The young shoots are used in wasting diseases

4	Bauhinia variegate L.	Caesalpiniac eous	Kanchavala	Flowers	Nov.-Feb.	Flower buds are cockedas vegetable	The flowers and dried buds of the plants are anthelmintic and used in diarrhea, Dysentery
5	Bombax ceiba L.	Bombacacea e	Kempuburu ga	Flowers	Feb.	Flower buds are cockedas vegetable	Flowers are used in preparing tonic to improve body vigor
6	Boswellia serrata Roxb.Ex. Colebr.	Burseracea e	Maddimara	Gum	Jan.-March	Gum edible	Gum is used in cutaneous and nervous diseases
7	Butea monosperm a (Lam) Taub.	Pailionaceae	Muttuga	Flowers	Sept.-Nov.	Flowers are used toprepare local drinks	Boiled flowers are tied over to abdomen in pain
8	Calamus thwaitesii var. canaranus Becc.	Arecaceae	Handibetta	Young —stem	All seasons	The young stem are cocked as vegetable	Young buds are used inburning sensation
9	Caralluma umbellata Haw.	Asclepiadac eae	Maganakod u	Tender -stem	March- Aug.	The tender stems are used as vegetable and also eaten as raw	Used in constipation
10	Caryota ure ns L.	Arecaceae	Baganimara	Stem pith	All seasons	The sap of this tree is fermented to make sendhia refreshing drink	The fleshy drawn sap fromthe spathe is used as a Laxative
11	Cassia auriculata L.	Caesalpinaceae eae	Avarike	Flowers	All seasons	Young flower buds are powered and power instead of common tea powder	Flowers are used to check excessive menstrual flow
12	Celastrus paniculata Willd.	Celastraceae	Gangunge	Flowers	April-June	The flowers are cocked as vegetable	Used as nerve stimulant and brain tonic
13	Cinnamum malabatrum (Burman.f.) Blume	Lauraceae	Kadu dalchinni	Stem -bark	Jan.-June	The bark is used as a spice for flavoring food	Bark used in treating rheumatis m
14	Clerodendr -um viscosum Vent. Jard. Malm	Verbinaceae	Parake	Young -shoots	All seasons	Young shoots are cocked as vegetable	Used for skin Diseases and scorpion stings
15	Crotalaria juncea L.	Papilionaceae	Senabina soppu	Flowers	Nov.-Mar.	Flowers are cocked as Vegetable	Used in constipation, blood Disorder
16	Cucurbita maxima Duchesne.	Cucurbitaceae	Kumabala	Tender -shoot	Feb.	Tender shoots arecocked as vegetable	Used in burns and inflammations
17	Cymbopog -on nardus (L.) Rendle	Poaceae	Majjige hullu	Stem	July-Sept.	The centre of the stem are cocked in	Used to treat bronchitis,the aromatic oil

18	Dendrocala -mus strictus (Roxb.)Nees.	Poaceae	Bidiru	Young shoots	Jan.-April	Young shoots are used as vegetableand preparation of pickles	Used in indigestion
19	Ensete superbum (Roxb.) Cheesman	Musaceae	Kallubale	Stem pith	All seasons	The stem pith are cocked as vegetable,	Used in treatment of kidney Stones
20	Ipomoea aquatica Forssk.	Convolulace -ae	Ballesoppu	Young shoots	Nov.-Jan	Young shoots are used as vegetable blood purifier	Juice of the plant used aslaxative and it acts as a
21	Mentha arvensis L.	Lamiaceae	Bettada pudina	Tender -stem	All seasons	The tender stem, leaves are used to preparation of herbal tea	Used in congestive disorder, headache and toothache
22	Moringa oleifera Lam.	Moringaceae	Nugge	Flowers	All seasons	Flowers are cocked as Vegetable	Flowers are used as diuretic and stimulant Used inintestinal disorder
23	Moringa oleifera Lam.	Moringaceae	Nugge	Flowers	All seasons	Flowers are cocked as Vegetable	Flowers are used as diuretic and stimulant Used in intestinal disorder

The farmers in this research region are highly worried about Russell vipers because they are quite active, spend a lot of time in agricultural plantings, are active in May, and are active in late fall. They are also engaged in certain tantric activities, but not those that involve sacrifices. The research predicted that 1.2 million snakebite fatalities occurred in India between 2000 and 2019, the majority of which happened at home in rural regions. To get to the point, these tribal members asked farmers to spread or sprinkle a powdery, hand-made substance throughout the agricultural field. Surprisingly, snakes were not seen there, which increased trust between the tribes and the local populace and fueled the development of knowledge and practices. The HPT also holds that vipers give birth to their snakelets more quickly and in greater quantities than other snake species. Because of this, it is quite difficult to manage this species. On occasion, vipers may lick mud, and some people think this is a means for them to get rid of the heat and harmful compounds in their bodies.

Hakki Pikkis have a unique skill of massaging because Hakki Pikki execute a distinctive style of massage with the aid of their legs, notably using their heels and foot, locals in this area frequently go for massages in the forest region. The locals have the opinion that Hakki Pikkis massages effectively treat all types of pain, regardless of how old it may be.

They make their primitive weaponry and trapping nets, which takes a lot of skill that the Hakkki Pikkis have developed over time. When it comes to the fishing

traps they build, they are very skilled and require painstaking expertise and experience when making rabbit nets.

The indigenous Techincal knowledge is a result of legacy that ancestors of hakki pikki tribes have maintained over a decades and centuries and this very knowledge and skills distinguishes this tribes from other primitive as well as modern societies. The skills that these tribal communities have acquired is a result of their proximity with the forests and the environment where they live in and the relations they share with mother nature bestowed them with the never ending skills and knowledge.

❐

References:

1. *MADEGOWDA, C. "TRADITIONAL KNOWLEDGE AND CONSERVATION." Economic and Political Weekly, vol. 44, no. 21, 2009, pp. 65–69, JSTOR, http://www.jstor.org/stable/40279037. Accessed 16 Nov. 2022.*
2. *Madegowda, C. "Traditional Knowledge and Conservation." Economic and Political Weekly, vol. 44, no. 21, 2009, pp. 65–69, JSTOR, http://www.jstor.org/stable/40279037. Accessed 16 Nov. 2022.*
3. *Daivadnya, Gangadhar , Associate Professor, Kannada University Hampi (The Hindu: February 17th 2015 – Tribals have Valuable Traditional Knowledge).*
4. *Prashanth, G.M & Shiddamallayya, N. (2015), Ethanobotanical Study of Less Known Wild Edible Plants of Hakki Pikki Tribes of Angadihalli, Hassan District, Karnataka, Journal of Medicinal Plants Studies, 3. 80-85.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 186–191

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Impact of Covid-19 Pandemic on Cultural Heritage with special reference to museums

Prof. Devendra Kumar Gupta
Professor, Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology,
Gurukul Kangri University, Haridwar, Uttarakhand
Kisha Shanker
Research Scholar, Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology,
Gurukul Kangri University, Haridwar, Uttarakhand
E-mail : kishashanker24@gmail.com

The United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO) has mentioned in its report that the pandemic had a significant impact on the cultural sector around the globe (UNESCO, 2020). The restrictions on gatherings and people's movement have had a drastic impact on museums, tourism, heritage sites, historic gardens, cultural festivals etc. While there have been several studies in the last two years on the impact of the pandemic and its long term consequences, many sectors have acknowledged and adapted to the fact that living in post Covid-19 world will be different and will require different mindset all together.[1]

According to the reports of museum agencies like UNESCO and ICOM, around 90% of museums were closed throughout the world due to the Covid-19 for several days in 2020,[2] and again in 2021 and early 2022 due to multiple variants resulting in lockdowns. According to the agency, this has resulted in a 70% drop in average attendance of visitors and a 40% to 60% drop in revenue compared to 2019.[3]

Museums have an important role in society because they are accountable not only for preserving heritage for future generations but also for encouraging lifelong learning, equal access to culture and the spread of values that underpin humankind. Therefore, closure of museums resulted in both economic and social consequence. Due to the unforeseen circumstances of pandemic, the entire heritage sector became delicate and vulnerable as its connection with the community got weakened as it was separated with the public physically. Moreover, in terms of financial impact, the pandemic had a massive influence on cultural heritage particularly in museums. Private museums have been hit hard as they rely heavily on revenue generated by visitors. Numerous heritage sites faced security issues as well over the last two years, including lockdowns, stranded workers, a decline in tourism profits, and

the threat of looting. Everyone is still battling to overcome the barriers created during the lockdowns.

Despite the fact that many museums had already engaged in creating an online presence before the lockdowns, social media engagement had increased tremendously in the last two years. On digital platforms like Facebook, Twitter, Instagram, YouTube, museum have increased their presence by organizing exhibitions, virtual tours of the galleries, webinars, conferences, games, quizzes, educational activities.[4] Some remarkable examples from around the globe include; MUO (Museum of Arts and Crafts) in Croatia had started online projects. At the Houston Children's Museum and the Manhattan Children's Museum (MCN), virtual learning centres have been built. MCN has produced a list of hundreds of virtual museum resources. In India many iconic museums like National Museum, Indian Museum and Chatrapati Shivaji Maharaj Vastu Sangrahalaya held online exhibitions and made all the galleries available virtually alongwith different online activities. In Italy, an internet radio broadcast was hosted by GAMeC (Gallery of Modern and Contemporary Art). Although virtual exhibition technology existed previous to the pandemic, many museums were slow to use it. As promoting digital activities is almost contradictory to the basic objective of a museum, which is to come see the exhibits in person.

Another significant impact of pandemic was on heritage and museum professionals. Employees started working from home. Many temporary staff were laid off especially in developing countries which suffered due to financial constraints even before pandemic were severely hit during the pandemic. Due to the closure of museums, the revenue went down. Hence, a thorough review is crucial in order to support museums and workers in the short and long term.

According to Mechtild Rossler, the director of the organization's World Heritage Committee, in the year 2020, 71 percent of the heritage sites were closed as of early April, and later opened partially with restrictions. However, this led to the possibility of looting at cultural institutions with insufficient staffing was increased. It is noteworthy, that many World Heritage sites have got badly affected due to this scenario. The International Council on Monuments and Sites (ICOMOS), a network of heritage conservation experts, reports that the Ingapirca Archaeological Complex in Ecuador, for example, a World Heritage site and the country's largest known site of Incan ruins, has been unable to fund maintenance and management due to a steep decline in income. The pandemic in Nigeria resulted in a halt to maintenance and security at the historic clay Kano City Walls and Gates, as well as a far faster rate of wear and tear, according to ICOMOS. Thus, it is evident that the pandemic had a significant impact on all UNESCO's World Heritage sites.

Subsequent example is from the Getty Conservation Institute's (GCI) head of buildings and sites, Susan Macdonald, reveals setbacks in the Malaysian city of Penang, where the collapse of foreign tourism has hampered urban conservation

efforts. Several projects, like the effort to prepare a management plan for the Chongoni Rock Art Area in Malawi and conservation work at the Scottish former mill town of New Lanark, were halted as a result of the lockdowns.[5]

Additionally, many sites suffer from security concerns and insufficient funding on a regular basis but now much more so due to lack of money from national sources, initiatives, drop in tourism earnings, and the possibility of looting: guardians of cultural heritage sites around the world have faced frightening challenges in the face of the corona virus pandemic during the past two years. Even after the third wave everyone is still fighting to meet the obstacles.

Furthermore, the epidemic hampered efforts to restart reconstruction and preservation operations at some of the important cultural heritage sites. A significant example is of Beirut following the port explosion that ravaged the city's neighbourhoods in August, 2020. As it was an emergency situation, however due to covid, it was difficult to organise relief measures to the cultural heritage on priority basis. According to Luis Monreal, general manager of the Aga Khan Trust for Culture in Switzerland, organisations have had to fine-tune their responses to the epidemic due to strikingly varied responses in other nations. He observes, 'It's been pretty unequal', there were no government imprisonment measures in some nations, such as Pakistan. Also, there was a six-month delay in Kabul, where the trust has been restoring historic buildings and public spaces since 2003.[6]

Another notable instance of looting of temples is from Bagan which involve excavating into the brick structure in search of valuable offerings made during previous renovations and original construction as looters take advantage of these times of distress as people's income evaporates. The Antiquities Trafficking and Heritage Anthropology Research Project (athar) which tracks illegal trafficking in stolen artefacts and is led by anthropologists and heritage experts, reports that the online illicit trade in looted objects spiked after the pandemic, particularly in March and April, 2020. According to Katie Paul, the project's co-director, the authorities in charge of policing heritage sites were diverted by the need to enforce restrictive pandemic measures, and their ranks were also depleted by job losses due to the economic downturn, which resulted in massive closures and a halt in tourism. Interestingly, the pandemic also had a silver lining in a few isolated cases where in the absence of crowds, the staff and technicians worked more efficiently to step up their conservation work like in Angkor Wat in Cambodia.

Moreover, many museums throughout the world have worked as resilience activators for communities, bringing to life, in addition to digital exhibitions, projects concentrating on the concepts of empathy, aid, and solidarity, in an effort to alleviate the sense of isolation propagated by the COVID pandemic.

During the lockdown, museums raised their online presence by 80%, allowing for greater social media interactions. Few of them are Digital displays, Online tours, Blogs, Instagram and Facebook

stories, Live-streamed tours, Apps for art education, YouTube channels offering artist talks, seminars, and other entertaining videos, etc, Documenting the Covid pandemic for future generations; etc. Museums that had previously been digitally inactive are now establishing their presence and noticing an increase in web traffic. The Ministry of Culture's JATAN (Virtual Museum Builder as a unified digital collection management system) project which began in 2017-18, is already in the process of establishing a digital repository of Museum collections on a national portal. The Ministry of Culture has ten museums that can be visited digitally through its website, many other museums has begun to follow suit.

Furthermore, in this scenario of going online there were several evident limitations that were being faced by the museums in the strategy they adopted like –

- Many museums limit themselves to just moving their collections to the web with little or no interaction or direct relationship with the public, such online experience does not appeal to an informed and demanding audiences looking for engaging and exciting encounters.
- Despite the abundance of cultural resources now available online and the wide range of ways to designing cultural experiences, online visits are typically viewed as private, user-centered encounters. However, research from the museum field has emphasised the importance of the social setting, implying that social interactions are crucial in the design of engaging visits.
- In general, virtual visit solutions are still characterized by minimal interaction; many virtual tours are still little more than plain 360° photographs with limited options for content selection and visitor paths.

Conclusion

The effect of pandemic is multifaceted and thus many new approaches need to be formulated for the road ahead. For engaging and stimulating experiences in cultural resource communication and fulfillment, for education and entertainment reasons, ICTs have made a number of trustworthy and tested solutions available. The social role of museums must be fully understood in the event of covid pandemic, by coupling those functions with the task of supporting and guiding communities through the crisis, addressing their sense of isolation and their need to understand and face the profound changes we are all experiencing. In a setting that is deeply and rapidly changing, where languages, contents, and missions blend, the pandemic requires museum institutions to focus on innovation, not just in terms of languages, but also in terms of messages to express. This entails, on one hand, reconstruct technology means in accordance with aims, and, on the other hand, expanding the communication field, which was previously limited to the physical space of the museum. Young people's mental health is often disproportionately affected by disaster as compared to adults; additionally social isolation and loneliness has exaggerated that on next level. In this regard museum can promote the recreation of the social

dimension of young people's experiences. It can serve as a framework and a stimulus for socialization.

Furthermore, supporting technologies must now be measured against new, distinct stories that do not leave visitors alone with their emotions while visiting it rather allow them to discover and confront the emotions of other visitors. The possibilities of storytelling then expand exponentially. In this regard virtual reality and augmented reality apps/tools can be more effective.

Addittionally, the option of sharing museum background knowledge emerges which can cater to the interest of many visitors or audiences. For example due to logistical or safety reasons, parts of the site/museum which are not available to the public in general can be made vailable through ICT tools and also on social media under the segment of 'behind the scenes' work. Some conservation efforts along with management strategies of the precious art as well as planning and organization of exhibition display can be shown.

Holistic approach is required. In addition to the government, corporate and other social and financial institutions, museum authorities, and all museum stakeholders must work together to identify strategies to sustain museums and assure the industry's future viability once the crisis has passed. Also, security system can be enhanced to safeguard and maintained our cultural heritage. In this regard, museums and society must work together to provide proper preparation for any future crises.

Museum stakeholders must consider how they will survive beyond COVID-19. Encourage visitors to visit the museum following COVID-19 is one of the methods, along with others such as developing various business plans, influencing the government, and expanding corporate partnerships.

Acknowledgement : This work was supported by the grant received from Indian Council of Historical Research (ICHR) New Delhi under the Junior Research Fellowship.

❐

References:

1. *Spennemann, Dirk H.R. (2021). COVID-19 on the Ground: Managing the Heritage Sites of a Pandemic. Heritage (4). MDPI.*
2. *International Council of Museums—ICOM. Report Museums, Museum Professionals and COVID-19. May 2020. Available online: https://icom.museum/wp-content/uploads/2020/05/Report-Museums-and-COVID-19.pdf*
3. *United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization—UNESCO.Recommendation Concerning the Protection and Promotion of Museums and Collections, TheirDiversity and Their Role in Society. Retrieved from:https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000246331*

4. *United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization—UNESCO. Museums Around the World in the Face of Covid-19. May 2020. Retrieved from https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000373530*
5. *Macdonald, Susan. (2020, November 10). Conservation in the Times of COVID [Blog post]. Retrieved from https://blogs.getty.edu/iris/conservation-in-the-time-of-covid/*
6. *Kenney, Nancy (2021, January 8). From Lockdowns to looting: How Covid-19 has taken a toll on world's threatened sites. The Art Newspaper. Retrieved from https://ww.theartnewspaper.com/2021/01/08/from-lockdowns-to-looting-how-covid-19-has-taken-a-toll-on-worlds-threatened-heritage-sites*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 192–196

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

DHASAL : A POET OF DALIT UNDERDOG CHAMPOINS IDENTITY

Ashwani Kadiyan
New Delhi

Abstract

Dalit is a protest literature against all forms of exploitation based on class, race, caste or occupation. Dalit literature essentially deals with the marginalized groups who are fundamentally devoid of their voice within the Indian society. It is also necessary to understand that the mainstream literature which caters to a sophisticated set of readers or perception has repeatedly shown its reluctance to publish the pain and the anguish of Dalit literature.

Keywords : Dalit, Exploitation, Perception, Injustice, Criticism, Repressed, Self-realisation, Underworld, Aesthetics.

We fought with crows, Never even giving them the snot from our noses. As we dragged out the Upper Lane's dead cattle, Skinned it neatly And shared the meat among ourselves, They used to love us then. We warred with jackals—dogs—vultures—kites Because we ate their share. (Chhavni Hilti Ha)

Namdeo Dhasal, one of the pioneers of Dalit Panthers Movement, set the stage to unapologetically publish the anger, grief and anguish of the Dalits. Hence every Dalit writer aims to carve a space or voice for himself / herself out of the mainstream literature in order to bring to light the injustice meted on to his community. This inevitably creates a subculture within the mainstream literature, a kind of an aperture for all the repressed Dalit sentiments which were shrugged off by the insensitive society. But the power of literature is immense as it allows the existence and proliferation of dissenting voices to construct a parallel world for self-realisation and problematizes the dominant world view. Poets have constantly tried to publish

their voices through literature and Namdeo Dhasal does it by impressively expressing himself in a unique way.

Namdeo Dhasal through his poetry projects the kinds of complicity, acquiescence and indifference shown by various quarters of society against the marginalized. His poetic collection 'Poet of the Underworld' (2007) consists of poems like Golpitha (1972), Moorkha Ma ataryane Dongar Halavile (The Stupid Old Man Moved Mountains, 1975), Tuhi Yatta Kanchi (What's Your Grade, 1981), Khel (Play, 1983), Gandu Bagicha (Arsefuckers Park, 1986), Ya Sattet Jeev Ramat Nahi (The Soul Doesn't Find Peace in this Regime, 1995), Mee Marale Sooryachya Rathache Ghode Saat (I Slew the Seven Horses of the Chariot of theSun, 2005) and Tujhe Bot Dharoon Chalalo Ahe Mee (Holding Your Finger, I Walk On, 2006). The paper attempts to probe the various thematic implications and metaphorical expressions of marginality in Namdeo Dhasal's poetic collection 'Poet of the Underworld'

A Dalit writer's literature is accompanied with the life and experiences of a survival in unimaginable ways, in spite of centuries of oppression in the Indian society. Their life is a constant negotiation with the hegemonic society which subjugates them and compels them to be complicit, acquiescent and indifferent in certain situations for their meager existence. But essentially, Dalit literature has a peculiar ability to feel a fundamental sense of belonging with other marginalized identities; it also helps in collectivizing the struggle for a common goal of liberation from caste oppression and vehemently asserting the self.

Dhasal's poetry collection 'Poet of the Underworld' (2007) had startled the Marathi literary scene, which earlier only accommodated the aesthetics palatable for sophisticated readers. The aim of this paper is to selectively probe the various thematic implications and metaphorical expressions of marginality in Namdeo Dhasal's poetic collection'Poet of the Underworld'.

As Dilip Chitre said, If there is anything like Dalit literature, it is something created by superimposing the idiom of social sciences upon literary criticism, which has adequate methodological and terminological resources of its own to deal more than descriptively with literary movements. But Dhasal's literature like any other Dalit writer has to be taken into account along with its complex metaphors and themes which seem bizarre and surrealistic. It is also very difficult to penetrate the layers of anger which he weaves resulting from a self that isunrealized. To understand a Dalit 'self' , it is imperative to go beyond the objective detachment maintained by critics and view his life in totality keeping him in the centre. One of the essential features of Dalit literature is to subvert the canonical literature. But Dhasalgoes one step further by subverting even the mainstream literature and its poetical oeuvre in Golpitha.

Dhasal's 'Man You Should Explode (Golpitha), the elitist notions of civilization, religion and philosophy is bizarrely shredded for the creation of a new world, which should be made available for humanity. While all religions of the world are at the

receiving end of his ire there seems less difficulty in understanding his faith in humanity minus religion and prejudices. For Dhasal, language and societal conception becomes tools for subversion, which alsoconcurrently transforms into a motif for Dalit expression and consciousness. Just as language and societal conception undergoes a constant negotiation between the elite upper caste and the lower caste in the Indian society, so does the sharing and consumption of Water, which evidently shows the hegemonic imposition of the upper caste rule in the villages. The utter callousness, with which the right to use fresh water was denied to Dalits, but its usage onlyif, the upper caste population are satisfied with their fill, only aggravates the inhumanity perpetrated on them when Dhasal says:

"Upstream, the water is all for you to take
Downstream, the water is for us to get" (43) (Dhasal pg43),

Water stands as a metaphor for hygiene, purity, satisfaction, etc. which was categorically made available only according to the whims and fancies of the upper castes. Dhasal indulges to a greater extent on scatological and vulgar descriptions which does set the sophisticated poetic decorum on fire. But this stems less from his neighbourhood experiences in Dhor Chawl but more because of the quality of life he could receive from the caste dominated society. Although like him many miserable and wretched identities in red streets, opium dens, liquor bars, etc. gathered and habituated along with the subculture and the people's lives putrefied by the civilized society. In 'Mandakini Patil: A Young Prostitute, My Intended Collage ', Dhasal portrays the ultimate marginalized identity – a prostitute who is shown to be an object for sexual perversion by men,

"Her clothes ripped off, her thigh blasted open,
A sixteen- year-old girl surrendering herself to pain,
And a pig: it's snout full of blood" (ibid pg. 56).

By willfully subjugating the self, a prostitute vulnerably exists satisfying the carnal desires of men. The projection of a prostitute's pain which Dhasal empathises because of Dhor Chawl, reciprocates his identification with her, who is seldom understood and seen from a subject position. The obliteration of her voice by the society is recovered by Dhasal emphatically, inspite of being a man, a possible hindrance, which is a characteristic Dalit feature of identification or belongingness with the marginalized.

Dhasal decodes the silence of Mandakini viz-a-viz the people who visit her, the pimps who sell her and the abhorrence with which society treats her, ina brilliant manner. Quite similar to the theme is the treatment of Kamatipura (Tuhi Yatta Kanchi pg. 74), a place which is considered to be the hell hole of Mumbai and it is here that many Mandakini's and Dhasal's have become "–A lotus in the mud" (Ibid pg. 75). Dhasal's usage of words, tone, tenor and themes in *Golpitha*, takes us to such levels of language, that it remains de-glorified and undignified. He problematizes the literariness, by not prevaricating, but bluntly venturing between

the utterly degraded sense of voyeurism and the scatological surface of foulness. Albeit, writing is an activity of aesthetic pleasure, *Golpitha* invariably goes against the literary aesthetics by presenting art as a depiction of a broken self.

Dhasal's aesthetics is unique because it shatters the cornucopia of a civilized culture by de -glorifying it and traversing over such identities, which inevitably leave us speechless. Certain images are vulgar, pornographic but it seldom titillates the readers, rather they shock the very reading process; while all who reads get involved with the disheveled identities, and their pain, rejection and suffering incarcerates even the readers. Dhasal vulgarity can neither be classified as sensuous or pejorative; instead they purposefully disrupt the normative understanding of poetry and its decorum. As water, which is essentially a resource for the satisfaction of thirst, similarly ‘

Hunger' is another Dalit adjective for denial of a right to life. As Dalits had historically sacrificed their dignity at the altar of the caste based society, their bodies have become objects and toys of systematic societal caste persecutions. Dhasal personifies hunger in an adversarial position in the following lines:

"Hunger, at times you assume the form of a mouse, at times you become
a cat, and a lion sometimes;
How can we, weak ones, face
This game started by you and dare to play it? (ibid pg. 76).

Another poetry, ‘Sweet Baby Poverty '(ibid pg 87) which shows the result of a union of Dalit anguish; less a cause of celebration but more of a personification of misery and poverty. Dhasal's poetry stands as a testimony to a unique ‘Dalitness', if one may say, which stands for a self that consciously bonds and speaks for similar marginalized identities. With ‘ Khel Gandu Bagicha', Ya Sattet Jeev Ramat Nahi and ' and ‘Mee Marale Sooryachya Rathache Ghode Saat, Dhasal becomes increasingly vitriolic. Here his personal becomes political, as he quotes ‘I am a venereal sore in the private part of language,' (Cruelty pg. 100) which assumes the form of a vehement statement, so powerful that it consciously intends to glorify the aesthetics of thought and language. Generally, language is the utterance of a speaker or a subject, who engages in a conscious thought, and who is also in-turn cultured by it accompanying sophistication. Therefore Dhasal intends to infiltrate such elitist and sophisticated notions among his readership and create a shock effect. He interestingly also personifies the elements of nature and charges them of being complicit in the whole debilitating caste persecutions. The elements like Sun, Moon, Water, etc. find a mention in the holy books of Hindu culture which is the Puranas, Shastras, Vedas, etc. and therefore by problematising it, he subverts the Hindu traditions, its beliefs and its conceptions and manages to deholify the casteist culture. As Dilip Chitre rightly pointed out,

"Namdeo's universe is untouchable too. It is loathsome and nauseating universe,

a journey into it is a journey from the sacred into the profane. Or, if we were to see it in purely secular and material terms, it is a journey from the clean to the dirty, from the sanitized to the unsanitary, from the healthy to the diseased" (Poet of the Underworld pg 11-12).

As a quintessential Dalit feature, Dhasal involves in the idealization and idolization of Ambedkar in Tujhe Bot Dharoon Chalalo Ahe Me (2006). The same enigma and hero worshipping is matched in Ode to Dr. Amdedkar (Golpitha) and (Tuhi Yatta Kanchi, 1981). Here Dr. Ambedkar is the light as bright as the sun, a metaphor of enlightenment,knowledge and inspiration. But the seething anger of inequality seldom dies down, as is re-ignited in the epigraph 'Translating Dhasal or any dalit writer is a difficult process, which Dilip Chitre (his translator) has admitted in 'Poet of the Underworld'. It is difficult, not only because translation of any kinds unable to achieve the aesthetic effect of the originals, but also because the reading of any Dalit writer like Dhasal is fraught with impediments for a sophisticated reader. It need not be pointed out that Chitre might have possibly missed out a lot during his translation process, which for any translation is inevitable. But if we consider Dhasal's English translation , one fourth the originals, it could still successfully manage to project the underbelly of a Dalit life and its literature in general.

Overall his masterpiece 'Poet of the Underworld' can best be described as an emotive literature of untouchable people in untouchable locations reeling under untouchable situations. The substance and thematic richness of his poetry automatically lifts it from vulgarity, unlike other literatures and literary movements which were battered by critics.

❒

***References**:*

1. *Chitre, Dilip. The Architecture of Anger on Namdeo Dhasal's Golpitha. Journal of South Asianliterature . Vol. 17, No. 1. (1982). pg 93–95.*
2. *Dhasal, Namdeo. Namdeo Dhasal: Poet of the Underworld, Poems 1972–2006 . Translated by Dilip Chitre. Navayana Publishing. 2007.*
3. *Hovell Laurie: Namdeo Dhasal: Poet and Panther. Journal of South Asian Literature . Vol. 24, No. 2. MISCELLANY, 1989. pg 65.*
4. *Hovell Laurie: Namdeo Dhasal: Poet and Panther. Journal of South Asian Literature . Vol. 24, No. 2. MISCELLANY, 1989. pg 65–82.*
5. *Web B. Vemaiah. Dalit Poetry in India - A Hoick Wave In Indian English Literature. July 18th 2012.*
6. *Ghansham S. Caste, Race, Communities and the Problems of Marginality and the Identity Issues in Namdev Dhasal's and Alice Walker's poetry. Mar 17*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 29, अंक, 113, अप्रेल–जून, 2023 पृ. 197–202

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

An Economic Assessment of Sanitation Importance in Developing Countries During Covid-19 Pandemic Period.

Ashvanee Kumar
Research Scholar, Department of Economics,
Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak (M.P.)-484887
Email- ashvanee081995@gmail.com Mob. +91 9129823850

Dr. Rajkumar Nagwanshee
Associate Professor, Department of Economics,
Guru Ghasidas University, Bilaspur (C.G.)- 495009
Email- raj.nagwanshee@gmail.com

Abstract

Sanitation has played a vital role in protecting us from the challenging COVID-19 virus. Lack of sanitation directly or indirectly causes health and economic losses in developing countries. Many studies say that millions of deaths happen yearly due to diarrhea and other polluted water-related diseases. Covid-19 is the most dangerous virus due to non-sanitation activities and unhygienic conditions. This has already vibrated the world's economies and health systems. The following study gathers information from well-published research papers in different Journals and reports from various institutions. The study says that in developing countries where the level of cleanliness was found to be low, more cases of illness and deaths have been confirmed due to the covid-19 epidemic. The study states the economic importance of sanitation and says that awareness of good hygiene and cleanliness increased after the covid-19 pandemic.

Keywords: Sanitation and cleanliness, Economic Impact, Importance of Sanitation, Cost of Poor Sanitation, Covid-19.

Introduction

The present world has recently gone through a situation of the covid-19 pandemic that this generation has never seen before. COVID-19 is probably the most globalized pandemic affecting the economy and public health system.[7] In this way, by November 2020, there were more than 51 million confirmed cases globally, with over 37 million recoveries and more than a million deaths, according to data compiled by John Hopkins University Coronavirus Resource Centre.[8] This virus was first detected in the dirty fish market in Wuhan city of China, in December 2019.[3] Thus, the unavailability of good sanitation and hygiene can increase the rate of spreading covid-19. On the other side, awareness of good sanitation and hygiene

practice can break the path of spreading this virus, and the availability of basic sanitation facilities are very important to control the covid-19 in developing countries. The availability of basic facilities such as safe drinking water and sanitation is not only an important measure of the socioeconomic status of the household but also a fundamental element for people's health.[2] Sanitation generally means the provision of facilities and services for the safe disposal of human urine and feces. Good sanitation generally involves closer toilet and bathroom facilities, less waiting time, and safely disposing of excreta.[1] An improved sanitation facility also includes a flush to the piped sewer system, septic tank, pit latrine, pit latrine with slab, and composting toilet. Despite progress made toward Sustainable Development Goals (SDG) 6.1 and 6.2, 494 million people globally still practiced open defecation in 2020.**3** Improved sanitation has been showing a big socio-economic impact on people's health and the national economy.

Since initial of December 2019, the covid-19 has been threatening people's lives and all the economies across the world. The spread of covid-19 had got uncontrollable, which left no choice for the countries to grow further. Finally, many countries had to impose a lockdown. The lockdown further has sorely hit all the sectors of the economy such as agriculture, manufacturing, and service sector. All three pillars of the economy have been negatively affected and India is one of the worst-affected countries, along with the US, UK, and Brazil.[9] This study focuses on the economic importance of sanitation activities especially in developing countries during the pandemic of covid-19. The study says that sanitation investment is always a beneficial investment for every government which will help to achieve the sustainable development goal within the period.

Review of Literature

W.H.O. report (2020) named "Progress Report on Water, Sanitation and Hygiene in Health Care Facilities" highlights that there is a big gap in WASH services all over the world. 25 percent of all HCFs do not have any kind of basic water service, 10 percent HCFs are not having sanitation services, and over 30 percent do not have the facilities for hand hygiene.[3] These numbers are even higher in least-developed countries. There is 50 percent population without basic water service levels and 60 percent with no sanitation facilities. The study of ANS Irfan (2021) states that ongoing activities to improve sanitation have continuously fallen in the way of achieving world sanitation goals. At the end of 2020, 2 billion people still lacked even very basic sanitation services such as toilets and latrines.[10] Nearly 700 million people were engaged in open defecation and half of the global population still lacks safely managed sanitation facilities. With these kinds of statistics, it seems impossible to win against the covid-19 problem[6]. On the other hand, Mr. S.M. Islam & P.K. Mondal's study says that COVID-19 emerged as a global pandemic for which there was no diagnostic method or proven medicine. But by following sanitation practices, wearing protective equipment like a face mask, and gloves, washing hands via soap, maintaining social distancing, and frequent use of antiseptic solutions we can control the rate of transmission of covid-19.[4] However, the implementation of

WASH recommendations given by WHO has been challenging in low-income counties. WASH is the center point for COVID-19's impact and protection from it. Sufficient funding is necessary to provide and maintain adequate WASH services for every country. This will ensure that WHO recommendations on regular hand washing with clean water and soap are achieved universally.

Objectives of The Study

- To study the issues and challenges of non-sanitation in the covid-19 period.
- To study the economic importance of sanitation in the present era.

The Impact of Poor Sanitation

The pollution of the natural environment and water resources can be reduced by the provision of healthy sanitation services and downstream treatment. The unavailability of a basic sanitation system also impacts the girl's schooling attendance, especially during their period of menstruation. The improvement in sanitation services contributes to the achievement of SDGs Goal 4 "Ensure inclusive and equitable quality education" and Goal 5 "to achieve gender equality". According to a survey of 18 African countries, A lack of access to sanitation services has a direct impact on GDP. Economic losses in terms of GDP are estimated between 1 percent and 2.5 percent and at 7.2 percent in Cambodia.[5] Sanitation is very essential to maintaining health in the present because there are so many micro pathogens that can't be seen and observed. Deprivation of proper sanitation facilities can be the cause of the spread of many infectious diseases. The external impacts of non-sanitation on health and the environment are even more complex to measure in monetary value. Poor sanitation has been associated with various negative effects on the population's health and the nation's economy. Shandra et al 2011 found that higher levels of access to better water supply and better sanitation facilities are linked to lower levels of child mortality in sub-Saharan African countries. Sanitation has a significant impact on socio-economics equality as well. The poorer, children, women, people with disability, and the elderly are those who suffer most from the economic consequences of bad sanitation. Diseases linked to lack of sanitation have been related to poverty and infancy, and they alone account for nearly 10 percent of the worldwide disease burden. Good sanitation status has significant positive impacts on the health of the children, gender equality, environmental sustainability, and the source of clean drinking water. Directly and through the various pathways to development, improved sanitation contributes to lifting populations out of poverty, as well as preventing them from slipping back into poverty.[1]

The Economic Aspect of Sanitation and the Cost of poor sanitation

Detailed economic analysis is usually undertaken for large-scale sanitation projects, while smaller sanitation endeavors usually consider investment, operational, and opportunity costs of capital.[6] Investment/capital investment for sanitation accounts for a vast amount of state expenditure. For the construction of facilities and infrastructure related to good sanitation, all materials, energy, and labor expenses are necessary, which can be calculated in economic terms. In economic terms,

Initial expenditure on the product of sanitation use is also included. the activities such as research and development sanitation promotion expenses, the expenses for training of workers, expenses on capacity-building programs, and promotion expenditure should also be calculated in sanitation expenditure. 2. The lack of sanitation also accounts for a considerable Opportunity cost. The opportunity cost reflects the loss of opportunities to earn profits from alternative investments. Therefore, this must be also calculated in non-sanitation expenditure. 3. Health costs of diseases related to non-sanitation are also an economic loss, especially in developing nations. This is the most crucial variable to calculate the cost of non-sanitation conditions. It relates to expenditure on medical care. 4. The loss of productivity, working days and lose of school day attendance due to pollution or non-sanitation is considered an economic loss. This cost is measured in terms of productivity lost due to poor soil and water quality. The environmental cost is associated with soil pollution, water pollution, and air pollution.

The impacts of un-improved and poor sanitation cause economic losses. the economic loss of poor sanitation can be measured as a direct cost and indirect cost. The direct cost is generated by costing sanitation-related illnesses and lost income through reduced productivity. The key economic impacts of poor sanitation are in descending order health, water resources, access time cost, and then tourism. Every section of society especially vulnerable sections such as children, women, the disabled, and the old are affected by poor sanitation. There have been conducted Several studies to estimate the economic costs/losses associated with lack of sanitation. Lack of sanitation is responsible for one of the largest prevailing disease burdens all over the world. The diseases caused by bad sanitation and unclean water account for about 10 percent of the global burden of disease.[1] Diseases associated with lack of sanitation are diarrheal diseases, under nutrition, acute respiratory infections, and other tropical diseases such as helminthes and schistosomiasis infections. Globally, around 1.7 million people get died every year from diarrheal diseases, and 90 percent of them are children under 5 years mostly in developing countries.[1] All over the world, unsafe water, inadequate sanitation, and poor hygiene cause 88 percent of cases of diarrheal diseases.

The study of Mr. Van Minh, H., & Mr. Hung, N. V. (2011)1 states that In Cambodia, poor sanitation led to economic losses of millions every year, which is almost 32 US dollars per capita losses. the health impacts of poor sanitation represent the largest source of economic costs about US$ 100 crore, which represents about 72 percent of total economic costs in the Philippines. He further says that the second most important economic impact was held on water resources, which accounted for Approx 23 percent of the total costs. In Vietnam, the financial losses including expenditure or income losses due to poor sanitation were US$780 million, which was roughly equal to 0.5 percent of the annual GDP. Most economic losses were shared between health 34 percent, water resources 37 percent, and the environment 15 percent respectively.[1]

Further Mr. Van Minh, H., & Mr. Hung, N. V., (2011)1 in his study concluded

that out of the total evaluated impacts on poor sanitation, the health sector contributes 60 percent to the overall economic costs followed by 18 percent for accessing clean drinking water, 13 percent for additional time to access unimproved sanitation, and 9 percent due to tourism losses. Poor sanitation, including poor hygiene, caused at least 30 thousand disease episodes and 6,000 premature deaths annually.[1] The resulting economic impact was more than US$1150 lakh per year. The associated economic costs of contaminated water account for more than US$ 350 million per year.[1]

Economic importance of sanitation

The Economic benefits of improved sanitation are in multiple-way, which include the following point. (1) Direct economic benefits of avoiding diseases, these benefits are the amounts of money that are saved from healthcare expenses on water & sanitation-related diseases. (2) On the other side there are indirect economic benefits. Indirect benefits include a decrease in workdays lost due to illness and a longer life span. These benefits enabled people to work more. (3) Non-health benefits such as time and feeling of pleasure. It has been said that sanitation is the fundamental element of social progress and economic development. There are substantial fiscal gains from improved sanitation services if the investment in sanitation development is done. The sanitation investment is always beneficial. Evans et al. (2004) found that annual investments of US$20.5 million in Tanzania and US$6.7 million in Vietnam would yield benefits of US$5.4 million and US$66.7 million, respectively, for the health sector alone. Hutton, G., et. al. (2008)[11] estimated that US$6.3 billion could be saved annually if proper sanitation and hygiene practices were introduced in Cambodia, Indonesia, Vietnam, and the Philippines. on the world level it has been frequently observed that in the cost-benefit analysis of sanitation investment, benefits always outweigh the cost.

Reasons or Issues of Poor Sanitation in Developing Countries

The transmission of the covid-19 virus is taking place in many ways, such as coming into physical contact and touching the infected surface, taking infected food and drinks, wearing infected clothes, etc. But a recent study by Professor Chuanwu Xi says that the airborne transmission of this virus is a thousand times higher than surface transmission. We can say that transmission of the virus is directly related to unhygienic activities and the proper unavailability of sanitation infrastructure in developing countries. One of the reasons for the slow rate of enhancing sanitation coverage around the world and in developing nations is that policymakers and the general people do not fully comprehend the need for better sanitation solutions.[1] In these regions generally, it has been observed that Improving sanitation is not considered a component of economic development or a source of improved welfare. The poverty and slums in the urban area are the big reason for non-cleanliness. The cost-benefit analysis has not been extensively used to clarify expanded sanitation spending. Until now, both policymakers and the public have not been presented with comprehensive evidence on the economic impact that sanitation has on the economy, the environment, and population welfare.[1]

Conclusion

According to the study, sanitation is essential for good health as well as social and economic development. To protect against the covid-19 virus practicing sanitation activities and washing hands has become the partial weapon to control the spread of the virus. The sanitation target was addressed as a key area of human development in Millennium Development Goal 6th. Currently, the sixth Sustainable Development Goal is to "Ensure universal access to and sustainable management of water and sanitation." None of the other Millennium Development Goals or sustainable development goals would be met until sanitation was improved. Sanitation is essential for good health as well as social and economic development, according to the report. Investment in the development of Sanitation infrastructure is a profitable action. It is proved that meeting the sustainable development goal of sanitation is not only protecting us from coronavirus but also saving lives, leading gender equality, protecting the environment, improving the literacy rate, and providing the background for economic development. Policymakers, company owners, and the general people, especially in a developing country should take immediate steps to address the existing sanitation of bad situations and cleanliness to control the covid-19 and increase awareness regarding good sanitation practices. More extensive studies are needed to create more economic aspects of sanitation in underdeveloped nations, as the information we have today is dependent on various assumptions.

❒

***References**:*

1. *Van Minh, H., & Hung, N. V. (2011). Economic aspects of sanitation in developing countries. Environmental health insights, 5, EHI-S8199.*
2. *Tiwari, R., & Nayak, S. (2017). Drinking water, sanitation, and waterborne diseases. Economic and Political Weekly, 52(23), 136-140.*
3. *World Health Organization & United Nations Children's Fund 2021 Progress on Household Drinking Water, Sanitation and Hygiene 2000– 2020: Five Years into the SDGs. World Health Organization (WHO) and the United Nations Children's Fund (UNICEF), Geneva.*
4. *Islam, S. M., Mondal, P. K., Ojong, N., Bodrud-Doza, M., Siddique, M., Bakar, A., ... & Mamun, M. A. (2021). Water, sanitation, hygiene, and waste disposal practices as COVID-19 response strategy: insights from Bangladesh. Environment, development and sustainability, 23(8), 11953-11974.*
5. *Perard, E. (2018). Economic and financial aspects of the sanitation challenge: A practitioner approach. Utilities Policy, 52, 22-26.*
6. *Franceys, R., Pickford, J., Reed, R., & World Health Organization. (1992). A guide to the Development of on-site sanitation. World Health Organization.*
7. *Barro, R. J., Ursúa, J. F., & Weng, J. (2020). The coronavirus and the great influenza pandemic: Lessons from the "Spanish flu" for the coronavirus's potential effects on mortality and economic activity (No. w26866). National Bureau of Economic Research.*
8. *Donde, O. O., Atoni, E., Muia, A. W., & Yillia, P. T. (2021). COVID-19 pandemic: Water, sanitation, and hygiene (WASH) as a critical control measure remain a major challenge in low-income countries. Water research, 191, 116793.*
9. *Gupta, V., Santosh, K. C., Arora, R., Ciano, T., Kalid, K. S., & Mohan, S. (2022). Socioeconomic impact due to COVID-19: An empirical assessment. Information Processing & Management, 59(2), 102810.*
10. *Irfan, A., & Jean, D. T. S. (2021). COVID-19 & Sociocultural Determinants of Global Sanitation: An Aide-Mémoire and Call to Decolonize Global Sanitation Research & Practice. Annals of Global Health, 87(1).*
11. *Hutton, G., Patil, S., Kumar, A., Osbert, N., & Odhiambo, F. (2020). Comparison of the costs and benefits of the Clean India Mission. World Development, 134, 105052.*

पूर्वदेवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उन्मूलन, दलितों में मानवीय-अस्मिताबोध एवं अधिकार-चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन को प्रवर्त्त करना है। जिससे कि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं से मौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित हैं।

- लेखको से आग्रह है कि अपने लेख सुवाच्य अक्षरों में टंकित **Word** एवं **Pdf** फार्मेट में ई-मेल द्वारा **E-mail: mpdsaujn@gmail.com** पर भेजें।
- लेख सामान्यतः हिन्दी में लिखे हों। विशेष स्थिति में अंग्रेजी भाषा में लिखे गये लेख भी स्वीकार किये जा सकेंगे। लेख अन्यत्र प्रकाशित नहीं होना चाहिये।
- सम्पादक मंडल कोकिसी भी लेख को प्रकाशन हेतु स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का पूर्ण अधिकार है।

पूर्वदेवा का सतत् प्रकाशन सुधी पाठकों एवं लेखकों के उदार सहयोग पर निर्भर है।
अतएव विशेष अनुरोध है कि पूर्वदेवा के ग्राहक बनकर, अपना आत्मीय सहयोग प्रदान करें ।

ग्राहक शुल्क की दरें (**Rates of Subscription**) इस प्रकार हैं-

✲	आजीवन शुल्क	संस्थागत रू.7500/-	वैयक्तिक रू.6500/-
✲	वार्षिक शुल्क	संस्थागत रू.350/-	वैयक्तिक रू.300/-

Book Post

प्रति,

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाणभट्ट मार्ग, सेंट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन(म.प्र.) 456010

म.प्र.दलित साहित्य अकादमी के लिये पी.सी बैरवा द्वारा
न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन-से मुद्रित एवं बाणभट्ट मार्ग, उज्जैन(म.प्र) से प्रकाशित
सम्पादन- डॉ.हरिमोहन धवन

आर.एन.आई.रजिस्टेशन नं. 61954/95 ISSN 0974-1100